The Life and Teachings of
PUJYA SWAMI CHIDANAND SARASWATI

◆ GANGAPUTRA:
गंगापुत्र

by SADHVI BHAGAWATI SARASWATI

Foreword by HIS HOLINESS THE DALAI LAMA
Translated by SADHVI ABHA SARASWATI

परमपूज्य श्री स्वामी चिदानंद सरस्वतीजी महाराज
जीवन एवं उपदेशसार

गंगापुत्र

लेखिका: डा. साध्वी भगवती सरस्वती जी
प्राक्कथन: परमपावन दलाई लामा जी

Copyright © 2022 SADHVI BHAGAWATI SARASWATI
All rights reserved.

GANGA
PRESS

प्रभुकृपा से...

पूज्य स्वामी चिदानंद सारस्वती जी का जीवन और उपदेशसार

(मुखपृष्ठ)

प्रभुकृपा से...

पूज्य स्वामी चिदानंद सरस्वती जी का जीवन, बोध एवं सहज-सरल उपदेश...

लेखन
साध्वी भगवती सरस्वती

प्राक्कथन
परम पूज्य दलाई लामा जी

आमुख
आदरणीय रबाइ डेविड रोज़ेन

“हमें सीखना होगा....देना, देना और देते ही रहना...
हम देना सीखें... सूर्य की तरह, माँ गंगा की तरह,
बिना किसी दुबिधा-सन्देह के, बिना किसी
उम्मीद-अपेक्षा के,
बिना किसी विश्राम-अवकाश के और बिना किसी
अंतर-भेदभाव के...”

"मानवता की सेवा ही प्रभुसेवा है।"

प्राक्कथन
परम पावन दलाई लामा

आमुख
रबाइ डेविड रोज़ेन

प्रस्तावना
इस जीवनी के बारे में
साध्वी भगवती सरस्वती

विषयसूची

हिंदी संस्करण की प्रस्तावना ....**xvii**

प्राक्कथन ....**xxi**

आमुख ....**xxv**

प्रस्तावना ....**xxix**

प्रथम अध्याय

एक संत का जन्म 1

अध्याय दो

माँ गंगा का बुलावा 51

तीसरा अध्याय

तेजोदय 67

अध्याय चार

हिंदू-जैन मंदिर की खोज 83

अध्याय पाँच

मुख्य बदलाव: 137

अध्यक्षता के पद का दायित्व 137

अध्याय छह

परमार्थ निकेतन का खिलना 149

अध्याय सात

टुकड़ों में बिखरे जीवन से शांति की ओर 163

अध्याय आठ
देना ही जीना है... 187

अध्याय नौ
ज्ञान मंदिर का निर्माणः हिन्दू धर्म विश्वकोश 203

अध्याय दस
दुनिया भर में अमृत की बूंदें 213

अध्याय ग्यारह
पवित्र यात्राएँ - बाह्य और आंतरिक 231

प्रेरणादायी शिक्षा
ईश्वर की परिपूर्ण व्यवस्था में संपूर्ण आस्था 247

शिक्षा
अनंत इच्छाएँ 251

शिक्षा
जीवन पथ पर कैसे चलें... 255

शिक्षा
आध्यात्मिक जीवन का समय है–
अब! आज!!...अभी!!!... 259

शिक्षा
क्षमा- एकमात्र प्रतिवचन... 267

शिक्षा
सेवा और साधना- दिव्यता के पथ पर 275

शिक्षाएँ
हिंदुत्व के दस आज्ञापत्र...मूलभूत शिक्षाएँ 281

शिक्षा
मल्टीविटामिन; आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए 293

आभार 303

हिंदी संस्करण की प्रस्तावना

हम अत्यंत प्रसन्न है और यह परम पिता परमात्मा की दिव्य कृपा है कि हम 3 जून, 2022 को परम पूज्य स्वामी चिदानन्द सरस्वती जी महाराज के 70 वें जन्म दिवस के अवसर पर ''बाय गाड्स ग्रेस'' का हिन्दी प्रकाशन समर्पित करने जा रहे हैं। जो परम पूज्य स्वामी चिदानन्द सरस्वती जी के जीवन और शिक्षाएँ पर आधारित है।

''बाय गाड्स ग्रेस'' का अंग्रेजी प्रकाशन वर्ष 2012 में परम पूज्य स्वामी चिदानन्द सरस्वती जी महाराज के 60 वें जन्म दिवस पर प्रकाशित हुआ था। जिसे पूरे विश्व में बड़े ही उत्साह के साथ हृदय की गहराईयों से स्वीकार किया गया था तथा ''बाय गाड्स ग्रेस'' अमेजान डाट काम पर पहले ही दिन से सबसे अधिक बिकने वाला ग्रंथ साबित हुआ।

''बाय गाड्स ग्रेस'' के अंग्रेजी प्रकाशन को पढ़कर पूरे विश्व के लोगों ने अपने उदगार व्यक्त किये कि यह अत्यंत अद्भुत ग्रंथ है और पूरे वैश्विक समाज के लिये प्रेरणादायी है। इसे पढ़कर न केवल पूज्य स्वामी जी के जीवन के विषय में जानकारी प्राप्त

होती है बल्कि हमें अपना जीवन जीने की शिक्षा और ज्ञान भी प्राप्त होता है।

"बाय गाड्स ग्रेस" की 'काफी टेबल बुक' वर्तमान समय में लगभग पूरे विश्व में वैश्विक परिवार के पास उनके घरों में सु-सज्जित है। "बाय गाड्स ग्रेस" अंग्रेजी प्रकाशन का पेपर बैक भी तैयार है, जो कि भारत में जायको पब्लिशिंग हाउस द्वारा प्रकाशित किया गया है।

पूज्य स्वामी जी के तो प्रत्येक श्वास; प्रत्येक कोशिका में; उनके हृदय में और उनके प्रत्येक शब्द में हिन्दी समाहित है। उनका मानना है कि अगर हम अपनी मातृभाषा को पोषित और संरक्षित करेंगे तथा उसका दिल की गहराईयों से सम्मान करेंगे तभी हम अपनी संस्कृति और संस्कारों को संरक्षित कर सकते हैं इसलिये हमने अनुभव किया कि बाय गाड्स ग्रेस के हिन्दी प्रकाशन के माध्यम से पूज्य महाराज जी के भावों और शिक्षाओं को उनके 70 वें जन्मदिवस के अवसर पर परम पूज्य स्वामी जी महाराज के अनेक अनुयायी तथा जन मानस जो उनके जीवन और शिक्षाओं को हिन्दी में पढ़ना चाहते हैं के लिये समर्पित करें तो उनके चाहने वालों के लिये यह सबसे बड़ा आशीर्वाद होगा।

वास्तव में पूज्य महाराज जी यूनिवर्सल है और उनकी शिक्षायें, उनका दिव्य आशीर्वाद सभी संस्कृतियों, सभी भाषाओं को बोलने वालों, सभी धर्मों एवं पूरे विश्व के लिये है इसलिये बाय गाड्स ग्रेस का प्रकाशन पहले अंग्रेजी में किया गया था अब इसे हिन्दी भाषियों के लिये भी समर्पित किया जा रहा है।

पूज्य महाराज जी के 70 वें जन्मदिवस के अवसर पर बाय गाड्स ग्रेस कृति के हिन्दी अनुवाद के लिये योगाचार्य साध्वी आभा

सरस्वती जी को अनेक साधुवाद। उनके उत्कृष्ट प्रयासों से आज बाय गाड्स ग्रेस का हिन्दी प्रकाशन हम सब के मार्गदर्शन के लिये उपलब्ध है। इस प्रकाशन हेतु समर्पित पत्रकार श्री भव्य श्रीवास्तव का भी आभार जिनके प्रयासों से हम इस दिव्य कृति को आज सभी को उपलब्ध कराने में सक्षम हो पाये।

हमें पूरा विश्वास है कि बाय गाड्स ग्रेस के माध्यम से हम पूज्य स्वामी जी की शिक्षाओं और आशीर्वाद को सभी तक पहुंचाने में सफल होंगे और बाय गाड्स ग्रेस के हिन्दी प्रकाशन को आप सभी का भरपूर प्रेम मिलेगा इसी आशा के साथ,,,,,,

-डा साध्वी भगवती सरस्वती जी
अध्यक्ष, डिवाइन शक्ति फाउंडेशन

प्राक्कथन

परम पावन दलाई लामा

विश्व की सभी बड़ी धार्मिक परम्पराएँ एक-सी होती हैं, जो एक-दूसरे से सौहार्दपूर्ण व्यवहार बनाए रखने की अपार क्षमता रखती हैं। इसलिए, सर्वधर्म सद्भाव विश्व शान्ति के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। विशुद्ध सद्भाव और शांति को विकसित करने के लिए एक-दूसरे के प्रति तथा सभी धर्मों के प्रति सम्मान रखना अनिवार्य है।

बचपन से ही, जब मैं तिब्बत में था, मैंने भारत को सदैव अत्यंत आदरयुक्त अचम्भे से देखा है। इसकी सभ्यता ने अनेक प्रबुद्ध आचार्यों को जन्म दिया है, जो समाज के प्रति सदैव सम-र्पित थे। इसके फलस्वरूप अहिंसा, सहिष्णुता और बहुत्ववाद का एक समृद्ध और शालीन दर्शन यहाँ विकसित हुआ। मेरे विचार में, भारत इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि, सहिष्णुता और धार्मिक सद्भाव का ऐसा सह-अस्तित्व न केवल संभव है बल्कि यह एक ऐतिहासिक तथ्य भी है। मैं हमेशा अहिंसा और सर्व धर्म सद्भाव को भारत की ही बहुमूल्य देन समझता हूँ। अहिंसा और सर्व धर्म

सद्भाव में एक ऐसी क्षमता है, जो एक खुशहाल, सौहार्दपूर्ण और सद्भावपूर्ण समाज का निर्माण कर सकती है।

स्वामी चिदानंद सरस्वती जी एक ऐसे संत हैं, जो प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं को अपने जीवन में उतारते हैं। हम 1999 में केपटाउन में एवं 2009 में मेलबर्न, आस्ट्रेलिया में विश्व धर्म सम्मेलन (पार्लियामैंट ऑफ वर्ल्ड रिलीजन्स) के अवसर पर, तथा अनन्तर अनेकों समय मिले थे। उसके बाद अप्रैल 2010 में मैंने कुछ आध्यात्मिक गुरुओं और श्री एल के आडवाणी, भारत के पूर्व उप प्रधानमंत्री जैसे राजनेताओं के साथ हरिद्वार और ऋषिकेश की अत्यंत सुखद-मनोहर यात्रा भी की थी। हरिद्वार में यह कुंभ का अवसर था। इस पवित्र अवसर पर स्वामी चिदानंद स्वरस्वती जी की प्रेरणा और मार्गदर्शन में बनाए गए विश्व हिन्दू कोश (इन्साई-क्लोपीडिया ऑफ हिंदुइज़्म) का विमोचन समारोह सम्पन्न हुआ था। साथ ही परमार्थ निकेतन ऋषिकेश में गंगा नदी को प्रदूषण मुक्त करने हेतु 'स्पर्श गंगा' अभियान का शुभारंभ हुआ। स्वामीजी ने अपना पूरा जीवन गंगा नदी की स्वच्छता, शुद्धता और सुरक्षितता को समर्पित किया है। यह एक अद्भुत अवसर था।

इस पुस्तक में, बचपन से ही आध्यात्मिक जीवन को अपनाने की आतुरता, कठोर साधनाकाल से लेकर आज तक की स्वामीजी की जीवनयात्रा वर्णित है। आज एक धर्मगुरु होने का दायित्व निभाने के लिए वे विश्व भर में भ्रमण करते हैं। एक्कीसवीं सदी में यदि आध्यात्मिकता विश्व में कुछ सकारात्मक परिवर्तन लाने की कोशिश करती है, तो उसके लिए केवल शब्द ही काफी नहीं हैं, बल्कि उन शब्दों को आत्मसात कर, उन तथ्यों को अपने जीवन में उतारना भी अनिवार्य है। इस पुस्तक में ऐसे अनेक प्रसंग हैं,

जिससे यह पता चलता है कि स्वामीजी अपने जीवन में किस तरह से स्वयं यह सब करते आए हैं।

मुझे विश्वास है कि पाठकों को यह पुस्तक बेहद रोचक और प्रेरणादायक प्रतीत होगी। मुझे आशा है कि, पाठक इससे प्रेरणा लेकर इस विश्व को एक खुशहाल और अधिक शांतिपूर्ण स्थान बनाने के लिए अपनी अपनी परिस्थितियों के अनुसार यथाशक्ति योगदान देने के लिए प्रेरित होंगे।

-परम पावन दलाई लामा

आमुख

वर्तमान समय के एक महान आध्यात्मिक गुरु और व्यक्तिविशेष की जीवनी का आमुख लिखने का अवसर किसी के लिए भी अहोभाग्य से कम नहीं है। हालाँकि, जब किसी अन्य धर्म परंपरा और संस्कृतिक पृष्ठभूमि के व्यक्ति को यह अवसर मिलता है, तो यह और भी बड़ा अवसर है, और मैं दिल से इसका सम्मान करता हूँ।

स्वामी चिदानंद जी को पूरे विश्व में जो लोग जानते हैं, उनके लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी कि, मुझे यानि यहूदी धर्म के एक रबाइ को इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने का यह अवसर मिला है, क्योंकि पूज्य स्वामीजी की दृष्टि एवं ऊर्जा सभी सांस्कृतिक, आदर्शवादी एवं भौगोलिक सीमाओं कों पार कर जाती है।

सचमुच, मुझे प्रतीत होता है कि स्वामी चिदानन्द सरस्वती जी हमारे समय की धार्मिक समस्याओं का मूर्तिमान समाधान हैं। ऐसा समाधान जिस में सभी अपने अपने धर्मसे जुड़े रहते हुए भी सभी अपनी पूर्वाग्रह की दीवारों को पार कर सकें। दूसरे शब्दों में, अपनी

धार्मिक विशेषताओं से संलग्न रहकर वैश्विक सभ्यता और सौहार्दता को भी सम्मान से अपनाएँ।

हमारे वर्तमान समय में यह बात उभरकर सामने आती है कि जो व्यक्ति आध्यात्मिक है वह अपनी एक विशेष पहचान रखता है। समाज सेवी वैज्ञानिकों ने यह पाया है कि नशीली दवाओं की लत एवं हिंसक मनोवृत्ति जो सम्पन्न समाज के घटकों में भी देखी जाती है वह केवल अपने नीरस जीवन में कुछ उत्तेजना लाने का प्रयास करते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे अंधेरी सुनसान, एकाकी जीव-नशैली में कोई अपनी विशेष पहचान बनाने की कोशिश करता हो। हमारा धर्म और सांस्कृतिक विरासत इतनी सुंदरता और दिव्य ज्ञान रखती है कि आवश्यकता के अनुसार जीवनपर्यंत मार्गदर्शन करती है। व्यक्ति का अति प्रबल व्यक्तित्व कभी कभी मानसिक संकीर्ण-ता की ओर बढ़ता है। कट्टर धार्मिकता बहुश: इतनी आत्मकेंद्रित होती है कि ऐसा व्यक्ति फिर न किसी दूसरे के प्रति सोचता है न संवेदनशील ही होता है। समाज जब बिखरा हुआ होता है तब यह बात विशेष रूप से ध्यान में आती है।

पूज्य स्वामीजी न केवल एक महान गौरवशाली परंपरा के राजदूत हैं, और इस महान संस्कृति के एक महान आचार्य हैं... बल्कि उनका समस्त जीवन इस दिव्य परंपरा की महानता को इसके विशुद्ध स्वरूप में विश्व भर में पहुँचाने के इस विराट कार्य को समर्पित है, जिसका साक्षात् प्रमाण है, हिन्दूधर्म विश्व कोश का प्रकाशन और लोकार्पण। वे आध्यात्मिकता का संदेश सरल और सुगम भाषा में सभी धर्मों के जनसामान्यों तक पहुँचाते हैं। सबसे विशेष तो यह बात है कि, वे स्वयं अपने उदाहरण से प्रस्तुत करते हैं, कि कैसे हम “उस दिव्य आत्मा” को सब में देखें। उनके व्यापक

और प्रभावशाली सामाजिक एवं पारमार्थिक परियोजनाओं में इसका स्पष्ट दर्शन होता है।

लगभग दो हज़ार वर्ष पहले कुछ यहूदी संतवचनों में बेन ज़ोमा (एथिक्स ऑफ द फादर्स, 4:1) के नाम से एक प्रसिद्ध अवतरण है, जिसमें पूछा गया है कि, 'ज्ञानी कौन है?', 'शक्तिशाली कौन है?', 'समृद्ध कौन है?', 'आदरणीय कौन है?'... इसका उत्तर है- ज्ञानी वह है, जो सबसे सीखता है; शक्तिशाली वह है, जो अपनी इंद्रियों को वश में रखता है; सच्चा समृद्ध वह है, जो संतुष्ट है; आदरणीय व्यक्ति वह है, जो दूसरों का आदर करता है।

आधुनिक समाज में शायद ऐसे उत्तर न मिले। आज के परिप्रे-क्ष्य में ज्ञानी वह है, जिसके पास जानकारियों का बड़ा संग्रह है या इसका प्रमाण देने वाली बहुत सी डिग्रियाँ हैं; शक्तिशाली वह है, जिसके पास शारीरिक बल है और जो सेना प्रमुख है; समृद्ध वह है, जिसने बहुत धन सम्पदा प्राप्त की है और आदरणीय वह है, जिसे अनेक ख़िताब और पुरस्कार प्राप्त हैं। इन सभी उत्तरों में यही बात सामने आती है कि हम अक्सर लोगों को उनके द्वारा इकठ्ठा की गई सामग्री से आँकते हैं। संत बेन ज़ोमा पाने की चर्चा नहीं करते हैं बल्कि जीने की चर्चा कर रहे हैं... हम क्या हैं इसकी चर्चा वे कर रहे हैं। स्वामी चिदानंद सरस्वती जी के संदर्भ मेँ उनका (संत बेन ज़ोमा का) निरीक्षण अत्यंत औचित्यपूर्ण है।

स्वामीजी सदैव वैसा जीवन स्वयं जीते हैं। पूज्य स्वामीजी केवल ज्ञानी ही नहीं हैं बल्कि उनका विवेक और उनकी प्रज्ञा उनके मानवता से जुड़े सभी अनुभवों की फलश्रुति है। वे अद्भुत शक्तियों के धनी हैं, इंद्रिय निग्रह उनका सामर्थ्य है। वे आध्यात्मिक ऐश्वर्य से ओतप्रोत हैं... जीवन मेँ प्राप्त होने वाले प्रत्येक पल के आनंद

लेने और देने में कृतज्ञता और गुणग्राहकता का आदर्श सामने रखते हैं। इन सबके साथ ही स्वयं एक अत्यन्त श्रद्धेय एवं पूज्यनीय संत होने के बावजूद भी, उनकी महानता इसीसे प्रतीत होती है कि वे सभी का सम्मान करते हैं, बिना किसी भेदभाव के पूरे विश्व में सभी से प्रेम और आदर से मिलते हैं।

मेरा अहोभाग्य एवं प्रसन्नता है कि मुझे अनेक अंतर्राष्ट्रीय सर्वधर्म संसदों मैं उनके कई मंचों पर साथ रहने का अवसर प्राप्त हुआ। इन सब में नयी दिल्ली एवं येरूशलेम, इज़रायल मैं आयोजित 'हिन्दू ज्यूइश लीडरशिप समिट्स' आदि सबसे विशेष थे। मेरी धर्म-पत्नी शेरोन और मैं और मेरी सुपुत्री अमीरित ने परमार्थ निकेतन के विशेष अतिथि होने का सम्मान और आनंद भी प्राप्त किया है। जब भी उनसे मिला, हर बार यह मिलन अखन्ड ज्ञान का स्वरूप, सुंदरता, उनकी दिव्य ऊर्जा, आत्मीयता का वैभव एवं निर्दोष गौरव के दर्शन का था!

उनकी इस विशेष वर्षगाँठ के अवसर पर, मैं असंख्य भक्तों की ओर से प्रार्थना करता हूँ कि परमात्मा उनको स्वास्थ्य एवं ऊर्जा देते रहेंगे जिससे वे जैसे आजतक पूरी मानवता के लिए एक वरदान बनकर मार्गदर्शन और आशीर्वाद देते रहे हैं वैसे ही भविष्य में आनेवाली अनेक सदियों तक देते रहेंगे।

-रबाइ डेविड रोज़ेन
-इज़रायल

प्रस्तावना

डा. साध्वी भगवती सरस्वती

जब मैं अमेरिका से भारत आई और परमार्थ निकेतन, ऋषिकेश में पूज्य स्वामीजी से पहली बार मिली, तो उनके आभा मण्डल, उनकी सरलता, विनम्रता, सादगी और सात्विकता से इतनी प्रभावित हुई की मैं ने उनसे श्रद्धापूर्वक प्रार्थना की कि वे मुझे अपना शिष्य स्वीकार कर लें... "आजतक जितने लोगों से मैं मिली उन सबमें पूज्य स्वामीजी सबसे अद्भुत व्यक्तित्व हैं!" मैं बीसियों लड़कियों के एकत्रित उत्साह के बराबर होकर प्रसन्नता और अहोभाव से चिल्लाती, "आप बहुत ही दिव्य, प्रभावशाली, आसाधारण और विस्मयपूर्ण हैं!"....या मैं कुछ अधिक स्पष्ट रूप से कहती कि, : "आपका कंठ एकदम स्वर्गीय है"।

इतनी सब प्रशंसा के बाद भी उनका हमेशा एक ही उत्तर रहा, **"सब प्रभुकृपा है!"**

पच्चीस वर्ष की एक अमेरिकन यहूदी लड़की के लिए यह कल्पना केवल अकल्पनीय थी। मधुर! सुंदर!! प्यारी!!! लेकिन अगाध और कभी कभी गले से न उतरनेवाली...। "जी जी... मुझे पता

है।" मैं कहती। मेरा अचम्भा छुपाने की कोशिश करते करते यह दिखाती कि जैसे मैं भी उनकी तरह सदैव ईश्वर की सन्निधि में रहकर उनके दिये हुये उपहारों को महसूस करती हूँ। "लेकिन मैं **आप** की बात कर रही हूँ"। मैं फिर भी विनम्रतापूर्वक कहती, "आप अद्‌भुत हैं"!

परंतु पूज्य स्वामीजी का हमेशा एक ही उत्तर होता... **"सब प्रभुकृपा है!"**

अब लगभग 25 वर्षों से जबसे मैं उनकी आध्यात्मिक सेवा में हूँ... पूरी दुनिया में अलग अलग प्रान्तों, देशों और परिस्थितियों में लोगों से मिलते हुये मैं ने उन्हे देखा है...विश्वप्रसिद्‌ध परम पावन दलाई लामा जी से लेकर अमरीका के पूर्व राष्ट्रपति बिल क्लिंटन तक, हॉलीवुड की प्रसिद्‌ध अभिनेत्री उमा थर्मन से लेकर विश्व के अनेकों प्रधानमंत्रियों, राष्ट्रपतियों या प्रख्यात व्यक्तियों तक तथा साधारण से साधारण व्यक्ति या फिर दिल्ली या डरबन के अनाथ, बेघर बच्चों तक, महान भारत के राष्ट्रपति या फिर माननीय प्र-धानमंत्री गण तक... उनको मैं ने संवाद साधते देखा है... लेकिन कभी भी अपनी प्रशंसा का उत्तर **"सब प्रभुकृपा है!"** से अलग नहीं सुना! उनको ज्ञात है कि सामान्यत: किसी भी प्रशंसा का उत्तर "धन्यवाद" होता है। उनके लिए कोई भी प्रशंसा, किसी कार्य को सम्पन्न करनेपर लोगों से मिलने वाले भक्तिपूर्ण आभार, उनके आशीर्वचनों के जवाब में दी गईं प्रशंसात्मक प्रतिक्रियाएँ, इतनाही नहीं, उनके प्रवचन सुनने के बाद मिलनेवाली प्रतिक्रियाएँ भी सभी 'प्रभुकृपा' ही होती है। वे अपने आप को महज एक माध्यम मात्र मानते हैं जो प्रभु कृपा से सही समय एवं सही जगह उपयोगी हो पाया! "एक लाउडस्पीकर किसी प्रवचन का श्रेय नहीं ले सकता...

क्या ले सकता है?" वे पलटकर पूछते हैं कि क्या किसीको इतना उन्मत्त होना चाहिए कि जो कह सके कि यह सब मेरा है न कि ठाकुर का है! "यदि वह माइक्रोफोन कहे कि, 'वाह वा... क्या बात है... आज मुझे लोगों ने खड़े होकर अभिवादन किया है... या सभा ने मुझे बहुत पसंद किया है... या मैं ने एक बहुत ही प्रेरणास्पद प्रवचन दिया!' क्या यह हास्यास्पद नहीं होगा?" वे सचमुच अपने आप को वही माइक्रोफोन ही समझते हैं, केवल एक माध्यम, ना कि कोई स्वयं की शक्ति या अपना चमत्कार। परंतु उनका सदैव एक ही उत्तर होता...**"ये सब प्रभुकृपा है!"**

पूज्य स्वामीजी प्रभुकृपा से जितने विस्मयाकुल या अपार श्र-द्धावान हैं उतने ही उनसे मिलनेवाले सभी उनके लिए हैं! "देखो देखो कैसे **माँ हर चीज़ का ध्यान रखती है!"** सहसा उनके मुखसे ऐसे उद्गार निकलते हैं जब भी कोई कार्य सैंकड़ों घंटों की मेहनत एवं असीम मनोयोग के बाद सम्पन्न होता है! तो वे केवल इतना भर ही कहते हैं, "ठाकुरजी की कृपा सचमुच अद्भुत है!" जब कभी विद्या-लय, अनाथालय, महिला व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्र, चिकित्सा केंद्र, आपदा राहत कार्यक्रम, नदियों की स्वच्छता कार्यक्रम और ग्रामीण विकास परियोजनाओं को साकार होते देख दबी सी आवाज़ में और नम आँखों से बोलते हैं, "ठाकुर जी की कृपा सचमुच अद्भुत है! यह सब उनकी कृपा से ही हो रहा है...हम सब तो केवल निमित्तमात्र हैं।" चाहे उन्हों ने ही सभी परियोजनाओं में आयोजन से लेकर मार्गद-र्शन, निरीक्षण, प्रत्येक पहलू का विचार शुरू से अंत तक किया हो, तो भी सफलता का श्रेय वे कभी स्वयं नहीं लेते। हाँ, उनको पता है कि, वे हर रोज़ पन्द्रह घंटों से ज़्यादा समय दर्जनों परोपकारी परियोजनाओं के आयोजन, मार्गदर्शन, प्रोत्साहन में व्यतीत करते

हैं, लेकिन फिर भी उनके अनुसार, वे स्वयं कुछ नहीं करते। बस, सब प्रभुकृपा है। ठाकुर जी की कृपा है, कि, इन सब सेवाओं के लिए अपना समय, ऊर्जा, क्षमताएँ और साधन सामग्री प्रदान करने का अवसर उनको मिला है।

धर्मार्थ परियोजनाओं का चयन वे कैसे करते हैं? और कैसे यह तय करते हैं कि कैसे और कहाँ... एक और निःशुल्क कम्प्युटर केंद्र या अनाथालय या स्वास्थ्य चिकित्सा शिविर का आयोजन करें?... उनका उत्तर सरल है, वे स्वयं कुछ नहीं करते; उनके ठाकुर जी करते हैं! उनको विश्वास है कि जो भी उनके सामने आता है, वह प्रभु की ओर से ही आता है और उसका स्वीकार करना तथा उस सेवा में स्वयं को लगा देना उनका धर्म है। इसलिए हम आने वाली परियोजना के बारे में कभी भी सोचते नहीं है। हमें यकीन होता है कि, एक परियोजना पूर्ण होने से पहले कोई न कोई और परियोजना हमारी झोली में आने ही वाली है। कई बार तो जब सेवा कार्यों की सूची इतनी लम्बी हो जाती है, कि उसको याद करना भी मुश्किल हो, तब पूज्य स्वामीजी को अक्सर कहते सुना जाता है- "अब कोई नया सेवा कार्य नहीं।" लेकिन हम सब को मालूम है, इसका मतलब केवल यह है कि, कोई नया कार्य तब तक नहीं लिया जाएगा, जब तक वह आ नहीं जाता! एक माँ अपने बच्चे के रोने की आवाज़, शिकायतें एक हद तक तक अनसुनी कर सकती है, लेकिन फिर वह ज़्यादा देर तक उसे रोता हुआ छोड़ नहीं सकती है, उसका दुःख-दर्द सह नहीं सकती है। ठीक उसी प्रकार पूज्य स्वामी जी पूरे विश्व की चिंता में एक माँ की भूमिका जीते हैं और मुश्किलों के बावजूद भी सभी की सहायता करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहते हैं।

इस जीवनी के बारे में

इस जीवनी को लिखने की अनुभूति ठीक वैसी थी, जैसे कोई सूरज की पुष्टिकर किरणों का वर्णन करने की कोशिश करना चाहता हो। जिसने सूर्यस्नान का आनंद लिया हो, सूर्य की किरणों में अपने शरीर को विश्राम देते हुए पिघलने का अनुभव किया हो, उसे इस अनुभूति को और समझाने की आवश्यकता नहीं होती। कोई भी शब्द इसका वर्णन नहीं कर सकते। सूर्यप्रकाश के उल्लेख मात्र से हमारी बुद्धि, भावना और शरीर में एक विशेष संवेदना होती है। जो लोग कभी घर से बाहर नहीं निकलते या बेहद ठंड प्रदेशों में रहते हैं, जहाँ सूर्य दर्शन भी बड़ी मुश्किल से होता है, उनको केवल शब्दों के माध्यम से यह अनुभव कराना संभव भी नहीं है।

वैसे ही, यह पूज्य स्वामी जी की जीवनी है भी और नहीं भी। पिछले कुछ सालों से उनके जीवन के बारे में मैं ने जो भी जानकारी इकठ्ठा की, उसका प्रामाणिक लेखा-जोखा इस जीवनी के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास मैंने किया है, फिर भी यह अपूर्ण है... भारतीय परंपरा में अभी पिछले कुछ दशकों तक भी, समय की यथार्थता पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। बहुत कम लोग थे जो समय की सूक्ष्मता पर ध्यान दिया करते। "वे गर्मी के दिन थे" लोग कहते... या "वह फाल्गुन मास का कृष्ण पक्ष था"... इत्यादि... हिन्दी वर्णमाला में बावन अक्षर हैं, जिससे अंग्रेज़ी की तुलना में बहुत ज़्यादा शब्द बन सकते हैं। "पानी" के लिए दर्जनों शब्द हैं और संदर्भ के साथ उनका प्रयोग किया जाता है। बहते हुए या ठहरे

हुए पानी के लिए, शुद्ध या अशुद्ध पानी के लिए या नदी के या शौचालय के पानी के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले शब्द अलग अलग होते हैं। फिर भी "कल" जैसा एक ही शब्द बीते हुए और आने वाले दिन के लिए प्रयोग किया जाता है! हिन्दी में सच में समय केवल दो प्रकार का होता है, एक वर्तमान और बाकी सब कुछ... यह जीने का एक अद्भुत तरीका है लेकिन... यह एक और पुस्तक का विषय हो सकता है। इसका औचित्य केवल यही है, कि जब भी मैंने तथ्यों को जाँचने की कोशिश की, तब अधिकतर लोगों द्वारा प्राप्त जानकारी एक हद तक ही सटीक होती थी।

पूज्य स्वामीजी के बारे में बताने वाली केवल कालक्रमबद्ध जीवनी, उनके चरित्र की गहराई के संदर्भ में शायद अपूर्ण होती। वह आपको इतना ही बता पाती कि, वे कहाँ गए, किससे मिले, उन्हों ने क्या किया और उन्हों ने क्या कहा। परंतु, वह आपको पूज्य स्वामी जी के अनुभव और ज्ञान का दर्शन नहीं करा सकती थी, जैसे सूर्य के बारे में केवल पढ़ने से कड़कती ठंड में गर्मी का अनुभव नहीं हो सकता। इसी वजह से मैंने केवल कालक्रमबद्ध जीवनी प्रस्तुत नहीं की है। मैंने केवल पूज्य स्वामी जी की जानकारी नहीं दी है, बल्कि उनका अनुभव साक्षात कराने की कोशिश की है। "केवल उद्बोधन नहीं, स्पर्श भी" यह उनका ही भाव आप तक पहुँचाने की कोशिश की है। मुझे उम्मीद है कि, यह पुस्तक रोचक भी और प्रेरणादायक भी हो और आपको आपकी गहराई तक छू ले, जहाँ शायद सालों से किसी सूर्य किरण की रोशनी का स्पर्श नहीं हुआ हो।

यह पुस्तक कैसे बनी?....

पूज्य स्वामी जी की जीवनी मैं तब से लिखना चाहती थी, जब उनसे मिले केवल एक सप्ताह ही बीता था। पूज्य स्वामीजी जैसे हैं, जैसे उनका जीवनयापन है, जैसे उनके आदर्श हैं, जैसे उनके उपदेश हैं.... उन्हें देखकर मुझे ऐसे लग रहा था कि ऐसे अद्भुत दिव्य जीवन को पूरे विश्व के साथ बाँटना चाहिए...सभी को इस अद्भुत आनंद का लाभ मिलना चाहिए। पश्चिमी संस्कृति में पली बड़ी होने से एवं वहाँ के उच्चतम विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों से शिक्षा पाने के कारण मुझे तीव्र एहसास था कि विश्व के जनमानस को ऐसी शिक्षा की कितनी अधिक आवश्यकता है... मेरा मतलब तो बहुत नेक था लेकिन पूज्य स्वामीजी से इस विषय में पूछकर मैं गलती कर बैठी! "अवश्य!" उन्होंने कहा। "जैसे ही तुम अपना हाथ में लिया हुआ काम पूरा करोगी, तब यह शुरू कर दो...!" जैसे जैसे वह छोटासा काम धीरे धीरे बढ़ता गया, फैलता गया, फैलता ही चला गया! मैं समझ गयी कि समय की प्रतीक्षा करना बेकार है, मुझे एक निश्चित समय पर इस पुस्तक का लेखन पूर्ण करने का निश्चय करना होगा । हर बार मैं उन्हें हलके-से याद दिलाया करती थी, "मैं सचमुच आपकी जीवनी लिखना चाहती हूँ, स्वामीजी!"

"हाँ हाँ ज़रूर!" वे भी बड़े प्यार से जवाब देते। "जैसे ही ये प्रकल्प पूरा हो जाता है.... लिख देना!" कभी वह काम किसी विद्यालय के विकास या फिर किसी महिला व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्र का कार्यक्रम हुआ करता... कभी परमार्थ निकेतन आश्रम में कोई स्वास्थ्य चिकित्सा सेवा शिविर होता था तो कभी कैलाश मानसरोवर की यात्रा होती...जहाँ उन्हों ने तिब्बत की पवित्र भूमि पर,

तीर्थयात्रियों की सुविधा हेतु तीन विश्रामगृहों का निर्माण किया था| फिर एक बार उन्हों ने कहा, “हिन्दू धर्म विश्वकोश के ग्यारह खंड़ों का विमोचन होना है, ध्यान से यह खंड पढ़ कर देखना कहीं कोई गलती न रह गयी हो, लगभग सात हज़ार लेख हैं इस में... उनका ठीक से संकलन करना है... जैसे ही यह पूरा हो जाए तुम जो करना कहती हो वह काम कर सकती हो”।

हिंदूधर्म विश्वकोश के पहले कुछ खंडों का विमोचन 20१० में हरिद्वार कुम्भ मेला के अवसर पर परम पावन श्री दलाई लामा जी द्वारा किया गया और मेरी यह ज़िम्मेदारी पूरी होने पर मुझे लगा कि अब मैं अवश्य पूज्य स्वामीजी की जीवनी लिखने के बारे में सोच सकती हूँ। लेकिन ऐसा नहीं हुआ... क्यों कि पूज्य स्वामीजी ने परम पावन श्री दलाई लामा से हिंदूधर्म विश्वकोश का न केवल विमोचन ही करवाया बल्कि माँ गंगा की सुरक्षा एवं स्वास्थ्य के लिए “गंगा एक्शन परिवार” के नाम से एक अति विशाल उपक्रम की अगुआई की घोषणा भी कर दी। “गंगा एक्शन परिवार” एक विश्व-परिवार का रूप ले चुका है। गंगा एक्शन परिवार गंगा जी की सुरक्षा एवं स्वच्छता सेवा में समर्पित है.... गंगा जो एक माँ भी है और सवा-सौ करोड़ भारतवासीयों के लिए देवी माँ भी है, जो पीने का पानी, रसोई, स्नान, धुलाई एवं खेतों की सींचाई हेतु 45 करोड़ भारतीयों कों पानी की आपूर्ति करती है। गंगा एक्शन परिवार की सब से पहली महत्वपूर्ण परिषद परमार्थ निकेतन में 21 और 22 अप्रैल 2011 को आयोजित हुयी जिसमें नोबेल पुरस्कार सम्मानित डा. आर के पचौरी एवं अन्य दर्जनों विद्वान वैज्ञानिक, इंजीनियर्स एवं अनेक कार्यकर्ता उपस्थित थे। ज़ाहिर है, बहुत काम था, ज़िम्मेदारी भी....।

उन गर्मियों में मैंने कम से कम दो बार इस पुस्तक का पूरा प्रारूप बनाया और उसको हटा भी दिया...अच्छा नहीं लगा...जो महान व्यक्ति दुनिया के अंधकार में प्रकाश लाने के हर संभव प्रयास में व्यस्त है, जिसका होना मात्र विश्व के लिए एक वरदान भी है और चमत्कार भी... ऐसे व्यक्ति का चरित्र मैं स्याही से काग़ज़ पर उतारने की नाकाम कोशिश कर रही थी...लिख रही थी... बार बार लिखती रही...मिटाती रही, शब्द, वाक्य, पृष्ठ, अध्याय... शायद मैं ने पूज्य स्वामीजी का वर्णन उन पन्नों में किया भी होगा लेकिन, मेरी लिखावट पूज्य स्वामीजी की विचारधारा एवं उनके व्यक्तित्व का आंशिक बोध एवं अनुभव भी नहीं करा पा रही थी। अपनी लिखाई से उनका सही अनुभव दिलाने में...किसी तरह उनके चरित्र के साथ न्याय करने में मैं निराश होती रहती... ऋषिकेश में सेवा, फोन काल्स, मीटिंग्ज, अतिथिसत्कार, कार्यक्रम और यात्राओं के बीच में कभी कभार मिलने वाले 10/15 मिनिट्स वाले अवकाश में इस काम को हाथ लेना बेकार हो जाता...हार कर आखिर मैं ने नवरात्रि के पर्व पर मौन साधना और एकान्तवास का सहारा लिया...एक विशेष लेखन ध्यान साधना का अनुष्ठान करने का संकल्प लिया...यह पर्व सितम्बर या अक्तूबर में आता है... उस वर्ष सितम्बर के कुछ दिन और अक्तूबर के कुछ दिन मुझे मिले... यह अवसर भारत में और भारतीय संस्कृति में अत्यंत शुभ, पवित्र और साधना के लिए विशेष माना जाता है। स्वयं पूज्य स्वामीजी इन नौ दिनों में ईश्वर की आराधना करते हैं, माँ के रूप में! जैसे ही मैं अपने मेज़ के पास बैठी, सारे फोन्स बाहर के स्वागत कक्ष में मोड़ दिये...ई मेल्स ऑटो रिप्लाई मोड़ पर फेर दिये...कानों में रुई डालकर बाहर की आवाज़ की दुनिया से किनारा कर लिया और पूर्ण

रूप से लिखने के लिए स्वयं को प्रभु के हाथ में सौंप दिया!....यह एक दिव्य अनुभव था...यह सब पूज्य स्वामी जी की ही लीला थी... उनकी प्रतिभा का ही अलौकिक एवं गूढ सुनियोजन था...मैं जान गयी!... अरे हाँ! ये तो 'माँ' हैं!! ये तो उनकी कृपा है!!! यह तो माँ की ही योजना थी कि यह पुस्तक उस जगन्माता की सन्निधि में, नवरात्रि में लिखी जाये... और यह सब सिर्फ़ और सिर्फ़.... "**प्रभुकृपा**" से ही संभव था!!!

पुस्तक का अभिन्यास

इस पुस्तक के तीन भाग हैं। इसमें ग्यारह अध्याय हैं जिसमें क्रमश: पूज्य स्वामी जी के बचपन की विविध घटनाएँ तथा अनुभव से लेकर आज तक की उनकी अद्‌भुत जीवनयात्रा का सचित्र और बेहद प्रेरणाप्रद और व्यापक वर्णन है। बीच बीच में गहरे नारंगी रंग के साइड बार्स हैं जो पुस्तक के किसी बिन्दु पर अधिक रोशनी डालते हैं। तत्पश्चात उनके उद्‌बोधन हैं। यह उपदेश उन की आवाज़ में हैं जो उनके विशेष सिद्‌धांतों और उपदेशों को मुखरित करते हैं। अक्सर आश्रम में आने वाले लोग उनके प्रवचन एवं उनकी शिक्षाओं के बारे में, विदेशों की धर्मयात्राओं के दौरान दिये गए प्रवचन एवं उपदेशों के बारे में पूछते रहते हैं। सवाल काफी सरल से होते हैं लेकिन उत्तर बहुत ही गहन गंभीर होते हैं। सच तो यह है कि उनका उत्तर प्रश्नकर्ता की खोज पर निर्भर रहता है...यही कारण है कि कई बार ही प्रश्न के उत्तर एक दूसरे से विपरीत लगते है! मैं ने एक बार पूछा भी... "....लेकिन, पूज्य स्वामीजी, पिछली बार किसी ने यही सवाल पूछा था तो आपने बिलकुल अलग ही उत्तर

दिया था। मुझे याद है...” “बिलकुल!” पूज्य स्वामीजी कहते, “क्यों कि मैं सवाल का जवाब नहीं देता, मैं प्रश्नकर्ता को उत्तर देता हूँ!” प्रत्येक व्यक्ति की खोज अलग अलग होती है, हर व्यक्तिविशेष को विशेष उद्बोधन की आवश्यकता होती है उसके अनुसार एक ही प्रश्न के उत्तर हर दूसरे व्यक्ति के लिए अलग होते हैं! यही कारण है कि मैंने पूज्य स्वामीजी के वही उपदेश, विचार और आचरणीय सिद्धांतों को चुना है जिससे सभी को लाभ हो और जिस से हर किसी को पूज्य स्वामीजी की शिक्षा, उपदेश और उनके दिव्य स्पर्श की अनुभूति भी प्राप्त हो।

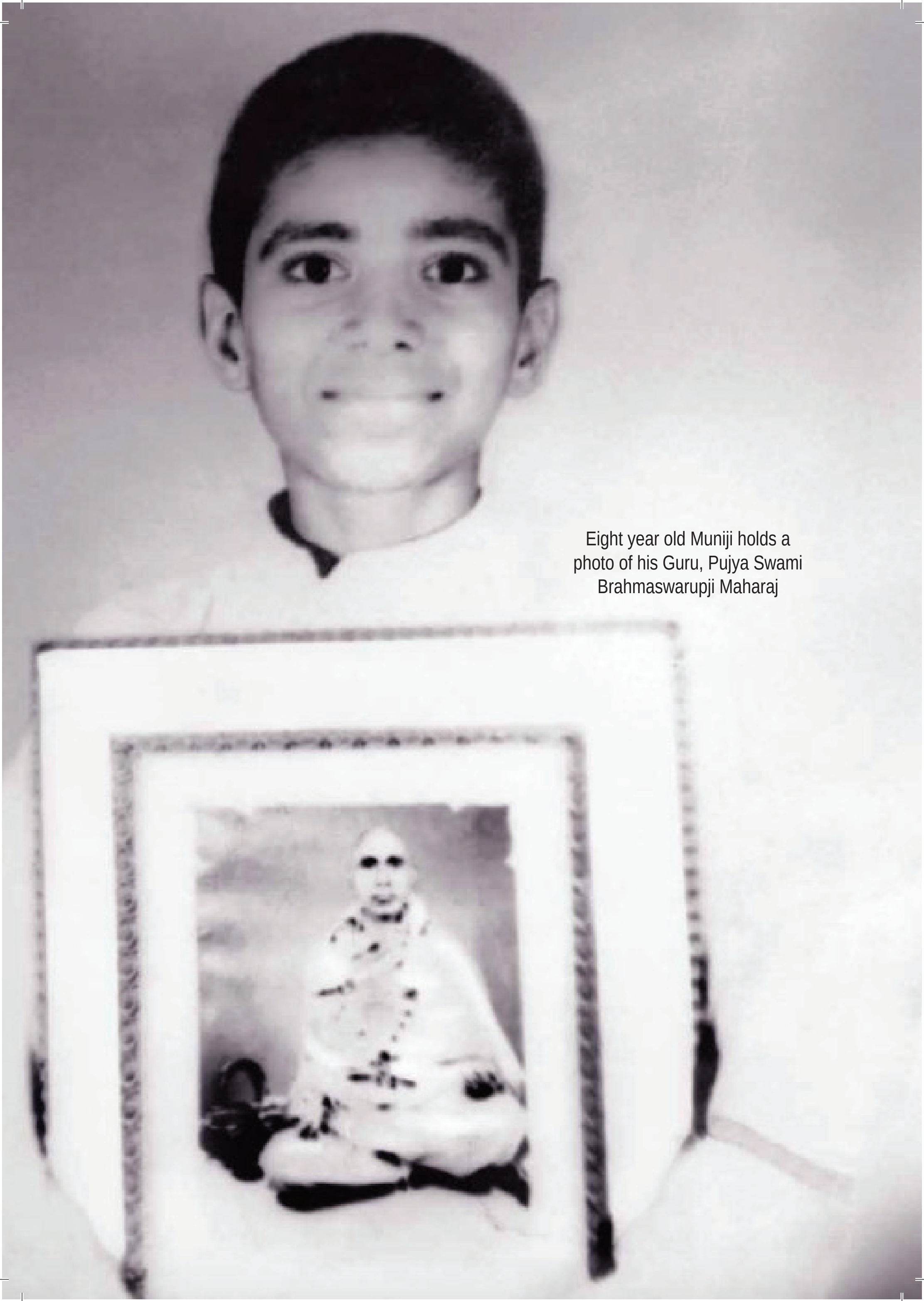

Eight year old Muniji holds a photo of his Guru, Pujya Swami Brahmaswarupji Maharaj

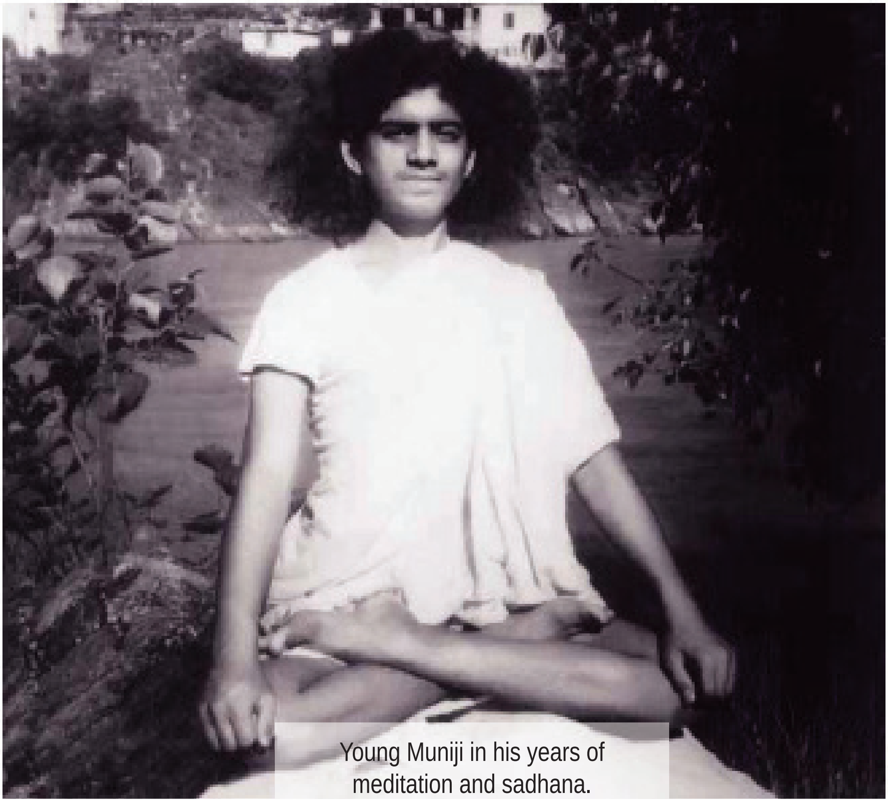

Young Muniji in his years of meditation and sadhana.

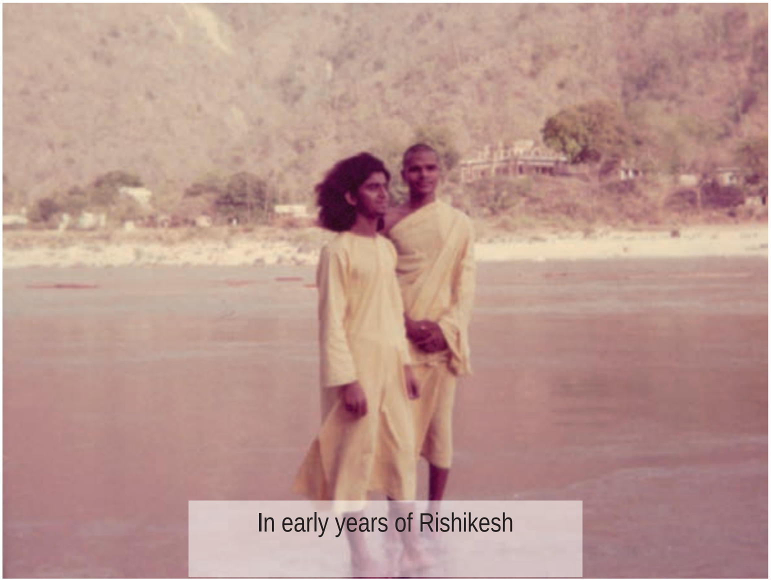

In early years of Rishikesh

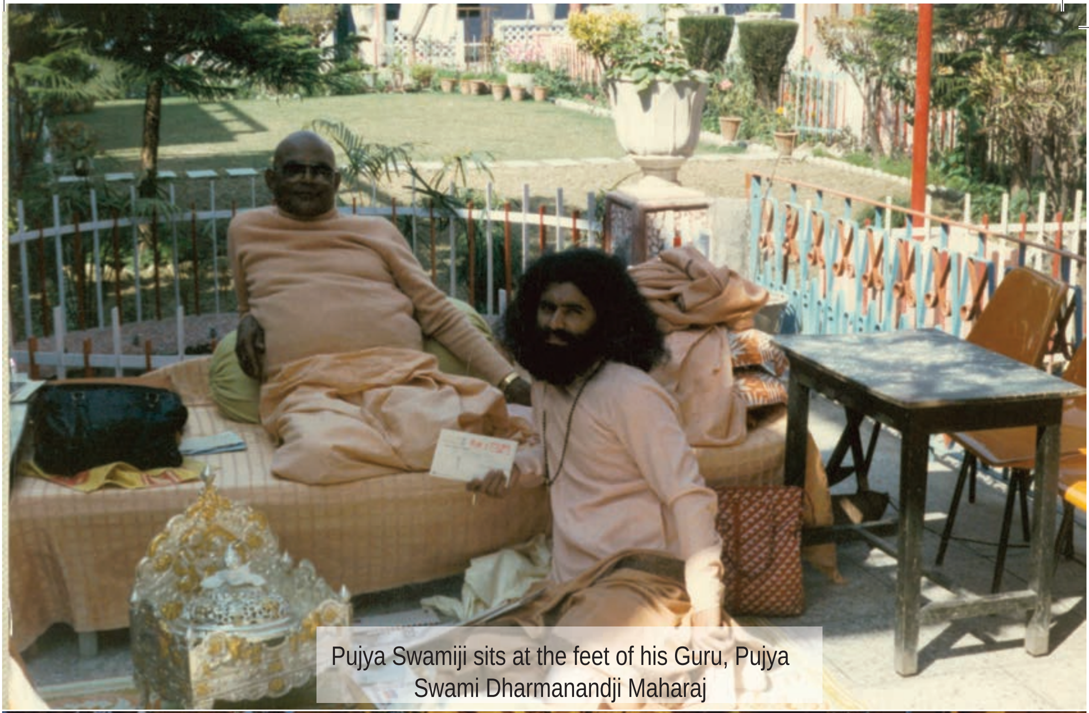

Pujya Swamiji sits at the feet of his Guru, Pujya Swami Dharmanandji Maharaj

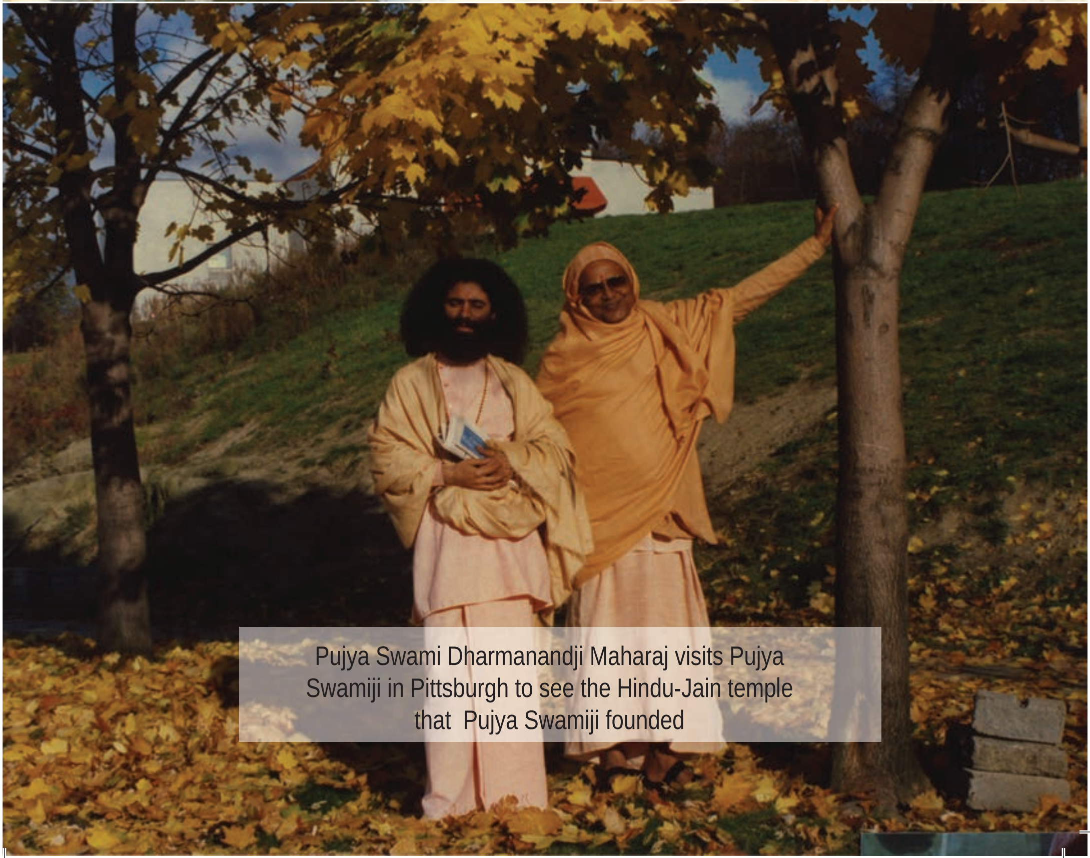

Pujya Swami Dharmanandji Maharaj visits Pujya Swamiji in Pittsburgh to see the Hindu-Jain temple that Pujya Swamiji founded

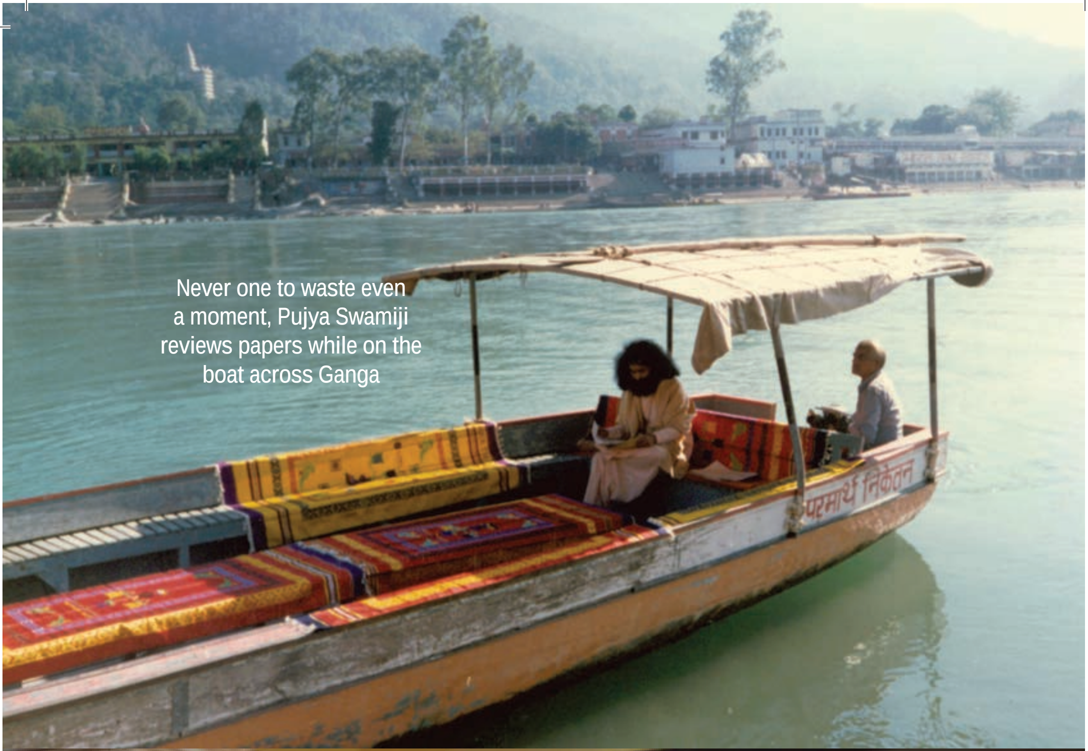

Never one to waste even a moment, Pujya Swamiji reviews papers while on the boat across Ganga

The Ganga Aarti ceremony each evening, led by Pujya Swamiji, has become internationally famous

प्रथम अध्याय

एक संत का जन्म

"प्रभुकृपा से मुझे पहले से ही अंदेशा था और इच्छा भी थी कि मैं अपना एक बालक भगवान को समर्पित करूँगी..." पूज्य स्वामीजी की माँ, पूज्य माताश्री कहती हैं, "उस दिन की बात है जब मैं किसी पवित्र यज्ञ में बैठी थी, 'संत जी' गोद में थे, स्तनपान करनेवाले नवजात शिशु ही थे अभी ... संकल्प उठा मनमें एक प्रार्थना के रूप में... हृदय से प्रार्थना की कि मेरी कोख से निकले इन फूलों में से कम से कम एक फूल तो स्वीकार कर लो प्रभु... उसे अपना लो, अपने जैसा बना लो!..."

आठ वर्ष बाद यही बालक, जिसे उसके सौम्य और संतों जैसे गुणों के कारण बचपन से ही 'संत' नाम से पुकारते थे, एक दिन घर आया और सहज ही घोषणा कर दी, "....मैं स्वामीजी बनना चाहता हूँ। माताश्री, कृपा करके मुझे स्वामी जी बना दो!"

पूज्य स्वामीजी के पिता, पिताश्री, एक प्रतिष्ठित एवं भक्त हृदय व्यक्ति थे और संतों के प्रति उनकी भक्ति, निष्ठा एवं समर्पण के लिए अपने गाँव में सुपरिचित थे। अपने समृद्ध पारिवारिक दुकान से आनेवाला एक पैसा भी बैंक में या घर में इकट्ठा नहीं किया जाता था... मुश्किल समय के लिए भी बचाया नहीं जाता था। कमाया हुआ पूरा धन हृदय से साधु-संतों की सेवा या सेवाभावी और आध्यात्मिक संस्थाओं को दान करने में ही लगाया जाता था... बिलकुल खुले हाथों से... किसी भी स्वार्थ के बिना... यद्यपि उनके चार बेटे और एक बेटी थी, सब दस वर्ष से कम आयु के थे, उनके लिए कोई धन सुरक्षित रखने की कल्पना भी शायद उन्हों ने नहीं की होगी.... ऐसे समय में सामान्यत: लोग, अपनी धनसंपदा परिवारकी आवश्यकताओं का विचार किए बिना, इस प्रकार लुटानेवाले को अव्यवहारी एवं गैरज़िम्मेदार ही ठहराते... फिर भी, पिताश्री की जीवनशैली, एक असामान्य विचार और चिंतन-मनन पूर्वक किया हुआ आचरण था। उनके व्यवहार को लेकर जब कोई उनसे पूछता तो वे कहते, "संत महात्मा ही तो मेरी सुरक्षा और बीमा राशि है! उनके आशीर्वाद से बढ़कर मेरे लिए और अभय या आश्रय क्या हो सकता है?" हर बार कोई साधु-सन्यासी गाँव आता तो पिताश्री ही सबसे पहले उनके चरणों में जाकर उनसे प्रार्थना करते कि उन्हे

उनकी सेवा का अवसर मिले। उनके इस अनन्य भाव एवं श्रद्धा-भक्ति के कारण उन्हें गाँववाले 'भगत जी' के नाम से बुलाते!

एक सुबह, जूट (टाट) के कपड़े से कमर कसा हुआ कोई परिव्राजक संत गाँव में आया। जैसे ही पिताश्री ने सुना कि उनके गाँव के मंदिर में कोई संत आया है, अपने बेटे संत जी को साथ लेकर भागे और उनके चरणों में जाकर ही रुके..."स्वामीजी, मंदिर में आपके सत्संग के बाद कृपा कर हमारे घर आकर भोजन ग्रहण करें"। पिताश्री ने सविनय प्रार्थना की।

पूज्य स्वामी ब्रह्मस्वरूपजी एक फक्कड़ संत थे...उनकी कोई ज़रूरतें नहीं थीं, न किसी से कोई याचना न ही किसी पर निर्भर ही थे...ईश्वर के अलावा इस दुनिया से कोई अपेक्षाएँ नहीं थीं। शरीर की कोई भी ज़रूरतें या कामनाओं से वे पूर्णत: अलिप्त और उदासीन थे। पिताश्री की प्रार्थना पर वे बोले, "यदि मैं दोपहर के भोजन तक यहीं रुका तो आ जाऊँगा वरना रास्ते में कहीं न कहीं भगवान भोजन-भिक्षा तो दे ही देंगे1"

यह सुनकर पिताश्री ने नन्हें संत जी को वहीं, मंदिर में ही बिठाया, गुरुजी के चरणों में... यदि स्वामीजी प्रस्थान करने की चेष्टा करते हैं, तो तुरन्त संत जी भागकर अपने माता पिता को आगाह कर दें ताकि वे स्वयं आकर स्वामीजी को सम्मानपूर्वक अपने घर ले जा सकें। संत जी स्वामीजी के चरणों में बैठे...चुपचाप, शांत और स्तंभित...। छोटे से भक्तसमुदाय से घिरे हुए पूज्य स्वामी ब्रह्मस्वरूपजी ने संत जी से बिना कुछ कहे अपनी प्रभुता और प्रभाव से संत जी के बाल मन पर अध्यात्म का इंद्रजाल बिछाना शुरू कर दिया था!

संत जी का शुद्‌ध-निर्मल चित्त स्वामीजी की स्थिर एवं पवित्र दृष्टि के प्रभाव में जैसे ठहर गया, शांत हो गया।

"हम में से किसी ने बात भी नहीं की... मंदिर के किसी कमरे में एक चारपाई पर वे बैठे थे। मैं उनके चरणों में ज़मीन पर बैठा हुआ था। मुझे अभी भी उस दिव्य अनुभूति का स्मरण है... पूरा कमरा एक प्रशांत स्नेहमयी ऊर्जा से ओतप्रोत था!" पूज्य स्वामीजी अपनी यादें साझा करते हुए कहते हैं।

अचानक पूज्य स्वामी ब्रह्मस्वरूप जी ने छोटे संत जी को अपने पास इशारे से बुलाया। जैसे संत जी उठकर उनके सामने खड़े हो गए, पूज्य स्वामी ब्रह्मस्वरूपानन्द जी ने संत जी की भृकुटि मध्य (आज्ञा चक्र) में अपने दाहिने अंगूठे से स्थिर एवं दृढ़ता से स्पर्श किया। पूज्य स्वामी जी कहते हैं,

"मैं खो गया...बाहरी दुनिया का भान नष्ट हो गया... जैसे मेरी व्यक्तिगत चेतना का पात्र चूर चूर हो गया और अचानक मैं उस दिव्य सार्वभौम सत्ता में विलीन हो गया। मैं अभूतपूर्व चेतना का साक्षी था और उसी के साथ सारे जगत से अनभिज्ञ होने का भी अनुभव कर रहा था! मेरी बंद पलकों के पीछे मेरी भीतर की दिव्य आँखों ने एक तेज:पुंज श्वेत ज्योति का दर्शन किया जिसमें सब कुछ लुप्त हो गया! उस श्वेत ज्योति से एक दृश्य साकार हुआ... एक चेतावनी, मेरे जीवन में घटित होनेवाले अनेक परिस्थितियों की एक पूर्वसूचना जिनकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था! मैं वृक्षासन में खड़ा था कहीं घने जंगल में, बड़े बड़े पेड़ों की घनी छाया में... पत्तोंपर चमकने वाले प्रकाश से सूर्योदय का संदेश मिल रहा था... मेरी आँखें अर्धोन्मीलित थीं... फिर भी बाहर और भीतर की

दुनिया की अभिज्ञता थी... ऐसे लग रहा था की मेरी अधखुली आँखों की पलकें जैसे उनके अपने आराम के लिए उस स्थिति में थीं... मेरी दृष्टि से उनका कोई लेना देना नहीं था! मेरे सिरसे निकलकर अविरल धारा जैसी मेरे घुंगराले बालों की जटाएँ लगभग एड़ियों को छू रहीं थीं... नीचे ज़मीनपर मेरी चारों ओर नाग, अजगर और विषैले साँप रेंग रहे थे... वृक्षासन में ज़मीनपर टिके हुए एक पैर द्वारा मैं उनका मुक्त संचार अच्छे से महसूस कर रहा था पर उस के बावजूद मेरे मन में भय का नामोनिशान नहीं था। मैं नि:सन्देह जानता था कि इन से मुझे कोई ख़तरा नहीं है!"

दृश्य भविष्य सूचक था... वास्तविक भी और प्रतीकात्मक भी! कठोर साधना के दौरान, घंटों ध्यानमग्न खड़े रहना, स्थूल आँखों के परे देखनेवाली दृष्टि से भविष्य में आनेवाली सत्य घटनाओं का दर्शन करना... यह सब यथा समय घटित होनेवाला था। उसी के अनुसार अक्सर साँप-बिच्छुओं से घिरे जंगल में रहना उनके बचपन का एक अनिवार्य हिस्सा बन गया था... क्यों कि बचपन का वह समय उन्हों ने ऐसे जंगलों बिताया जहाँ वन्य जीवों का ही साम्राज्य था! लेकिन उनकी दिव्य परोक्ष दृष्टि का वह संकेत जीवन के अधिक गहन परिमाणों की ओर इशारा कर रहा था... पूरे जीवन में उन्हें एक पैर पर एक योगी की तरह स्थिर और सुदृढ़ता से खड़े होकर अपने कदम सदैव अग्रसर रखना है... न रुकना है न पीछे मुड़ना है! इसके अलावा वे यह भी अच्छी तरह जानते थे कि उनके जीवन में साँपों जैसे विषैले लोग और प्राणघातक परिस्थिति-याँ होंगी जो एक सामान्य मनुष्य के लिए अपने आपमें जानलेवा हो सकती हैं...या तो उनको सुलझाना अत्यधिक कठिनाई-भरा हो सकता है...लेकिन ऐसी घटनाएँ पूज्य स्वामीजी के जीवन में आकर

भी वे उनको न ही विचलित कर सकीं और न ही उनकी एकाग्रता एवं संतुलन को बिगाड़ ही सकीं! विकट परिस्थितियाँ आयीं ज़रूर, लेकिन उनका अस्तित्व मात्र बना रहा जो उनके जीवन का एक अपरिहार्य हिस्सा बन चुका था मगर उनकी स्थितप्रज्ञता को छूने का साहस उनमें भी नहीं था।

कुछ क्षणों बाद यह दृश्य श्वेत ज्योति में मिल गया और उस ज्योति में अब भगवान श्रीकृष्ण की वरद मूर्ति साकार हुई... ये दृश्य बाल मुनि के मन को मोहित कर गए... छोटे संत जी घंटोंतक मंत्रमुग्ध रह गए!

"उसके बाद मुझे जब होश आया तो इतना याद है, कि गुरुजी ने मुझे ठीक उसी प्रकार भृकुटिमध्य में अंगूठे से स्पर्श किया और मुझे इस लौकिक जगत का पूर्ववत संज्ञान हुआ... यद्यपि मैं इस दुनिया में पुन: वापस आया, मेरा इस दुनिया से रिश्ता सदा के लिए बदल गया था... सत्य का प्रकाश मैं ने देखा था... उस दिव्य शक्तिस्रोत से मैं सदा के लिए जुड़ गया था..."

गुरुजी हमारे घर भोजन लेने के लिए राज़ी हो गए। घर में गुरुजी प्रवेश करने ही वाले थे, और संत जी उनके पीछे थे... वहीं से संतजी ने अत्यंत उल्हासभरी आवाज़ में माँ से कहा, "माताश्री, मैं स्वामीजी बनना चाहता हूँ... मुझे स्वामी जी बना दो ना जल्दी से..." माताश्री गुरुदेव के लिए भोजन बनाने में व्यस्त थीं फिर भी बड़े प्यार से उन्हों ने अपने बेटे से कहा, "अवश्य बेटा...! लेकिन पहले हाथ, पैर और मुँह धोकर भोजन ग्रहण के लिए तैयार हो जाओ!... नहीं पता था उनको कि उनकी अर्ध-ध्यानावस्था में अपने एक बच्चे को भगवान की गोद में सौंपने का उनका स्वप्न इतनी जल्दी साकार भी हो गया था! स्वामीजी के उस दिव्य हस्त स्पर्श

ने उनकी समर्पित भेंट स्वीकार कर ली थी... उनके बच्चों में से स्वयं भगवान द्वारा ही संतजी का चयन किया गया था... उनकी प्रार्थना स्वीकार हुई थी!

जब भोजन के बाद पूज्य स्वामी ब्रह्मस्वरूपजी प्रस्थान करने लगे तो संतजी ने उनकी चद्दर पकड़ ली।

पूज्य स्वामी ब्रह्मस्वरूपजी एक फ़कीर थे, फक्कड़ थे... अपने कपड़ों का बोझ भी वे नहीं रखते... पैदल चलना, निर्धन रहना, सोने-जीने की सारी चिंताएँ ईश्वरेच्छा पर छोडीं हुईं... ऐसे में एक आठ वर्ष का नन्हे बालक को अपने साथ ले जाने के लिए वे कदापि उत्सुक नहीं थे... यह भी नहीं जानते थे कि अभी यह बालक कितना तैयार है... उन्हों ने संतजी से कहा, “अभी नहीं...मैं जल्दी वापस आऊँगा... अभी पढ़ाई करो... फिर देखेंगे!”

“जब भी मैं अपनी आँखें बंद करता था, तो मुझे अपने भृकुटि-मध्य में मेरे गुरुजी के आशीर्वाद का स्पर्श ठीक उसी प्रकार महसूस होता जैसे सबसे पहले अनुभव किया था। मेरे शरीर का पात्र खुलकर बिखरता और देखते देखते पूरा अदृश्य हो जाता। मैं प्रतिदिन घंटों बिताया करता उस दिव्य अनुभूति में जिसमें मेरा देह-भाव ब्रह्मांड के साथ एकरूप हो जाता!”

गुरुदेव के आगमन की प्रतीक्षा

उस घटना के बाद के दिन महीने, सालों की तरह धीमी गति से खींच रहे थे... जैसे प्रतीक्षा का कोई अंत ही नहीं था। हर दिन लगता कि शायद आज वह दिन आयेगा... वैसे भी गुरुजी से मिलने के पूर्व भी संतजी की रुचि खेल कूद या अन्य बालसुलभ गतिविधियों में थी ही नहीं... बल्कि समय मिलनेपर, ये आसपड़ोस के बच्चे इकठ्ठे होकर 'सत्संग' या फिर 'बुद्धदेव' का नाटक रचाते... संतजी 'बुद्ध' बन जाते या फिर 'स्वामी जी' ...प्रवचन, उपदेश और भजन कीर्तन करते... अपने सखा-साथियों को आशीर्वाद देते!...

वह समय ऐसे ही बीत गया। विद्यालय के बाद और साप्ताहिक अवकाश में संत जी 'बुद्ध' या फिर 'स्वामीजी' बन जाते अपने दोस्तों के लिए... या फिर अपने कमरे में जाकर ध्यानमग्न हो जाते।

मौन साधना

जैसे अचानक सबसे पहले पूज्य स्वामी ब्रह्मस्वरूपानन्द जी का दर्शन हुआ था वैसे ही कई महीनों की प्रतीक्षा के बाद अचानक पूज्य स्वामीजी प्रकट हुए! संतजी फूले ना समाये...

"मुझे अपने साथ ले चलो...जहाँ भी आप जा रहे हों, कृपा करके मुझे भी ले चलें...मुझे आप के साथ ही रहना है..."

“अब तो कृपा करके मुझे अपने साथ ले चलो” संत जी ने कहा, चूँकि उन को इस बार पूरी उम्मीद थी...

“अभी नहीं!” गुरुजी ने कहा।

“संन्यासी का जीवन यूँ ही बिना किसी साधना, बिना किसी तैयारी के ऐसे अंधाधुंध नहीं मिलता... संन्यासी एक प्रतीक है, बल, धैर्य, स्वावलंबन, किसी भी परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता और एक ईश्वर को छोड़कर संसार से पूर्ण निवृत्ति का मूर्त स्वरूप है! संन्यास लेने और देने में जल्दबाज़ी इसके मूल तत्व को ही खोखला कर देती है। संन्यास है अतीत को छोड़कर नयी और पवित्र जीवनशैली को आत्मसात करना...विशेष मूल्य, ध्येय और अभिप्राय। किसी आठ वर्ष की आयु वाले बालक को संन्यास दीक्षा देने का निर्णय, एक गुरु, बिना पूर्ण तैयारी और परीक्षा के, नहीं ले सकता था...

“मेरे साथ चलने के लिए तुम्हें अपने आप को पूर्णत: तत्पर होना पड़ेगा। बाहरी दुनिया से नाता तोड़ना पड़ेगा और केवल अपने अंतर्मन से पुन: जुड़ना पड़ेगा, केवल दिव्यता से जुड़ना होगा। तुम्हारा इंद्रियबोध बाहरी जीवन का बोध तो कराएगा लेकिन तुम्हारा ध्यान तुम्हारे आंतरिक विश्व के साथ एकाग्र होना चाहिए। बाहर के रूप, रंग, रस, गंध आदि तो तुम्हारी इंद्रियाँ ग्रहण करती रहेंगी, किन्तु तुम्हारी भीतर की चेतना सदैव भीतर के विश्व के साथ एकरूप होकर उसकी गहराइयों में लीन होनी चाहिए”।

शायद, बालक संतजी की दृढ़ता और सच्चाई वे परखना चाहते थे... उन्हों ने उस नन्हे बालक को पूरे एक वर्ष के लिए साधना क्रम बताते हुये कहा कि संत जी को घर में ही रहना है मगर सम्पूर्ण मौन और एकान्त में!

एक कमरे में रहना था, न किसी से बात करनी थी, न किसी से मिलना था, न किसी को देखना था... मौन रहकर पूरा समय ध्यान और साधना में लगाना था... बैठकर, खड़े होकर, कभी एक पैर पर वृक्षासन में खड़े होकर... संतजी को दिन में एक ही बार केवल दो पतली रोटियाँ, उबली हुयी बिना नमक की दाल लेनी थी, जिसमें न तड़का, न घी, न मसाला...। माताश्री के मातृहृदय को यह थोड़ा आघात-सा था... कैसे इतना छोटा बालक केवल इतना-सा खाकर जिएगा? माताश्री की मिन्नतों, अनुनय-विनय के कारण शाम को एक गिलास गरम दूध लेने की अनुज्ञा किसी तरह मिल गयी!

इस प्रकार, अगला एक वर्ष संत जी ने साधना में बिताया... साधना गहराती गयी, आध्यात्मिक जीवन की ऊंचाइयाँ, आंतरिक विश्व की अज्ञात गहनता की दिव्य प्रभुता का परिचय होता गया... 'लेकिन आप एक पैर पर काफी देर तक कैसे खड़े रहते थे?' आज लोग उनसे पूछते हैं। हठयोग की एक सामान्य व प्रचालित कक्षा में वृक्षासन सिखाया जाता है...जिसमें साधक आधे से एक मिनिट तक स्थिर खड़े रहें तो वह ठीक समझा जाता है। उतने में ही लोगों के पैर, जंघादि अवयव थक जाते हैं। जिनको इस योग आसन का अभ्यास है, वह और पाँच या दस मिनट तक इस में खड़ा होगा। लेकिन काफी देर तक खड़े रहने की बात तो सोच भी नहीं सकते! "आप कैसे करते थे ये? आप थक नहीं जाते थे?" जिस-जिस ने वृक्षासन किया है, वे सभी पूज्य स्वामीजी से यह सवाल करते हैं।

उस सवालका जवाब भी सरल होता है... फिर भी जीवन से लेनेवाली अनेक शिक्षाएँ और चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रेरित करनेवाले संदेश से भरपूर होता है! पूज्य स्वामीजी कहते हैं, “यदि थक जाता तो पैर बदल देता था!” चुनौती अपरिक्रम्य है... अतार्किक है। अपने गंतव्य को पाना है तो उस रास्ते पर अग्रसर रहने के लिए मोल-तौल, समझौते या ख़रीद-फरोद की कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए! फिर भी, हमारे शरीर की हड्डियों, मांसपेशियों, स्नायुओं, धमनियों के भीतर एक प्रचन्ड संचय होता है... अप-रिमित संभावनाएँ, अनगिनत संयोग एवं इलाज-उपचार की एक आंतरिक ऊर्जा छिपी हुई होती है। इस से कम चुनने का अधिकार नहीं था... क्यों कि गुरुजी का आदेश था! जिस राह पर उन्हें जीवन में चलना था उसपर उन्हों ने कदम रख दिया था...बिलकुल उसी तरह जैसे अलकनंदा और मन्दाकिनी एकाकार होकर गंगा जी में विलीन हो जाती हैं... एक पूर्णत: अखंड प्रवाह की तरह! पीछे हटना मतलब नैसर्गिक प्रवाह के विपरीत जाना... पीछे हटने का विचार भी गंगाकार हो गईं सरस्वती और अलकनंदा को हरिद्वार में हर की पैड़ी पर अलग करने की कोशिश करने जैसा असंभव था! यहाँ अलग अलग प्रवाह नहीं हैं। यहाँ न अलकनंदा है, न मन्दाकिनी है... केवल गंगा जी हैं... बिलकुल उसी तरह संत जी के लिए कोई अलग विकल्प नहीं था। स्वामीजी की ऊर्जा के स्रोत में ही संत जी की सारी इच्छायें-आशाएँ संपूर्णत: विलीन हो चुकीं थीं... वह प्रवाह जो एक ही दिशा में निरंतर बहनेवाला था!

गुरुजी के आदेशों की मुश्किलों से... या फिर थकान, दर्द या क्लेशों से हार मानना असंभव था। संत जी को अपने भीतर की ऊर्जा से ही साधना के पथ पर आनेवाली परेशानियों और बाधाओं

का निस्तारण करना था। गंगा जी बहती हैं... तेज़ घुमावदार मार्ग या फिर प्रचंड शिलाखंडों के बावजूद भी प्रवाहित रहती हैं... बिना रुके, बिना ठहरे, बिना कुंठित हुए, बिना पथराए... आवश्यकता के अनुसार अपना प्रवाह बाधाओं के ऊपरसे, या चारों ओर से, कभी अपना प्रवाह तेज़ करके तो कभी धीमा रखते हुए... गंगा जी की धारा निरंतर बहती रहती है। जब संतजी एक पैर पर थक जाते तो दूसरे पैर पर खड़े हो जाते...या सहारा लेते... लेकिन इतने लंबे समय तक वृक्षासन के इस अभ्यास का कोई और पर्याय नहीं हो सकता था!

महीने बीत गए। जैसे परिवार के सदस्य, दोस्तों या किसी अन्य लोगों से मिलना जुलना बंद हो गया, अपने कमरे की चार दीवारों से बाहर की दुनिया धीरे धीरे अपना अस्तित्व खोने लगी थी... संत जी का भीतरी विश्व बढ़ने लगा। प्रत्येक दिवस उन्हें अपनी चेतना की गहराइयों में ले जाने लगा... जहाँ उनके स्थूल शरीर का अस्तित्व खो जाता, सूक्ष्म-शरीर परमात्म-तत्त्व के साथ एकरूप हो जाता... अंत:करण शुद्धि के माध्यम से दिव्यता के साथ पूरा जड़ चेतन एकाकार हो जाता! चित्तवृत्तियाँ योगानुभव में विलीन हो जातीं! प्रभुता में समा जातीं!

दूध मलाई या ध्यान!?

माँ तो सदैव माँ ही होती है। एक संत की माँ और एक पापी की माँ अपने संस्कार, विचार, मूल्यों, नीतियों और आदर्शों में एक दूसरे से सात समंदर दूर हो सकतीं हैं। फिर भी उनका मातृत्व और अपने बालक के प्रति उनकी मातृत्व की संवेदना एक-सी ही होती है। ठीक

उसी प्रकार, संत जी का देहभाव जैसे कम होता गया, माताश्री को उनके स्वास्थ्य, बल एवं उनके उसी नन्हे शरीर की पुष्टि की चिंता रहती। उबली दाल और सूखी रोटी तो वो खाना है जो जेल में भी दंगा फ़साद मचा देता है... यह खुराक खाते पीते घर के बढ़ते बच्चे के शरीर के लिए काफ़ी नहीं है... फिर भी एक माँ की प्राकृतिक ममता से बढ़कर भी माताश्री को अपने गुरु, पूज्य स्वामी ब्रह्म-स्वरूपजी पर अधिक श्रद्धा थी। सपने में भी अपने गुरु के आदेश से विपरीत कार्य करने का साहस नहीं कर सकती थीं। लेकिन, कभी ऐसा भी समय आता है जब गुरु आज्ञा का पालन करते हुये भी उसका अनुपालन करने में परिस्थिति अनुसार, सहूलियत के अनुसार उसे मोड़ देने की सुप्त इच्छा निर्माण होती है!

कुछ ऐसी ही दशा या समस्या संत जी के दूध के गिलास को लेकर थी। **पूज्य स्वामीजी की माताश्री कहती हैं, "गुरुजी ने कभी स्पष्ट रूप से नहीं कहा था कि गिलास छोटा या बड़ा... बस कहा था 'एक गिलास दूध'... न गिलास का नाप कहा था न ही दूध के गाढ़ेपन के विषय में कोई चर्चा की थी"...**

भारतवर्ष में आज भी दूध सीधा गौ-शालाओं से घरों में आता है या स्थानिक दुग्धशाला या फिर दूध की दुकान से आता है। कई बार दूध न तो पाश्चराइज्ड होता है न तो एकरूप किया हुआ (हो-मोजिनाइज्ड)... इसलिए घर में आने के साथ तुरन्त ही उसे उबाला जाता है। गर्मियों में कोई 'कोल्ड कॉफी' का मज़ा लेना चाहते हैं तो फिर रेफ़्रिजिरेटर में रखकर ठंडे किए गए दूध से काम चलाते हैं... लेकिन दूध हमेशा गरम ही पिया जाता है! चूँकि दूध किसी अन्य प्रकार से परिष्कृत नहीं किया जाता, उसमें स्नेह की मात्रा पूरी होती

है क्यों कि यह दूध कायदे से गाय के बछड़े के लिए होता है...जिस देश में 'वज़न घटने' को या 'घटाने' को 'कमज़ोरी' के साथ जोड़ा जाता हो, वहाँ थोड़ा गोल मटोल होना अच्छी सेहत से जोड़ा जाता है!! जो सम्पन्न लोग अधिक दूध लेने की क्षमता रखते हैं, वे दूध को इतना उबालते रहते हैं कि लगभग एक बड़ा गिलास दूध आधा होने तक सुखाते हैं... दूध रबड़ी जैसे एक पकवान में परिवर्तित हो जाता है... गाढ़ा, स्वादिष्ट, थोड़ी चीनी (जो मेरे हिसाब से बिलकुल अनावश्यक होगी!) के साथ और मज़ेदार, लज़्ज़तदार!

माताश्री इस प्रकार बड़ी मेहनत से बनाया हुआ 'अति स्नेहभरा' (क्रीम को हिन्दी-संस्कृत में स्नेह कहते हैं!) एक बड़ा गिलासभर दूध शाम ढले नियत समय पर संत जी को दे दिया करतीं। गुरु आज्ञा के अनुसार वे दूध में और कुछ नहीं मिलाया करतीं... केवल उसको सँवारने में लगाया हुआ समय और अपार वात्सल्य के अतिरिक्त, सचमुच कुछ भी नहीं मिलाती थीं! लेकिन उनके दिल को सुकून मिलता था कि गुरुजी के आदेश का पालन करते हुये भी वे अपने नन्हे बेटे को दूध के सहारे वह पोषक आहार दे पा रहीं थीं जो उनके हिसाब से दोपहर के भोजन में नहीं मिल पा रहा था। सायंकालीन इस विशेष 'दूध' का संत जी भी भरपूर रसास्वाद करते!

"मैं उस एक गिलास दूध का इतना बेसब्री से इन्तज़ार करता कि धीरे धीरे सायंकाल का वह समय मेरा 'दुग्ध-ध्यान' में बदल गया!! दोपहर के सादे भोजन के बाद शाम तक जब मेरा पेट खाली होता, भूख लगती तो मेरा रोम-रोम उस घड़ी की प्रतीक्षा करता... शाम का दूध का गिलास! मेरा वही ध्यान हो गया था... बस, 'दूध का गिलास'!" पूज्य स्वामी जी आज भी उन क्षणों को याद करते हैं... और जी भर के हँसते हैं और हँसाते हैं!

साधना के उन दिनों में माताश्री के साथ व्यवस्था ऐसे थी कि दोपहर का भोजन हो या फिर शामवाला दूध का गिलास हो... दरवाजे के बाहर रखी हुई चौकीपर माताश्री भोजन की थाली या दूध का गिलास रख के जातीं... और हल्की-सी दस्तक देतीं जिस से संत जी को पता चल जाता कि माताश्री ने भोजन रख दिया है... दरवाज़ा खोलने तक माताश्री वहाँ से निकल चुकीं होतीं... ताकि गुरु के आदेशानुसार संतजी किसी से संपर्क में न रहें, इतना ही नहीं, किसी से दृष्टि से भी बात न हो सके... इस तपश्चर्या में एकान्त-वास की बहुत बड़ी भूमिका थी।

एक शाम, माताश्री ने दूध का गिलास बाहरवाले मेज़ पर रखा लेकिन हमेशा की तरह रसोईघर में जाने के लिए मुड़ने से पूर्व संत जी के कमरे के दरवाजेपर हल्की-सी दस्तक आयी। ...संत जी ने एक और ज़ोर से दरवाज़ा खटखटाने की आवाज़ सुनी। इस शाम, इस दूसरी दस्तक के स्वर कुछ निराले थे! कुछ कठोर इंगित का संकेत था न कि सिर्फ़ सूचना... संत जी तेज़ी से दरवाज़े की ओर लपके और दरवाजा खोला, तो देखा ... गुरुजी!, साक्षात पूज्य स्वामी ब्रह्मस्वरूपजी उनकी चौखट पर खड़े थे... मानो अपने विराट रूप में॥...

“ध्यान हर तरह की बीमारी की रामबाण औषधि है।”

"मैं तुरन्त प्रणाम करते हुए उनके चरणों में गिर पड़ा... चूँ कि मैं मौन था हाथा जोड़ विनम्रतापूर्वक इशारे से उन्हें आसन ग्रहण करने के लिए प्रार्थना की। मैं उनके चरणों में बैठ गया"। स्वामी जी याद करते हैं।

माताश्री आयीं... तुरन्त... महीनों बाद माँ-बेटे की दृष्टिभेंट हो रही थी... गुरुजी को प्रणाम करके बोलीं, "मैं आप के लिए भोजन लेकर अभी आती हूँ"। "मैं भोजन नहीं लूँगा...मैं अपने संत जी से मिलने आया हूँ"।

भारतीय संस्कृति में घर आए हुये मेहमान को न खिलाने की कल्पना भी अचिंत्य है... और यह मेहमान यदि कोई साधु-सन्यासी हो तो यह अवसर और भी विशेष हो जाता है। 'अतिथि देवो भव' की महान वैदिक परंपरा घर आए हुये मेहमान को प्रत्यक्ष ईश्वर का दर्जा देती है... खाना, कमरा, कपड़े और अपनी कमाई का हिस्सा भी भारतीय परिवार साधुसंतों की सेवा में अर्पण करते हैं... यह अतिथि कोई भी हो सकता है... कोई परिचित या अपरिचित, भिखारी तक हो सकता है... और जब यह अतिथि सद्‌गुरु हो, तो वह स्वयं भगवान की तरह असामान्य और विशेष हो जाता है! जब यजमान घर आए अतिथि के सम्मान में भोजन देने की इच्छा दर्शाता है, तब उसे कभी नकारा भी नहीं जाता था। मैं खा चुका हूँ, या भूख नहीं है, या मैं उपवास कर रहा हूँ... जैसे शब्दों को कोई नहीं सुनता... इसलिए जब पूज्य श्री स्वामी ब्रह्मस्वरूप जी ने माताश्री के हाथ के बने भोजन के प्रस्ताव को नकार दिया तब माताश्री ने और आग्रह से उन्हें मनाने की कोशिश की। "आप को कुछ तो लेना ही होगा... यदि भोजन नहीं तो आप क्या लेना पसंद करेंगे? एक गिलास गरम दूध ठीक रहेगा?... कम से कम इतना तो लेना ही पड़ेगा आपको!"

"संत जी जैसे एक गिलास दूध लेते है ठीक उसी प्रकार मैं भी एक गिलास दूध ले लूँगा"। गुरुजी ने कहा!

संत जी के लिए रखा हुआ वह विशालकाय दूध का गिलास अभी भी उस छोटे मेज़ पर विराजित था... जहाँ कुछ ही समय पूर्व, पूज्य श्री स्वामी ब्रह्मस्वरूपानन्द जी के आगमन से पूर्व,... माताश्री ही वहाँ छोड़कर गईं थीं... संतजी ने सोचा कि वे रुकेंगे जबतक माताश्री गुरुजी के लिए दूध लेकर आतीं। माताश्री भी, किसी सन्देह को टालने के लिए, गुरुजी के लिए ठीक वैसा ही दूध का गिलास लेकर आयीं। जैसे ही माताश्री ने उनके सामने दूध का गिलास रखा तो उन्हों ने उसे अनदेखा किया और संत जी वाला गिलास उठाया... "मैं इस गिलास से पी लेता हूँ, संत जी मेरे वाले गिलास से पियेंगे!" स्वामी जी ने दृढ़ता भरी आवाज़ में कहा।

माताश्री सहम गईं... घबराईं...जैसे काटो तो ख़ून नहीं... संत जी के लिए बनाया गया दूध ख़ास था...कढ़ा हुआ, रबड़ी जैसा था... स्वामी जी के लिए लाया गया दूध शुद्ध, ताज़ा लेकिन पतला था... माताश्री ने प्रसंग को संभालने की भरसक कोशिश की... नहीं चाहतीं थीं कि स्वामीजी जानें... कि चाहे उनके वात्सल्य या मातृ-सुलभ चिंता के कारण उन्हों ने उनके आदेशों का पालन करने में थोड़ा समझौता किया है... थोड़ी आज़ादी ली है... बोलीं, "नहीं नहीं स्वामीजी..." उन्हों ने मिन्नतें कीं... "आपके लिए मैं ताज़ा दूध लेकर आयी हूँ... अभी अभी गौशाला से आया हुआ... संत जी के लिए रखा हुआ दूध सुबह का है... ताज़ा नहीं है बिलकुल..."

पूज्य श्री स्वामी ब्रह्मस्वरूप जी बोले, "संत जी अभी घोर साधना और तपस कर रहे हैं... ताज़े दूध की आवश्यकता तो उन्हें है! मैं पी लूँगा सुबहवाला दूध!" कहकर उन्हों ने गिलास का ढक्कन

खोला और देखा... संत जी के लिए बना हुआ दूध... कितने घंटों की मेहनत से बना हुआ गाढ़ा, मीठा मलाईयुक्त रबड़ी जैसा दूध अब गुरुजी के हाथ में था... बिना बोले पास में पड़े हुए एक मिट्टी के कटोरे में उस गिलास को उन्हों ने उलटाया... रबड़ी जैसे गाढ़े दूध की नर्म ढ़ीले लड्डू-सी गाँठे धीरे धीरे गिलास से निकलते हुए कटोरे की ओर जैसे बे-मन से जा रहीं थीं! स्वामी जी ने माँ की ओर देखा फिर बेटे की तरफ... फिर माँ की ओर... फिर संत जी की ओर मुड़कर, उन्हों ने पूछा, “ये...? ऐसा दूध तुम रोज शाम को पीते हो?” संत जी ने मूक सम्मति दर्शक अपना सिर हिलाया और नीचे झुकाया... आँखें आँसुओं से छलक रहीं थीं...

“तुम्हें साधु बनना है या स्वादु?”

संत जी मौन थे... जो मौन एक वर्ष की साधना का अनिवार्य नियम था... बोल कर एक और नियम वे तोड़ना नहीं चाहते थे... जैसे ही नज़र उठाकर संत जी ने अपने दिव्य-गुण-संपन्न गुरु की ओर देखा तो उन आँखों में गुरुजी ने उनका उत्तर पढ़ लिया... स्पष्ट रूप से दिख रहा था कि उनका मार्ग केवल योग मार्ग है... भोग कदापि नहीं... गुरुजी जो सुनना चाहते थे वही आँखों में पढ़कर, देखकर अवश्य प्रसन्न हो गए होंगे!

पूज्य गुरुजी ने एक हाथ संत जी के सरपर रखा और बोले, “तुम्हें क्या लगता है?... कि आज शाम मैं केवल तुम्हें देखने और दूध पीने आया हूँ? तुम्हें सच में लगता है कि यहाँ जो चल रहा है उस का मुझे कोई अता-पता नहीं है? तुम्हें सच में विश्वास है कि यह रबड़ी जैसा गाढ़ा दूध ही तुम्हें इतने महीनों तक पोषण दे रहा है? मैं यहाँ आया हूँ तुमसे यह कहने कि दूध या दूध का ध्यान नहीं, दूध बनानेवाले का ध्यान करना है तुम्हें!... तुम नहीं

समझते हो कि दूध देनेवाली गाय को किसने बनाया?... उस दूध में पोषक द्रव्यों को किसने डाला?... इस दूध को पीनेवाला मुख किसने दिया?... और फिर इस दूध को पचाने की ऊर्जा किसने दी? आज से शाम का यह दुग्धपान बंद..." पूज्य श्री स्वामी ब्रह्मस्वरूपानन्द जी उठकर खड़े हो गए और जैसे अचानक आए थे वैसे ही अचानक चल दिये... अत्यंत रूखे और अनौपचारिक ढंग से! उनके लिए भरा हुआ दूध का गिलास... जिसे उन्हों ने छुआ तक नहीं... उस छोटे मेज़ पर वैसा ही पड़ा रहा... सहमा-सा!

अब तो माताश्री की परीक्षा थी... अंदर से तो शायद वे पूरी टूट गईं होंगीं, पानी-पानी हो गईं होंगीं... उनकी युक्ति और बचाव, चाहे जितना भी हितकारी और अच्छे भाव से क्यों न हो... उनके गुरु जी के सामने उजागर हुआ था...भेद खुल गया था... और अब तो जिस दूध पर उनकी ममता निर्भर हो गयी थी... जिस के सहारे वे रात को सो पा रही थीं, जिस पोषण की कमी को लेकर वे चिंतित थीं... वही उनकी वजह से उनके बेटे से वह वस्तु छिन गयी थी! यद्यपि एक माँ के लिए यह एक आघात-सा था... वे स्वयं एक सामान्य माता से कहीं बढ़कर थीं। पृथ्वीपर उनका प्राकट्य भी एक विशेष हेतु से हुआ था: एक ऐसे महापुरुष को पैदा कर उसकी परवरिश उन्हें करनी थी जो एक दिन पूरे विश्व को दिव्यता की राह पर ले जाने की चेष्टा करनेवाला था... जीवन के भँवर में फँसे, परिस्थितियों में उलझे, मुश्किलों के आतंक से बेज़ार लोग जो अपनेही अहंकार, वासनाएँ दुख-दर्द और तकलीफ़ों से असहाय हैं... यह महापुरुष ऐसे लोगों को दिव्य समर्पण के रास्ते प्रभु की दिव्यता का दर्शन करानेवाला था! माताश्री को इस कार्य को सम्पन्न करने हेतु आवश्यक सारी

गुणसंपदा प्राप्त थीं। ईश्वर ने उन्हें यह अलौकिक शक्ति पहले से ही दी हुयी थी।

एक संत की माँ!

बहुत साल पहले जब, संतजी केवल छह या सात साल के होंगे... एक पारिवारिक मेहमान घर पर आए थे.... माताश्री कहतीं हैं... भारतीय रीति-रिवाज अनुसार जब वे जाने लगे तो उन्हें रेलवे स्टेशन पर विदा करने पूरा परिवार चला गया था। माताश्री बिदाई के उस भाव में थोड़ी उलझ गईं, जैसे चलने के लिए मुड़ीं तो इतने में ट्रेन चल पड़ी... धीमी चलती हुयीं गाड़ी से उतरना या चढ़ना भारत में वैसे बहुत सामान्य-सी बात है... लेकिन फिर भी यह इतना सरल तो नहीं होता... जिसे आदत हो वह यह काम आसानी से कर भी सकता है। लेकिन माताश्री को तो आदत नहीं थी... बावजूद इसके, तेज़ी से उतरना भी ज़रूरी था... वो भी तुरन्त, नहीं तो ट्रेन और शीघ्र गति पकड़ लेती... माताश्री जल्दी से ट्रेन से उतरने लगीं... पर... प्लैटफ़ार्म पर नहीं... वे नीचे गिर पड़ीं... चलती ट्रेन और प्लैटफ़ार्म के बीच! चलती गाड़ी की सीटी और इंजन की आवाज़ में उनके परिवार की चीखें खो गईं... किसी ने नहीं सुनीं... किसी ने ज़ंजीर खींची होगी तो ट्रेन रुकी भी तो कहीं आगे जाकर... लम्बे प्लैटफ़ार्म के आगे बहुत दूर... इतने समय में जब तक परिवार के सभी सदस्य माताश्री तक पहुँचते, उनके छिन्न-विछिन्न शरीर देखने की विभीषिका की आशंका पूरे परिवार को खाये जा रही थी...

ट्रेन का आखरी डिब्बा पूरे वेग में निकाल गया... परिवार वहाँ पहुँचा जहाँ माताश्री को उन्हों ने गिरते हुये देखा था। सब को यही

लगा था, कि एक भीषण दृश्य का दर्शन वे करने चले हैं... और माताश्री?... घुटनों पर स्थिर शांत खडीं, सीनेपर हाथ रखकर जपती हुयीं... “सद्गुरु...सद्गुरु...सद्गुरु...!!!” चलती ट्रेन और उनमें सिर्फ़ उतनाही अंतर था जहाँ से उनको एक खरोंच तक नहीं आयी... संकट ने उन्हें छुआ तक नहीं... माताश्री कहतीं हैं, “सद्गुरु ने मुझे बचाया!” यह माताश्री इतनी सहजता से यह कहतीं हैं कि जैसे यह उन का दैनंदिन कार्यक्रम होगा!... जैसे... रोज़ सूर्योदय होता है!

उस दिन के बाद, माताश्री, जो अभी भी अपनी यौवनावस्था में थीं... उन्हों ने अपने जीवन का एक एक पल ईश्वरार्पण करने का निश्चय किया। “अब मुझे पहले से भी अधिक स्पष्ट रूप से पता हो गया था कि मेरी हर साँस, जीवन का हर पल, प्रत्येक शब्द, प्रत्येक कृति सिर्फ़ और सिर्फ़ प्रभु के लिए होगी... मैं ने पाँच बच्चों को जना था.... चार बेटे और एक बेटी... उनके प्रति मेरा कर्तव्य भाव तो पूरा था। उसमें कोई समझौता करने की आवश्यकता भी नहीं थी”। वे घर पर ही रहीं...एक ममतामयी, स्नेहमयी, पत्नी और माँ बनकर, लेकिन उनका मन विरक्त हो गया था। उन्हों ने अपने सारे रंगीन कपड़े त्याग दिये और केवल श्वेत वस्त्रों का अंगीकार किया। आरामदेह बिस्तर को त्यागकर कठोर ज़मीन का आश्रय लिया और प्रात: अपने परिवार के पूजा घर में लम्बे समय तक जप, ध्यान साधना में बिताना शुरू किया। पिताश्री के साथ वैवाहिक संबंध भी स्वेच्छापूर्वक समाप्त कर लिए थे... वे कहतीं हैं, “बच्चों को जनम देने के बाद मेरा वह दायित्व भी समाप्त हो गया था। विवाह संबंधों का मतलब केवल बच्चों के जन्मतक ही सीमित होता है... उसके बाद मैंने इससे पूर्ण निवृत्ति ली थी। सौभाग्य से पिताश्री भी अतिशय धार्मिक और उदार सुसंस्कृत व्यक्ति थे। वे बच्चों को ब्रह्ममुहुर्त में

ही उठाते... स्नान एवं संध्यादि प्रात:कालीन नित्य कर्मों में बैठने के पूर्व उन्हें अपने साथ भ्रमण के लिए ले जाते। “प्रार्थना से पहले कभी सुबह का नाश्ता नहीं मिलता...घर में नियम था कि प्रार्थना नहीं तो खाना नहीं!” पूज्य स्वामीजी अब सत्संग में उनसे मिलने आए हुये परिवारों से बात करते हुए उन्हें बताते हैं और बच्चों को आध्यात्मिकता का पाठ बचपन से ही पढ़ाने के लिए प्रेरित करते हैं... अपने बचपन का उदाहरण देकर!

अत्यधिक धार्मिकता, भगवान से अटूट नाता, और मानवता एक दूसरे से संपूर्णत: जुड़े हुए हो सकते हैं। पिताश्री धर्मनिष्ठ, भक्तहृदय, सरल, विनम्र एवं निष्काम थे। लेकिन वे भी एक मानव थे... मनुष्य शरीर की सहज संवेदनाओं को उन्हों ने अभी पार नहीं किया था... तो जवान पत्नी का वैराग्य और वैवाहिक सम्बन्धों का त्याग उनके लिए आसान नहीं था। पूज्य स्वामीजी ने एक बार एक संस्मरण में कहा था...

“एक बार गर्मियों के दिनों में हम सब छत पर सोये थे... तारों के नीचे, आल्हादक मंद-मंद हवा में... इस देश में यह बहुत ही सामान्य-सी बात है। एक ऐसी रात में प्यास की वजह से मैं उठा, और पानी पीने के लिए नीचे जाने लगा। जैसे मैं नीचे पहुँचा, मैंने आवाज़ सुनी... पिताजी, माँ के बंद दरवाजे को खटखटा रहे थे... अंधेरा था... तो पिताजी मुझे देख नहीं पाये... कमरे के अंदर से माताश्री ने बिलकुल धीरे से व विनम्रता से पूछा, “कहिए, क्या बात है?” पिताजी ने कहा, उनको जैसे समझाते हुये, “देखो, यह बहुत ज़्यादती है... तुम मेरी पत्नी हो... और पति-पत्नी के बीचमें न्याय्य प्रेमसंबद्ध होना कोई बुरी बात नहीं है... दरवाज़ा खोलो”। तथापि, मेरी माँ शांत रहीं और उन्हों ने अपनी प्रतिज्ञा एवं संकल्प

की पिताजी को याद दिलाई। दृढ़संकल्प माँ ने उन्हें आध्यात्मिक, विरक्त एवं समर्पित जीवन के व्रत की पुन: याद दिलाई। पिताजी... उत्तेजित और क्षुब्ध थे।... तर्क देकर बोले, "भगवान श्रीकृष्ण ने भी गोपियों के साथ प्रेमसंबद्धों से मुँह नहीं मोड़ा"। मैं अपनी माँ की उस समय की आवाज़ को कभी नहीं भुला सका! बिना किसी झुंझ-लाहट या नरमी, लेकिन दृढ़ संकल्प के साथ... जिस से सुननेवाले को पता चले... कि अब संवाद की कोई गुंजाइश नहीं...! वे बोलीं, 'शायद आप सही कह रहे हैं... लेकिन पहले कृष्ण बनो... और फिर बात करते हैं...'

पिताजी की आध्यात्मिक ऊर्जा इस प्रसंग के बाद और बढ़ी और उनकी उन्नति का मार्ग भी प्रशस्त हो गया... प्राकृतिक और स्वाभा-विक इच्छाओं पर काबू पाकर, वैवाहिक संबद्धों की मिठास कायम रखने के लिए उनके पास केवल एक ही रास्ता था।... अपनी सारी भाव-भावनाओं को परिष्कृत कर उनको ही ईश्वरभक्ति का माध्यम बनाना... शरीर से नहीं, अ-शरीरिणी भक्ति से... "मेरे पिताजी हमेशा से ही आध्यात्मिकता में रचे पचे थे"। पूज्य स्वामीजी वर्णन करते हैं। "लेकिन मेरी माँ द्वारा ज़बरदस्ती लादे गए नियम-संयम के बाद उन्हों ने भी स्वयं के जीवन को तपस्यामय बना लिया... जिसका दिव्य तेज़ उनकी आँखों से सहज ही प्रतीत होने लगा"।

माताश्री वह स्त्री थीं जो अपार आध्यात्मिक ऊर्जा एवं तितिक्षा की धनी थीं... जिनकी प्रार्थना को सुनकर भगवान ने स्वयं संत जी को चुना था...। वह बहुत धैर्यवान थीं। जिस रात संत जी के सुपोषण के लिए उनका चुना हुआ मार्ग उनके गुरु जी ने, जिस तरह से बंद किया, वह सारी सद्गुणों की पूंजी और साधना का बल, उस समय काम आया! स्वयं से शर्मिंदगी का सामना अंदर

ही अंदर किया..। अपने आप को संभालते हुए, और फिर... अपने बेटे को समझाते हुये बोलीं, 'चिंता मत करो मेरे लाल! ज़रा देखो कितने भाग्यशाली हो तुम! तुम्हारे गुरुदेव इतनी दूर से तुम्हारे पास आए...इतनी बड़ी महत्वपूर्ण सीख देने के लिए... केवल तुम्हारे लिए! कितने भी दूर क्यों न हों, वे जहाँ भी हैं सदैव तुम्हारे पास ही हैं। वे केवल यही समझाने के लिए आए कि जो तुम्हें आवश्यक पोषण देता है वह आखिर दूध नहीं, प्रभुकृपा ही है!"

अपराधबोध की दुखद यातनाएँ, विषाद, पछतावा और भविष्य की अनेक चिंताएँ उनके मन में घिर-घिर के आ गईं होंगीं... इस मानसिक कोलाहल के बावजूद उन्हों ने अपना सारा संयम लगाकर अपनी विचलित मनस्थिति को छोटे संत जी के सामने नहीं आने दिया। संत जी के लिए तो वे पहले जैसी ही थीं... अत्यन्त सुलझीं हुईं, आदर्श माता, जो प्राप्त परिस्थितियों का हँसते हुए स्वीकार करती हैं... फिर भी अनुशासन एवं वात्सल्य की मूर्ति बनी रहीं... लेकिन उस रात के बाद संत जी के लिए दूध कभी नहीं लाईं...

वन-गमन

एक वर्ष बीत ही गया... पूज्य श्री स्वामी ब्रह्मस्वरूपानन्द जी निहित समय पर लौटे। संत जी आनंदविभोर हो उठे... 'अब मेरे गुरु जी मुझे अपने साथ ले जाएँगे... अपने पास रखेंगे... एक वर्ष की साधना की परीक्षा तो मैं ने शायद सही कर ली है... अब, गुरुजी मुझे हमेशा के लिए अपने पास रखेंगे...' संत जी का दिल प्रसन्न हो उठा। पूरे एक वर्ष की कठोर साधना व तप से संत जी का चित्त शांत और सधा हुआ था। गुरु के आगमन के आनंद में चैतन्य की

एक लहर पर सवार होकर संतजी दौड़ पड़े... सदा के लिए गुरु जी के चरणों में, उनके कृपामय प्रेमालिंगन में सदैव रहने की उत्कट अभिलाषा से संत जी उतावले होकर गुरुजी की ओर दौड़े ...उनके पास जाकर, उनके पैर छूकर संत जी ने अपनी इच्छा पुन: एक बार व्यक्त की... “अभी नहीं...” पूज्य श्री स्वामी ब्रह्मस्वरूपानन्द जी ने संत जी की व्याकुल प्रार्थना का अत्यंत संक्षिप्त और बिलकुल रूखा उत्तर दिया।

“मैं हक्का-बक्का रह गया... विश्वास ही नहीं हुआ... उन्हों ने ही कहा था कि एक साल की साधना के बाद वे मुझे सदा के लिए अपने साथ ले जाएँगे...” स्वामीजी अब भी याद करते हैं!...

एक संन्यासी की परीक्षा, कसौटियाँ या चुनौतियाँ शायद कभी खत्म नहीं होतीं... पूज्य श्री स्वामी ब्रह्मस्वरूपानन्द जी ने समझाया, “सन्यासी को तो एक फ़ौजी की तरह संपूर्णत: स्वावलंबी, साहसी, धैर्यवान, निडर और अपने शरीर और मन को स्वाधीन रखनेवाला होना चाहिए... ऐसा होने के लिए तुम्हें जंगल में भी रहकर साधना करनी होगी”।

यदि भगवान में श्रद्धा नहीं है तो कोई बात नहीं... ठाकुर को तुम पर पूरा भरोसा है। श्रद्धा अपने लिए, अपनी शांति और आध्यात्मिक विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। वैसे भगवान तो सदैव आप के पास ही रहते हैं, फिर तुम उनके अस्तित्व पर विश्वास करो या न करो...

पर एक नन्हें बालक के लिए जिसने अपने शहर की सीमाओं के पार की दुनिया कभी देखी भी न हो उस के लिए, जंगल तो एक भयावह सपना था... एक अत्यंत भयानक कल्पना थी। रहस्य,

रोमांच और जानबूझ कर खतरे मोल लेने का साहस जिस से जुड़ा हो ऐसी जंगल सवारी या कैम्पिंग पश्चिमी दुनिया में बहुत ही पसंद है, लेकिन भारत के सुशिक्षित समाज में भी जंगल में रहना एक भयंकर अनुभव ही माना जाता है... किसी को दण्ड या सजा देनी हो तो उसे जंगल में भेजते हैं!!! जंगल तो अधिकतर चोर डाकुओं के छुपने के और अपने आप को बचाने के स्थान हुआ करते थे... इस से अधिक, जंगल में जंगली जानवरों का साम्राज्य होता है... शेर, बाघ, और विशालकाय हाथी जो गाँववालों को... उनकी हड्डियों तक अपने पैरों तले सूखे पत्तों की तरह रौन्द देते है...। ...और संत जी के लिए तो जंगल भूतों का घर था! "जंगल के नाम सुनते ही मेरे मन में केवल भूतों के बारे में ही पहला विचार आया"। पूज्य स्वामीजी कहते हैं, "मेरे गुरुजी तो मुझे वहाँ भगवान से मिलने हेतु ले जा रहे थे... लेकिन मेरे मन में भगवान नहीं, भूत का ध्यान आया। मैं सोचने लगा कि मैं अब जिंदा नहीं बचूँगा!"

पूज्य श्री स्वामी ब्रह्मस्वरूप जी एक असामान्य संत थे...जो आध्यात्मिक, गूढ शक्तियों से सम्पन्न थे... अपने नन्हे शिष्य के भयभीत मन को आश्वासित कर के उसे धैर्य, साहस एवं अपार तितिक्षा और स्थैर्य प्रदान करने की क्षमता भी उनमें थी...."क्या कहा? भूत?... स्वामीजी ने संतजी से पूछा, "भूतों को तो तुम चुटकियों में काबू कर लोगे... तुम्हारे पास इतनी सारी शक्ति होगी! मैं तुम्हें एक मंत्र दूँगा... जिसके प्रभाव से भूत क्या... कोई भी ऐसी शक्ति तुम्हें रोक नहीं पाएगी!"

वसंत पंचमी के दिन संत जी को आधिकारिक, वैदिक विधि विधान से ब्रह्मचर्य दीक्षा दी गयी। उनका नामकरण हो गया... **'संत नारायण मुनि'!**

संत जी अपने पिताश्री के चरणस्पर्श के लिए झुके... फिर अपनी माँ के चरणों को छू लिया... और जैसे अपने गुरु के साथ घर से जंगल की ओर प्रस्थान करनेका समय आया... माताश्री ने झट से अपने आँसू पोंछ लिये... अपनी कोख से आए एक फूल का स्वीकार करने के लिए की हुई उनकी प्रार्थना आज साकार हो रही थी... मगर उन्हें नहीं पता था कि उनके इस हृदय कमल के तार कितने दृढ़ता से संत जी से मिले हुए थे... अब भगवान ने उनके हृदय का पुष्प उनकी अपनी ही प्रार्थना को स्वीकार करने के लिए तोड़ा था, माताश्री पूरी तरह टूट गयीं... फूल के टूटने के साथ केवल उसका डंठल या टहनी नहीं, अंदरतक पहुँची हुयीं जड़ों के साथ पूरा पेड़ ही बड़ी निर्दयता के साथ जैसे किसीने उखाड़ा था...

छोटे बालक संत जी, अब तापस कुमार मुनि जी, एक ऐसी यात्रा पर चल पड़े थे जो उन्हें अपने माता पिता और परिवार से दूर ले जानेवाली थी! उनके सामान में हल्के पीले रंग का (जो ब्रह्म-चारी पहनते हैं) एक सूती धोती-कुर्ता, एक पतला आसन, संस्कृत की मूल श्रीमद भगवद्गीता की एक छोटी प्रति और बाल ध्रुव एवं भगवान विष्णु की एक फ्रेम की हुयी नन्ही-सी तस्वीर... वह ध्रुव जो अपने पिता की गोद से वंचित होने के कारण रूठकर निकले थे, परम पिता की खोज में... अपनी दीर्घ तपस्या से महान द्रष्टा और महर्षि बन गए!

भारतीय ग्रन्थो में ध्रुव की कहानी बड़ी प्रसिद्ध है जो एक दृष्टांत स्वरूप है... जैसे भौतिक समृद्धि का त्याग कर दैवी संपद को ढूँढना, पृथ्वी का सार्वभौमत्व छोड़कर आध्यात्मिक शिखर को पाना, पिता की गोद के लिए तरसना छोड़ परमपिता की गोद को... परमात्मा को ही पा लेना। बाल ध्रुव ने जंगल जाकर, एक पैर

पर वृक्षासन में खड़े होकर बड़ी तपस्या की थी... भगवान विष्णु के साक्षात दर्शन के लिए... इसलिए बाल ध्रुव को दर्शन देनेवाले भगवान श्री विष्णु का यह चित्र मुनि जी को दिया गया था... दिन-रात के अपने एकान्तवास में ध्यान लगाने के लिए!

पूरे भारतवर्ष में, गाँव गाँव में, वनों, जंगलों में भी, जगह जगह हज़ारों छोटे छोटे देवालय, मंदिर, मठ एवं तीर्थस्थान होते हैं। देखने में तो वे पूर्णत: परित्यक्त खंडहर-से प्रतीत होते हैं जैसे वहाँ पर सदियों से कोई आया-गया न हो... लेकिन ऐसे स्थान भी किसी ग़रीब, श्रद्धालु, तीर्थंकर, परिव्राजक, साधु या चरवाहों का भी ठिकाना हो सकता था। पूज्य श्री स्वामी ब्रह्मस्वरूपानन्द जी ने ऐसे ही एक गुम्बदाकार देवस्थान का चयन किया जहाँ एक शिव लिंग भी प्रस्थापित था... जंगलों की ओर जाने वाली एक लंबी पगडंडी थी... मुनि जी के माता-पिता के घर से मीलों दूर... यह नयी जगह अब मुनि जी का घर था! देवालय के बिलकुल पास एक छोटी सी कुटिया थी... जिसका विस्तार शायद 6’ x 6’ भी मुश्किल से होगा... जहाँ कुमार मुनि जी को रात में सोना था। कितने दिन, महीने, साल?.... पूज्य श्री स्वामी ब्रह्मस्वरूप जी ने नहीं बताया। उन्हों ने केवल कठोर आदेश दिये जैसे रोज़ किसी नजदीकी गाँव में जाकर एक ही बार भिक्षा लेनी, मौन रहकर ध्यान साधना में ही समय बिताना... और चल दिये अपने शिष्य को छोड़कर! एक कुमार, जिसके पास केवल एक भगवद्गीता की पुस्तक, बाल ध्रुव एवं भगवान नारायण की एक तस्वीर, एक छोटासा आसन और एक मंत्र जिसके पठन से... गुरुजी ने कहा था... स्वयं ब्रह्माजी को भी अपने रास्ते में आने से वे रोक सकते थे...। एक छोटासा बालक, केवल एक पतला चोगा पहना हुआ, अकेला, सुदूर जंगलों

में... अपने अपनों की पहुँच से इतना दूर जहाँ से सब से नजदीक बस्ती भी काफी दूर थी... अपने यौवन का वह महत्वपूर्ण सामय पूज्य स्वामीजी ने ऐसे, इस स्थान में बिताया... मौन, तपस, ध्यान और साधना में!

शुरुआती कुछ रातें तो सचमुच मुश्किल थीं... मेरे गुरुजी ने कहा था कि मैं सुरक्षित था, मुझे किसी से डर नहीं था...लेकिन मैं अभी भी एक मासूम बच्चा ही तो था... भूतों से डर लगता था! हर आहट पर लगता... भूत आया! मुझे याद है वह पहली रात... मुझे लघुशंका के लिए जाना था... बाथरूम जैसे तो कुछ था नहीं... और जंगल तो दिन में भी डरावना-सा लगता था... रात में तो और भयावह हो जाता... हिम्मत जुटाकर कुछ कदम कुटिया के बाहर आया... और कानों पर शायद किसी टहनी के टूटने की ही आवाज़ आयी होगी... लेकिन रात के सन्नाटे में वह आवाज़ मेरी ओर आते हुये भूत की ही लगी... भूत ही मुझे लेने आ रहा था!...मैं उल्टे पैर झोंपड़ी में वापस भागा... बिना अपना मूत्राशय खाली किए... जो मैं ने किया उसे एक पल के लिए नज़र अंदाज़ कर के भी, फिर से उस रात के अंधेरे में झोंपड़ी के बाहर निकलने का साहस मैं जुटा नहीं पाया!...पूरी रात ऐसे ही बेचैन और भयभीत आँसुओं से भरीं... खुली आँखों में बिताई...

दूसरे दिन इस समस्या का हल निकाला...दोपहर या शाम से पानी ही न पीना...! लेकिन शरीर का कार्य हमेशा अपनी सहूलियत नहीं देखता... और दुर्भाग्य से मेरी लाख कोशिशों के बावजूद, फिर वही हालात पैदा हुये... मुझे जाना ही पड़ा... फिर वही सब हुआ जो पहले हो चुका था, वही नाटक, पर आज भूतों ने कम डराया!... इस

के बावजूद मैं अपने डर से हारा हुआ कुटिया में लौटा, मूत्राशय को सहेजते हुये करवट बदल बदल, दर्द और विवशता की ग्लानि को झेलते हुये.... सूर्य की पहली किरणों की प्रतीक्षा में... बिना नींद के रात बिताई...

तीसरे दिन मुझे एक खयाल आया... मैं ने ध्रुव की वह तस्वीर जिसमें बाल ध्रुव पर भगवान श्री विष्णु अपने आशीर्वादों की वृष्टि कर रहे हैं, सामने रखी... भगवान विष्णु की आँखों में अपनी आँखें डाल, निहारकर देखता रहा... उनसे कहा, 'ठीक है, हम साथ साथ चलेंगे बाहर... यदि आपको कोई हानि पहुँचाता है तो मैं तुम्हारा रक्षण करूँगा... और यदि कोई मुझे ड़राने की कोशिश करेगा तो आप मुझे संभालोगे...'

भगवान के साथ अनुबंध!...एक अनोखा क़रारनामा!!

एक बालक का विश्वास-श्रद्धा से भरा तर्क कभी तोड़ा नहीं जाता... और मुनि जी, बड़े आत्मविश्वास के साथ अपनी रात्रि यात्रा पर झोंपड़ी से बाहर निकले... जंगल में अपने बाथरूम की तलाश में! ध्रुव की वह तस्वीर कस कर पकड़ी, सावधान होकर... सावधानी से आगे बढ़ते हुए कि कोई तस्वीर के उस बालक या भगवान को हानि न पहुँचाए... भगवान के उस चित्र रूप अस्तित्व ने भी बाल मुनि जी को इतना विश्वास से भर दिया कि मूत्र विसर्जन के अपने बड़े कार्य में किसी भय-चिंता के बिना आसानी से सफल हुए! और क्यों न हो... आखिर भगवान ही से अनुबंध किया था! उन्हों ने अपनी ज़िम्मेदारी निभाने की पूरी तैयारी कि थी तो उन्हें पूरा विश्वास

था कि भगवान उनकी ज़िम्मेदारी भी अवश्य निभायेंगे! बाथरूम के बाद झोंपड़ी के बाहर लगे हैंडपंप से हाथ पैर धोये और एक सफल योद्धा की अनुभूति से वापस लौटे!

भारत भर में गाँव और जंगलों तक भी जगह जगह यह हैंड पंप्स होते हैं जो सभी को पानी उपलब्ध कराते हैं... वरना जंगलों और गांवों में कई बार ग़रीब लोगों को पानी नसीब नहीं होता... बड़े शहरों को छोड़कर, बहता हुआ मुक्त पानी आज भी, और साठ वर्ष पूर्व तो और भी... बहुत दुर्लभ था... भारत की बहुसंख्य जनता आज भी रसोई, स्नान, पेयजल, आदि आवश्यकताओं के लिए ऐसे हैंड पंप्स के पानी का ही इस्तेमाल करती है... संत, महात्मा, साधु-संन्यासी एकान्तवास के लिए और अपने गोधन- पशु धन को लेकर चरवाहों की भी जंगलों में दूर दूर तक भ्रमण करने की परंपरा है... यही हैंड पंप्स सबको बहुत आसानी से सर्वत्र उपलब्ध हैं... पूज्य श्री स्वामी ब्रह्मस्वरूपानन्द जी ने अपनी सख्त एवं कठोर साधना के आदेश के साथ साथ यह भी सुनिश्चित किया था कि उनके शिष्य को पानी के लिए कोई कठिनाई का सामना न करना पड़े!

“हमारी गाड़ियों में जीपीएस होता है जिसका बोध होता है ग्लोबल पोज़िशनिंग सिस्टम... लेकिन हमारे जीवन में भी जीपीएस होता है... “गॉडस् पर्फेक्ट सिस्टम!”... अंतरात्मा की वह दैवी, शांत, गंभीर, स्थिर आवाज़ ही हमारी दिव्य व्यवस्था है... यदि हम इस दिव्य जीपीएस प्रणाली का अनुसरण करेंगे तो जीवन में कभी खोएँगे नहीं, बहकेंगे नहीं!”

इस तीसरी रात को, जो जीवन के अनेक वर्षों के वास्तव्य के इतिहास की पार्श्वभूमि बन गयी थी,... मुनि जी ने बाथरूम जाने के लिए एक पेड़ के तने पर वह दिव्य तस्वीर बड़े प्यार से रख दी और फिर लघुशंका से निवृत्त होकर वे वापस आए... हाथ पैर धोने के लिए जैसे हैंडपंप की ओर झुके और अचानक एक ज़ंग लगा हुआ कील ढीला होकर नीचे गिरकर लोहे के स्तम्भ पर ज़ोर से टकराया होगा... अंधेरी रात के सन्नाटे में उस आवाज़ ने मुनि जी के बाल मन को बुरी तरह डराया...

"हड़बड़ाहट में मुझे कुछ भी समझ नहीं आया...अब जब सोचता हूँ तो मैं कह सकता हूँ कि वह एक ज़ंग लगी हुई कील ढीली होकर लोहेसे टकराने की आवाज़ थी... लेकिन यह आवाज़ मैं ने जिस क्षण सुनी थी तब तो मुझे विश्वास हो गया था... ये और कोई नहीं... यह भूत ही हो सकता है... जो एक पलभर में मुझपर झपटने वाला है... मैं कुटिया की ओर जितनी जल्दी भाग सकता था उतनी तेज़ी से कदम बढ़ाए और भीतर आकर आश्वासनभरी लंबी साँस ली... लेकिन जब साँस में साँस आयी, एक और ऐसा झटका लगा, जो ज़िंदगीभर नहीं भूल सकता... मेरी तस्वीर अपनी जगह पर नहीं थी... मुझे भगवान के साथ का अनुबंध याद आया... चाहे जितना मैं अपने मकसद में सच्चा था, अंजाने में ही सही, लेकिन मैं ने उनको जंगल में बाहर अकेला छोड़ा था... मैं ने अपने वचन का पालन नहीं किया... जब सब से अधिक आवश्यकता थी ऐसे समय में उन्हें मैं ने अकेला छोड़ दिया... उनकी सुरक्षा का दायित्व मैं ने स्वीकारा था... लेकिन जब भूत आया तब मैं केवल अपनी जान बचाकर भागा... उनकी सुरक्षा के बारे में भी न सोचा... अपराध बोध और पश्चाताप की आग में मैं इस तरह झुलस गया जिस का

अनुभव मैं ने न पहले कभी किया था न ही उसके बाद आजतक... ऐसे लगा जैसे मैंने धोखा दिया है भगवान को... उन्हों ने मुझपर विश्वास किया था, हम दोनों ने एक दूसरे को वचन दिया था और मुझे लगने लगा जैसे मैं ने विश्वासघात किया उनका...

पूरी रात आंसुओं का समंदर बहा... अपराध बोध, वेदना, शर्मिंदगी और असह्य शोक के आवेग से उनका सिर भारी था। एक मिनट के लिए भी निद्रादेवी पास न आयी... फिर भी, उस आत्यन्तिक पश्चात्ताप एवं पाप की भावना से भी उस नित्य-प्रतिष्ठित भूत का बेहद भय अधिक बलवान था...'यह जानकार भी कि भगवान वहाँपर अकेले हैं... मैं ने उनको अकेले छोड़कर अपना वचन तोड़ा है... हो न हो, यह भूत उनको भी तंग कर रहा होगा यह सोचकर भी मैं उनको बचाने के लिए झोंपड़ी के बाहर जाकर उन तक पहुँचने की हिम्मत जुटा न पाया... ताकि कहीं उस अंधेरे में भूत मुझे न पकड़ ले!..."

सूर्य की पहली किरणें जब घने पेड़ों की शाखाओं से और उनके पत्तों से छनकर नीचे उतरकर कुछ रोशनी लाईं तब जाकर मुनि जी ने झोंपड़ी के बाहर निकलने का साहस किया! रातकी चादर हटकर जीवन के मंच पर प्रकाश आया, वे दौड़ पड़े देखने के लिए... कि, क्या हुआ मेरे प्रिय भगवान के साथ... "...चमत्कार हुआ...अहोभाग्य मेरे!! ...मेरे ठाकुर, मेरे प्रभु, वहीं थे... बिना किसी आँच, हानि या छेड़छाड़ के, ठीक वहीं, उस पेड़ के तने पर सुरक्षित और उसी तरह मंद मंद हँसते हुये..." रात में जहाँ से ग्लानि और वेदनाओं के आँसू गालों पर बह निकले थे, उसी रास्ते से अब बेहद खुशी और आनन्द के झरने बह रहे थे... झपटकर मुनि जी ने उस दिव्य तस्वीर को उठाया और अपने सीने से लगाया... कसकर... उनके हृदय की आँखें भगवान विष्णु की दिव्य आँखों से मिलीं!

"अचानक, जैसे ही मेरी आँखें मेरे प्रभु की आँखों में गढ़-सी गयीं, और जैसे ही मैं ने अपनी ग़लती, अपराध और पश्चात्ताप को स्वीकार कर प्रकट क्षमा याचना की... उस तस्वीर से एक आवाज़ आयी... 'क्या तुम ये सोचते हो कि मैं केवल इस तस्वीर में निवास करता हूँ? मैं तो सर्वत्र बिराजता हूँ...? सदैव तुम्हारे साथ हूँ, सदा तुम्हारी रक्षा करता हूँ?... मैं तुम्हारा साथ कभी नहीं छोड़ूँगा। ...और जब मैं तुम्हारे पास हूँ तो डरना क्यों...? और फिर किस चीज़ से? मैं हूँ ना!!"

उस क्षण के बाद पूज्य स्वामीजी कहते हैं, "मेरा जीवन पूरी तरह से बदल गया...' "ठाकुर मेरे सबसे अच्छे सखा बने!... मेरे माता, पिता और मेरे सबसे बड़े जीवनसाथी बने! मैं उनसे बिलकुल उसी तरह बात करता जैसे लोग अपने सब से निकट, गहरे दोस्त के साथ करते हैं... जिस प्रकार अपने विचार, आशंकाएँ, कल्प-नाएँ एवं अनुभवों को कोई घर आकर अपनी माँ के साथ साझा करते हैं बिलकुल ऐसे बच्चों की तरह प्रतिदिन, अपने सारे दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर फिर ठाकुर के पास बैठता और उनसे पूरे दिन की इत्थंभूत कहानी बताता... फिर ठाकुर जी भी मुझसे बात करते... मेरे कानों मे, मेरे हृदय में... मुझे स्पष्ट सुनाई देती उनकी आवाज़.... कभी मेरा मार्गदर्शन कराते हुए, कभी दिलासा दिलाते हुए तो कभी केवल मुझे महसूस कराते... कि वे मुझे सुन रहे हैं!"

नारायण हरि!

मुनि जी का पहला वर्ष साधना करते करते बड़ी आसानी से बीत गया। हृदय में प्रभु का स्वरूप दर्शन और मन की गहराइयों में

आँखें गाढ़कर दिन बीत रहे थे... जैसे सूर्य सिर पर आता, वे किसी नज़दीकी गाँव की ओर चल पड़ते... जानबूझकर, रोज़ नयी जगह जाने का ध्यान रखते ताकि एक ही जगह जाकर कोई भिक्षा देने में ऊब न जाये... अपने मौन साधना के नियमों में केवल "नारायण हरीss..." बोलने की छूट थी... जिस से जहाँ से भिक्षा लेनी है, वहाँ पता चले कि कोई साधु आया है... गाँव वाले शायद उनकी कोमल आयु और दुबले पतले शरीर से उनकी ऋषियों वाली कठोर साधना देखकर दयाभाव से उन्हें भिक्षा देते... या फिर कई अन्य अपने संस्कारों की वजह से... घर पर आए अतिथि को अन्नदान करने से, वह भी किसी साधक ब्राह्मण को पुण्य मिलता है और ऐसे अच्छे कर्म से भगवान की कृपा प्रसाद और आशीर्वाद प्राप्त होते हैं...

ऐसी मान्यताओं में विश्वास रखनेवाले उन्हें भिक्षा अवश्य देते...

ऐसा होनेपर भी कुछ लोग ऐसे भी होते थे जो भिक्षा नहीं देते... जंगलों में रहने वाले अनेक लोग ऐसे भी थे जो अपनी गृहस्थी भी ठीक से नहीं चला पाते... सुबह से शामतक खेती करनेवाले किसानों को दो समय की रोटी भी मुश्किल से नसीब होती... ऐसे में मुनि जी की "नारायण हरीss" बोलनेवाली मधुर आवाज़ भी बहुत बुरी तरह से प्रताड़ित होती..." हट्टे-कट्टे हो....कमा के खाओ..." वे झल्लाकर उन्हें धुतकारते... कभी डंडा, कभी अपमान तो कभी तंज़ कसते शब्द, तो कभी अपने कुत्तों से भगाते... नियम था... 'तीन घर'। नियमानुसार हर दिन केवल पहले तीन घरों से ही भिक्षा ली जा सकती थी। मतलब यह कि यदि किसी एक घर से भिक्षा मिली तो उस दिन पेट भर जाता... यदि उन तीन घरों से केवल डाँट-फटकार, तिरस्कार, गाली या धमकी ही मिली तो उस दिन यही समझना था

कि ठाकुर की इच्छा यही है कि मैं उपवास करूँ! उस दिन वे भूखे पेट और खाली हाथ वापस लौटते।

ग्रीष्म ऋतु के बाद वर्षा आयी, शरद और हेमंत ऋतुओं के बाद शिशिर ऋतु भी ठंड लेकर आयी... गुरु जी का कोई अता-पता नहीं था... चूँकि भिक्षा में केवल भोजन लेने का आदेश था, तो किसी से कोई शाल, कंबल या चद्दर या कुछ भी ओढ़ने के लिए माँगने का विचार भी न करना उन्हों ने उचित समझा... हालाँकि उनके कृश शरीर को जंगल की वह तेज़ और सुन्न करती हुईं ठंडी हवाओं को झेलना अत्यंत भयावह था। भारत के बड़े मंदिरों को छोड़कर सार्वजनिक एवं गाँव के पुराने मंदिरों में कई बार दरवाजे तक नहीं होते थे। सड़कों के किनारे या गाँव में जो मंदिर होते हैं वे कभी बंद नहीं होते! मंदिर का भगवान की मूर्ति की ओर खुलनेवाला गुम्बदाकार प्रवेशद्वार सदैव खुला ही रहता है। इस प्रकार जाड़ों में मुनि जी अपने दुबले पतले शरीर को सिकुड़कर मंदिर के शिव लिंग के पास लेट जाते तो उनके पास कड़कती ठंड से बचने के लिए कुछ भी नहीं था। बावजूद इसके, पता नहीं कैसे, भीतरी अंतर्निहित ऊर्जा ने काम करना शुरू कर दिया... “मुझे ठंड महसूस होना ही बंद हो गया”... वे बताते हैं, “हाँ, मैं जानता था कि बाहर ठंड बिलकुल जमा देनेवाली है लेकिन अंदर से शरीर में ठंड की वजह से महसूस होनेवाली बेचैनी या कम्पकपी का नामोनिशान नहीं था। बाहर हड्डियाँ जमानेवाली ठंड थी और मैं अंदर से अच्छी तरह से सुखद ऊर्जा का अनुभव करता।”।

आंतरिक ऊर्जा का यह स्रोत पूज्य स्वामीजी के साथ उनके बचपन के वर्षों बाद भी बना रहा। लगभग पंद्रह वर्षों बाद, पिट्स-

बर्ग, पैंसिल्वेनिया में हिन्दू जैन मंदिर के निर्माण के दौरान पूज्य स्वामीजी फावड़े से हिमपात से गिरी हुई बर्फ को हटाते हुये भी नज़र आए थे... तब भी उन्हों ने एक पतली धोती के अलावा कुछ भी नहीं पहना था! "थर्मल्स जैसे कुछ होता है ये मुझे अभी अभी मालूम हो चला है! मेरी यादों में दूर दूर तक ऐसी कोई कल्पना भी नहीं थी!"

अंत में, शीत का कहर कम हुआ और हरे हरे अंकुर फूटने शुरू हो गए... ज़मीन पुन: नर्म और अधिक उपजाऊ हो गयी। कुछ महीने बीते... पुन: गर्मी के दिन आए... गर्मी बढ़ने लगी... और एक दिन सुबह गुरुजी दोबारा आए... बिना कुछ बोले उन्हों ने पूछ लिया, 'कैसे हो? कैसे बीते दिन या ठीक तो हो?' यह एक ऐसी भाषा थी कि जो केवल गुरु और शिष्य ही सुन और समझ सकते हैं! उन्हों ने यह भी पूछ लिया उसी भाषा में कि कोई ऐसी मुश्किल तो नहीं है कि जो मुनि जी की क्षमता से बाहर हो?... मुनि जी की छोटी गहरी आँखों से छलकनेवाला तेज और चेहरे पर खिली हुई स्मितरेखा ही गुरुजी के प्रश्नों के उत्तर के लिए काफ़ी था ...प्रसन्न चेहरे से मुनि जी ने अपने गुरुजी के चरण स्पर्श किए। "एक वर्ष और..." गुरुजी ने यूँ ही कहा कि जैसे किसी तेज़ धावक को बस एक और पाला पूरा करने के लिए कह रहे रहे हों... न कि एक कुमार को पुन: एक सुनसान जंगल में और एक वर्ष एकान्त में काटने के लिए कह रहे हों...।

फिर से विद्यालय

एक वर्ष बाद गुरुजी वापस आए... आकर सूचना दी कि अब मुनि जी की उच्च शैक्षिक अध्ययन के लिए उचित समय है... "उन्हों ने मुझसे कहा कि पहले मैं स्नातकीय शिक्षा पूरी करूँ और फिर संन्यासी बन सकता हूँ। वस्तुत: उन्हों ने मेरे जंगल जाने से पहले ही यह शिक्षा पूरी करने के लिए कहा था... लेकिन उनके दैवी स्पर्श का वह अद्भुत अनुभव करने के बाद उस समय मैं विद्यालयीन शिक्षा के बारे में सोच ही नहीं सकता था..."।

यद्यपि गुरुजी ने उनको साधना के लिए विद्यालय छोड़ने की अनुमति दे दी थी, अब जंगल की साधना के बाद उनका निर्णय बदल गया। या फिर शायद वे मुझे बाहरी दुनिया में रहकर जीवन-यापन करने का आखरी मौका दे रहे थे... ताकि मुझे पता चले कि मैं कैसी ज़िंदगी त्यागनेवाला हूँ और मेरी मानसिक तैयारी अधिक सुदृढ़ हो..." चाहे जो सोचकर... पर गुरुजी ने अपना निर्णय पक्का कर लिया था... मुनि जी को उन्हों ने विद्यालय भेज ही दिया। इतने सालों के अवकाश के बावजूद भी अपनी साधना के बलपर बिना किसी कठिनाई के मुनि जी अपने सहपाठियों के साथ अध्ययन में जुट गए।

"विद्यालय जाने से पहले रोज़ मैं अपने आध्यात्मिक गुरु से मिलता... उनकी सेवा, मंदिर की सेवा... जैसे झाड-पोंछ, कर लेता, अपनी जप और ध्यान साधना करता और बाद में विद्यालय जाता। थोड़ा जल्दी वापस आता ताकि दोपहर कुछ समय गुरुजी के चरणों में बिता सकूँ। फिर भी हर परीक्षा में मैं अव्वल आता था!..." .... स्वामीजी कहते हैं।

विद्यालय में एक ही गतिविधि मुनि जी को भाती थी... 'नाटक' **"विद्यालय के नाटकों में मैं कभी बुद्ध बन जाता तो कभी श्रवण कुमार, कभी कोई दिव्य महापुरुष तो कभी कोई दिव्य सांस्कृतिक भूमिका! मुझे कभी ऐसे नहीं लगा कि मैं कोई किरदार निभा रहा हूँ... मैं सचमुच वही बन जाता। विशेषत: भगवान बुद्ध के किरदार ने मुझे ऐसे जकड़ लिया था कि न केवल मैं वह भूमिका जी रहा था, बल्कि सभी मुझे संत के नाम से ही पुकारते!"**

मुनि जी के पारिवारिक गुरुजी एक भ्रमणशील संत थे। एक जगह पर टिकते नहीं थे... और मुनि जी उनके बिना रह नहीं पाते... तो अनेक बार विद्यालय छोड़कर अपने गुरु के साथ रहने के लिए जहाँ वे होते उनके पास चले जाते... फिर अनेक हफ्तों बाद गुरु के कहने पर बेमन से विद्यालय वापस लौटते... कुछ दिनों बाद फिर से उनके दर्शनों के लिए पुन: जंगल के निर्जन एकान्त में और ग्रामीण इलाकों में भाग जाते...

घर में रहकर, विद्यालय में अध्ययनरत होने पर भी मुनि जी आध्यात्मिक राह में दृढ़ता से चल पड़े थे। अपने जीवन का लक्ष्य उनके सामने अत्यंत सुस्पष्ट था।

एक दिन विद्यालय से लौटने के बाद एक घने पेड़ के नीचे मुनि जी ध्यान में बैठे थे। जब बैठे थे, तब सूरज बिलकुल सिर पर था, और पेड़ की घनी छाया उन्हें तपती धूप से बचा रही थी। कुछ देर के बाद सूरज पश्चिम की ओर मुड़ गया तो मुनि जी के सर पर और चेहेरे पर कड़कती धूप आ गयी... साक्षी भाव से मुनि जी ने उस अनुभव को देखना शुरू किया... ध्यान जारी रहा... सूरज की गर्मी से तपते बदन में से पसीने छूटने लगे थे... फिर भी ध्यान नहीं टूटा... फिर अचानक एक पल में, उनका शरीर शीतलता

महसूस करने लगा... अपनी बंद आँखों से उन्हों ने एक काली-सी परछाई अपनी दृष्टि की सीमाक्षेत्र से गुजरती हुई महसूस की। आँखें खोलते हुये उन्हें यही लगा था कि कोई जंगली जानवर उन्हें अपना भोजन बनाने की तैयारी में है!... और देखा कि....एक बड़ा-सा नाग देवता अपना विशाल फन उनके सिर पर धरकर खड़ा है। नाग की परछाई उनके पैरों से लेकर सिर तक आकर मुनि जी के कृश शरीर पर आनेवाली सूरज की प्रत्येक किरण से उनका बचाव कर रही थी। फिर एहसास हुआ, कि वहाँ नाग तो था ही नहीं... केवल उसकी शीतल छाया थी!

"मैं जान गया कि यह अनुभव उसी तथ्य को उजागर करता है कि प्रभु सदैव साथ होते हैं, रक्षण के लिए, छाया और शीतलता देते हुए..."

विद्यालय का समय मुनि जी के लिए बहुत तेज़ी से बीत गया। वे कहते हैं, "वहाँ रह कर भी मैं वहाँ नहीं था। मेरा मन, मेरा दिल, मेरा दिमाग अभी भी उन जंगलों में ही था। चाहे घर में या विद्या-लय में, जहाँ भी मैं होता था मेरा मंत्र जप चलता रहता। जब भी मौका होता, मैं गुरुजी के पास भाग जाता"।

पुस्तकीय विद्यालय से जीवन की पाठशाला की ओर...

नंगे पैर, मौन, केवल अपने कपड़े, श्रीमद भगवद्गीता की एक छोटी-सी किताब, मुनि जी की भगवान विष्णु के साथ बाल ध्रुव की वह तस्वीर, और स्वामीजी का कमंडल (खप्पर) (जो सामान्यत: लकड़ी का हुआ करता था) के साथ मुनि जी ने अपने गुरु के साथ

अगले अनेक वर्षों तक भ्रमण किया... अधिकतर कश्मीर, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, और उत्तरप्रदेश तथा जो अब उत्तराखंड में है...उन के सभी जंगलों और गांवों में मुक्त संचार किया...

समय समय पर पूज्य स्वामी श्री ब्रह्मस्वरूप जी, किसी भी सूचना के बिना, किसी जानकारी के बिना बीच में ही छोड़ जाया करते... जंगलों के एकान्त में... कभी किसी गुफ़ा में, कभी किसी खंडहर-सी कुटिया में, या फिर किसी छोटे से मंदिर के पास जैसे साधनाकाल के पहले साल उन्हों ने गुज़ारे थे... नियम वही थे... न पैसे, न ओढ़ने के लिए चद्दर, एक पतली सी दरी जिस पर सो सकें... वही भगवद्गीता, वही ध्रुव की तस्वीर... वही मौन और दोपहर का 'नारायण हरी...' वाला कार्यक्रम...भिक्षा! कभी कुछ महीने बाद गुरु जी लौटा करते।

जब वे साथ भ्रमण करते तब भी नियम कोई अलग नहीं थे... बल्कि और कठोर हुआ करते थे। "वे सचमुच बहुत ही सख्त, बहुत ही कठोर थे...."। पूज्य स्वामीजी याद करते हैं। "ज़रा सी ग़लती हुई नहीं...एक चाँटा जड़ देते...एक दिन मैं ने 21 थप्पड़ खाये थे!" लेकिन ये थप्पड़ क्रोध में आपे से बाहर होकर और अपमानित करनेवाले नहीं होते थे... बल्कि, उस कुम्हार की भाँति हुआ करते थे जो अपना बनता हुआ घड़ा सावधानी से ठोक बजाकर देखता हो... कि कहीं कच्चा तो नहीं रह गया है... एक हाथ से कुम्हार घड़ा पकड़ता है और दूसरे हाथ से उसे थपथपाता है... ज़ेन बौद्ध धर्म में एक परंपरा है। जो धर्म गुरु होता है वह ध्यान में बैठे हुए अपने शिष्यों के बीच में मौन रहकर चक्कर लगाते रहते हैं और समय समय पर सभी को पीठ पर एक लंबी छड़ी से हलका-सा प्रहार करते रहते हैं... यदि मन भटक रहा हो तो गुरु जी की एक

मार से वह सही जगह पहुँच जाता है... पीठ के ऊपरी हिस्से और कांधे कभी कभी अतिशय लाल हो जाते लेकिन मन एकाग्र, तेज़ और सदा जागरूक रहते!

मुनि जी के लिए दिये हुए नियमों में से एक यह भी था कि मंत्र जप अविरत चलते रहना चाहिए... जिसकी आवाज़ सुनाई न दे लेकिन होंठ दिनभर, हर पल बिना रुके चलते रहने चाहिए...

मुझे याद है, गुरु जी एक बार दोपहर किसी वृक्ष की छाया में विश्राम कर रहे थे। सिर से पैर तक उन्हों ने एक चद्दर से अपने आप को ढँक लिया था। मच्छरों से बचने के लिए उस चद्दर को उन्हों ने सिर और पैर के नीचे दबा लिया था ताकि चद्दर उड़ न जाये। मैं उनके लिए हाथ से पंखा चला रहा था। पता नहीं, शायद मैं भी थक गया था...। सुबह ५ बजे से पैदल चल देते थे... और थकावट के कारण दोपहर की गर्मी का नींद देनेवाला नशा मुझपर छाने लगा था... हवा करते करते पंखा रुक रुक जाता... जैसे ही नींद मुझपर हावी हुई, मन्त्र जपनेवाले मेरे होंठ रुक गए... गुरु जी सोये हुये थे... पर पता नहीं कैसे उनको पता चलता, हालाँ कि उनका पूरा शरीर अभी भी उसी तरह ढँका हुआ था... लेकिन मुझे पता भी नहीं चला... कैसे उनका एक हाथ खुलकर चद्दर से बाहर आया... सीधे मेरे गालपर थप्पड़ मारकर ही वापस गया!”

और एक बार, हमेशा की तरह जंगल, गाँव या पहाड़ी में नंगे पैर बिना किसी सामान के घूमते घूमते वे दोनों किसी सघन आबादी वाले शहर में आ गए। जंगल या वीरान बस्तियों में पशु-पक्षी, पेड़-पौधों के अलावा किसी और चीज़ से कभी ध्यान नहीं बँटता था मुनि जी का... लेकिन शहर की चकाचौंध में मुनि जी की आँखें और मन जगह जगह दिखाई देने वाले इश्तहार, विज्ञापन फ़लक जैसी चीजों

में तल्लीन हो गया। एक के बाद एक ऐसे फ़लक आते गए... नए नए इश्तहार, विविध सेवाएँ और उनको वर्णन करनेवाले आकर्षक शब्द... मुनि जी एक एक शब्द और फ़लक पढ़ते गए।

मन की भी एक नैसर्गिक सीमा होती है... चाहे हम कहें कि मन में बहुत सारी बातें हैं... मन एक समय पर एक ही काम कर सकता है... चाहे बहुत सारी वस्तुओं या विचारों का ध्यान आता हो लेकिन वह भी एक साथ नहीं होता है... एक के बाद एक ही होता है... क्रम से ही होता है... कभी कभी यह क्रिया इतनी तेज़ी से होती है कि हमें बहुत सारी बातें एकसाथ चलने का आभास मात्र होता है... हमारा दिमाग एक समय एक ही विषय पर ध्यान दे सकता है। इसलिए जैसे मुनि जी की आँखें और मन शहर की नुमाइश में व्यस्त हो गईं उनका ध्यान और एकाग्रता भंग हो गयी... उनके होंठों ने कब मंत्र जपना बंद कर दिया और आकर्षक इश्तहारों के जुमले पढ़ना कब शुरू हुआ, पता ही नहीं चला... सड़कों पर ट्रकों के पीछे बेहद आकर्षक उक्तियाँ, काव्यमय भाषा शैली में बहुत ही दिलकश पंक्तियाँ... मुनिजी का ध्यान उधर ही टंगा रह गया... जो कि आँखों को झुका रहना चाहिए था... अपनी धुन में पता ही नहीं चला उन्हें कि गुरुजी कब अचानक रुक गए... गुरुजी के पीछे ही वे चल रहे थे पर अचानक मुड़े, तुरन्त समझ गए कि क्या हो रहा है और एक जोरदार थप्पड़ मुनिजी के गालों पर जड़ दिया! **"... तुरन्त...मैं अपने मंत्र जप में वापस आ गया...सारे इश्तहार, फलक, जुमले और कवितायें जैसे अदृश्य हो गईं... सिर्फ मेरा मंत्र मेरे साथ बाकी रह गया!"**

और एक महत्वपूर्ण नियम था विशेषकर युवा ब्रह्मचारी साधकों के लिए... आध्यात्मिक साधना में साधक को महिलाओं के साथ

किसी भी प्रकार का संवाद वर्जित था। जैसे साधना गहराती जाती है, तपस्या की दृढ़ और समृद्ध भूमि में पनपती है, त्याग के जल से सिंचित होती और प्रभुकृपा की किरणों से खिल उठती है... शरीर के सारे विकार और वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं... आध्यात्म तेज का दैवी कमल खिलता है और नश्वर शरीर की भूख मिट जाती है। सारी वासनायेँ सूखे गुलाब की पंखुड़ियों की तरह झड़ जाती हैं, केवल एक संतुलित तन-मन का सुगंध... परमानंद शेष रहता है! फिर भी प्रारम्भिक अवस्था में गुरु अपने शिष्यों का विशेष ध्यान रखते हैं जिस से संसार की मोहमाया और उस रास्ते की फिसलन में युवा साधक अपने आप को मज़बूती से संभाल सकें... वासना, लोभ, ईर्ष्या तथा क्रोध से बचे रहें...

ईश्वर और गुरु कोई विक्रय मशीन नहीं है, जो आप पैसा डालें और बटन दबाकर खाने का सामान निकाल लेंगे। ठाकुर हमें आवश्यकतानुसार देते हैं... इच्छानुसार नहीं।

“एक बार मैं ने अपने आप को एक चलती गाड़ी के नीचे लगभग झोंक ने का विचार किया था... बहुत थप्पड़ खा चुका था। सोचा मैं शायद आखरी बार बात कर रहा हूँ...। अपना मौन तोड़कर मैं ने उन्हें कहा, ‘ठीक है...रहने दीजिए...बहुत हो चुका...रोज़ रोज़ के ये थप्पड़ खाने से मर जाना अच्छा है...’ वैसे तो उनके ये थप्पड़ मेरे दैनंदिन जीवन का अभिन्न हिस्सा बन गए थे और ज़रा ज़रा सी बात पर खाने पड़ते थे, लेकिन ये थप्पड़ कभी भी हिंसक नहीं थे, बहुत संयमित थे, फिर भी इस बार चलती रेलगाड़ी के सामने कूद पड़ने के लिए मैं ने अपने आप को तत्पर कर लिया, उन्हें लगा कि अधिक प्रभावी शस्त्र की आवश्यकता है...

"क्या? क्या कहा तुमने?" वे चिल्लाए और उन्हों ने अपना कमंडलवाला हाथ ऊपर किया और तेज़ी से मेरे सर की ओर नीचे लाने लगे... उन्हों ने सोचा होगा कि अगर मुझमें कोई विवेक या समझ नहीं है तो केवल यही रास्ता है...! ....शायद ये भी सोचा होगा कि होश आनेपर मेरी सोच भी सही होगी...यूँ तो मैं स्वस्थ और फुर्तीला था, पर उस पल विद्रोह और असंतोष की भावनाओं से भरा हुआ था। इस प्रकार जब उस कमंडल को तेज़ी से अपने सिर पर आते देखा तो मैंने उतनी ही तेज़ी से अपने हाथों से उसे पकड़ लिया... हमारे हाथ क्षणार्ध मिले... कमंडल दोनों ने पकड़ लिया था... लेकिन वे उसे नीचे ला रहे थे और मैं उस वेग से बच रहा था। जैसे हमारे हाथों ने एक दूसरे को स्पर्श किया, हमारी आँखें गढ़-सी गईं... मेरी आँसुओं से भरीं.... मेरे अज्ञान का पर्दा हटकर बह रहा था... उन आँसुओं के साथ...

वे मुड़े और चलने लगे। मैं उनके पीछे चलता रहा... चुपचाप, मौन, काफ़ी देर तक... जब उन्हें लगा कि मैं ने ठीक से अपनी भूल महसूस की है, तो उनकी स्नेहभरी बाँहें पुन: मेरे लिए खुल गईं... मैं उनमें समा गया...

मुझे पता चला... जब उस कमंडल को मैं ने छुआ था तो मुझे पता चला कि कितनी दृढ़ता से उसे उन्हों ने उसे पकड़ा हुआ था... प्रहार करने के लिए नहीं... क्रोध के कारण नहीं, मुझे शिक्षा देने के लिए... मेरे कच्चे घड़े को आकार देने के लिए... मुझे मारने के लिए नहीं, मेरे अज्ञान, अहंकार और मोह को चूर चूर करने के लिए... उनको पता था एक एक कदम का... पूर्ण नियंत्रण में थे वे... उन्हों ने मुझे कभी भी क्रोधवश नहीं मारा। उन्हों ने मुझे इसलिए मारा

कि उनके विचार से यही सरल, तेज़ और सीधा उपाय था...मेरे दिमाग़ में कुछ डालने के लिए या दिमाग़ से कुछ हटाने के लिए!!"

शरीर नहीं, अंत:करण का पोषण

अपनी पदयात्राओं के दौरान गुरु-शिष्यों की इस जोड़ी की रातें किसी वृक्ष के नीचे या तो कभी खेतों-खलिहानों या कभी कभार किसी भक्त के घर बीततीं। पैसे रखते नहीं थे, पैसों को छूते तक नहीं थे... और तीन घरों से अधिक भिक्षा न लेने का नियम होने से उनका भोजन गाँव वालों की श्रद्धा, भक्ति और दया पर ही निर्भर था। सामान्यत: एक बार तो भोजन मिल ही जाता था, कभी वह भी नहीं...

एक बार मुझे याद है... लगातार तीन दिन तक हमें भिक्षा नहीं मिली... भूख के मारे मैं व्याकुल था... लगातार तीन दिन तक किसी घर से भिक्षा नहीं मिल रही थी... चलते चलते एक आश्रम में पहुँच गए। थकान की जगह एक आशा ने ली... कि अब तो भोजन ज़रूर मिलेगा... क्यों कि आश्रमों का यह अलिखित नियम होता है कि किसी भी अतिथि को बिना भोजन के जाने नहीं देते। जैसे हम आश्रम में पहुँचे तो हमें वहाँ के मुख्य स्वामीजी के कक्ष में ले जाया गया। हमारे सामने ही वे अपनी चांदी की थाली में भोजन ग्रहण करने लगे... हम से पूछा तक नहीं...

आश्रम की परम्परा है कि कोई भी आगंतुक, यात्री और विशेष कर साधु-संन्यासी को भोजन अवश्य कराया जाता है... किसी को भोजन या प्रसाद की याचना नहीं करनी पड़ती। कुछ बड़े आश्रमों में तो पूरे दिन भर भंडारा चलाया जाता है... जो आश्रम चौबीसों

घंटे भोजन न भी देते हों तो भी आश्रम में यदि कोई भोजन समय पर अतिथि बनकर आता है तो उसे भोजन अवश्य कराया जाता है... यह ऐसी परंपरा है जो आज भी प्रचलित है। यह अतिथि यदि कोई साधु-संन्यासी है तब तो यह अलिखित नियम है कि आश्रम में किसी संन्यासी को कभी भिक्षा माँगनी नहीं पड़ती... आश्रम में उनको भोजन बिन माँगे ही दिया जाता है... हाँ, शहरों और बड़े गाँवों में भिक्षा लेने जाना पड़ता है... जहाँ लोग मतलबी होते हैं, दुनियादारी में उलझे होते हैं, जो बिन माँगे कुछ भी देने के लिए राज़ी नहीं होते हैं... वहाँ साधुओं को भी भीख मांगनी पड़ती है, उनके धर्म के अनुसार... लेकिन आश्रम में हरगिज़ नहीं... आश्रम तो सेवाभावी, आध्यात्मिक एवं साधनारत लोगों को सेवाएँ देते है... ऐसी जगह पर किसी साधु-संत को याचना कभी करनी नहीं पड़नी चाहिए। उनकी ज़रूरतें अनायास ही पूरी हो जाती हैं... हो जानी चाहिए...।

"...तो, हम वहाँ बैठे... पेट में चूहे दौड़ रहे थे, पूरा शरीर थकान से श्रांत-क्लांत था... हम सामने देखते ही रह गए और स्वामीजी एक के बाद एक रोटी खाते ही जा रहे थे... फिर भी हम आश्वस्त थे कि एक बार उनका अपना भोजन हो जाए तो फिर वे हमें ज़रूर खिलाएँगे... लेकिन.... ऐसा नहीं हुआ... जैसे स्वामीजी उठे, उन्हों ने अपने सेवक को हमें विश्रामकक्ष में ले जाने के निर्देश दिये, हम से न बात की न कोई हाल पूछा... पूज्य स्वामी ब्रह्मस्वरूपजी ने विनयपूर्वक इस प्रस्ताव को नकार दिया और अपने शिष्य को लेकर पुन: निकल पड़े... आश्रम के बाहर। जैसे ही बाहर आए, उन्हों ने समझाया, "यदि दो साधुओं को भी ये लोग खिला नहीं सकते तो ऐसी जगह पर मैं एक पल भी रुकना नहीं चाहूँगा"...।

गुरु शिष्य कि जोड़ी ने पुन: चलना शुरू किया और पूरी दोपहर चलते ही रहे। मुनि जी की हालत लगातार पैदल चलते रहने के कार्न तथा भूख के मारे पस्त थी।

जैसे ही मुनि जी के विचार उनके मंत्रजप पर हावी होने लगे सामने से एक किसान को आते देखा... पूज्य स्वामीजी के पैर छूकर वह बोला, "स्वामीजी, कृपा कर मेरे घर आयें... मुझे सेवा का अवसर दीजिये..." स्वामीजी ने उसे ढेरों आशीर्वाद दिये लेकिन घर जाने से मना किया। क्यों कि सूर्यास्त के बाद अन्नप्राशन न करने का भी नियम वे पालते थे।

लेकिन वह किसान भी ज़िद्दी था... नहीं माना... "यदि आप भोजन नहीं चाहते तो कमसे कम मेरे घर के पेड़ के आम ही स्वीकारें ...कृपा कर के मना नहीं करना...स्वामीजी, यदि आपने मेरी प्रार्थना नहीं स्वीकारी तो मैं भी अपने प्राण त्याग कर दूँगा..."

गुरुजी ने मुड़कर देखा... एक बार उस किसान को, जो ढलती शाम की धुँधली रोशनी में कहीं से अचानक ही प्रकट हुआ था... और फिर भूख से बेहाल अपने शिष्य की ओर... आख़िर उन्हों ने अपनी मौन सम्मति ज़ाहिर कर दी... उस आदमी ने घर जाकर बड़े प्यार से आम लाकर पूज्य स्वामी जी के सामने रखे... मुनि जी को आग्रह और प्यार से अपने हाथों से खिलाया... और जब तक आम खाकर एक एक गिलास ताज़े दूध का इन गुरु शिष्यों ने पान नहीं किया तब तक उन्हें अपने घर से उस ने जाने नहीं दिया।

"...तो, प्रभु सदैव हमारे साथ थे"। पूज्य स्वामीजी बताते हैं.... "जब भी कभी परिस्थितियाँ विकट हो जातीं, वे किसी न किसी वेश में आ जाते थे, सदा हमारा ध्यान रखते थे! वह ज़िद्दी किसान

कोई संयोग मात्र नहीं था। उसने अचानक ही नहीं सोचा था कि शाम को इन साधुओं को आम खिलाना उसकी अपनी जान से भी महत्त्वपूर्ण था!...

नि:सन्देह, यह सब केवल प्रभुकृपा ही थी!

अध्याय दो

माँ गंगा का बुलावा

स्फटिकवत चमकीला, नीलिमामय, स्वच्छ-सुन्दर मां गंगा का प्रवाह जो दुनिया की पवित्रतम नदी की धारा है, ऋषिकेश से 150 मील दूर, समुद्रसतह से लगभग 13000 फीट की ऊँचाई से, हिमालय की बर्फ़ीली चोटियों से नीचे आती है, देवी गंगा!!... देवी गंगा- हिमालय के राजा हिमवान और रानी मैनादेवी की पुत्री, पार्वती की बहन, भगवान शिव की दिव्य शक्ति- कहा जाता है कि राजा सगर के एक सौ शापित पुत्रों को तारने वह धरती पर प्रवाहित हुईं थीं... राजा भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान ब्रह्मा ने उनको शिव की प्रार्थना का निर्देश दिया जो गंगाजल के प्रचंड शक्तिशाली आवेग को अपनी जटाओं में धारण करें और उनके प्रवाह को स्वर्ग से विनाश और प्रलय के लिए नहीं बल्कि इस प्रकार सौम्य और संयमित बनाकर छोड़ें कि वह पृथ्वी पर शांति और अपार कृपा प्रसाद लाएँ। इसीलिए, देवी गंगा ने अपने स्वर्गीय स्थान और स्वरूप को छोड़ कर बहती हुई

नदी का पावन रूप लिया। भगवान शिव ने उनको अपनी जटाओं में बांध कर उन्हें सात धाराओं में छोड़ा...इसमें मुख्य भागीरथी है, जो गौमुख से निकलती है, वह देवप्रयाग में अपनी बहनों अलकनंदा और मंदाकिनी से मिलती है, जो क्रमशः बद्रीनाथ और केदारनाथ से आती हैं, ये तीनों मिलकर ही गंगा कहलाती हैं और इन तीन पवित्र स्थलों से निकली पवित्रतम नदियों का संगम तीर्थ देवप्रयाग में देखने को मिलता है। पहाड़ों में मोड़ और ढलानों पर हिमालय के पवित्र वनस्पतियों के बीच से बहती गंगा, अपने पानी में खनिज से भरपूर मिट्टी लेते हुए ऋषिकेश में उतरती हैं... यहाँ इनका विस्तार थोड़ा विशाल होता है, उनका वेग कम होता है और वह पहली बार जैसे थोड़ा रुककर साँस लेती प्रतीत होती हैं, और सभी को अपने तेजस्वी और दिव्य स्वरूप का दर्शन करने का अवसर भी देती हैं!

नदी के तट, उसके पानी से मुलायम हुए, बहुत बड़े पत्थर जिसपर बैठकर लोग आराम से ध्यान लगा सकें, या फिर ऐसे पत्थर जो हाथ में आराम से आ जाएँ और फिर कोई साधक उन्हें हाथ में लेकर माँ का ध्यान कर सके... या फिर एकदम छोटे पत्थर जो श्रद्धालु गंगाजी को साथ ले जाने के लिए इकट्ठा कर के घर ले जा सके... ऐसे पत्थरों से भरपूर हैं...

कहीं दूर...किसी आश्रम या मंदिर में आरती की घंटियाँ बजती हैं, भक्तों को आवाहन करती हुई- 'ओम जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे..' की सुरवल्लियाँ हवाओं पर सवार होकर पूरे वातावरण में गूंजती हैं... नदी के प्रवाह के साथ साथ हिलोरे खाती हैं, गायों के रंभाने की आवाज़, ठेलियोंपर सब्ज़ी बेचते हुए सब्ज़ी वालों के स्वर और तटवर्ती पत्थरों को हलके हलके धोती हुई माँ गंगा की कलकल-छलछल से एकाकार होतीं हैं...

यह ऋषिकेश है- ऋषियों की तपस्थली...। इसे हृषीकेश भी कहते हैं जिसका अर्थ इंद्रियों के स्वामी... अर्थात् भगवान विष्णु हैं। इसीलिए यह ऐसी भूमि है, जहाँ लोग अपनी इंद्रियों को जीतने का प्रयास करने आते हैं, वासना को जीतने का प्रयास करते हैं... और जितेंद्रिय हो जाते हैं।

यह वही दिव्य स्थान है, जहाँ से 17 वर्षीय युवा मुनि जी और पूज्य स्वामी ब्रह्मस्वरूप जी गुज़रे.... जब बद्रीनाथ की यात्रा से वापस आते समय दिल्ली की तरफ जा रहे थे...

लगभग सभी की जिंदगी में कभी न कभी एक पल आता है, जब वह महसूस करता है, 'शायद मैं यहाँ पहले भी था...। मैंने इसे पहले देखा है, मैं इसे पहले से जानता हूँ। मेरा यहाँ आना तय था। यह जगह नयी नहीं है।' कुछ लोग इसे देजा-वू यानी पूर्वाभास कहते हैं, लेकिन केवल **'पहले से देखा हुआ'- यह तो केवल शाब्दिक अर्थ हुआ... मेरी अनुभूति तो कह रही थी... 'मैं यहीं होने के लिए इस दुनिया में आया था...'- केवल यह नहीं कि मैंने इस जगह को सपने में, आभास में, पूर्वजन्म में देखा है, बल्कि ऐसा प्रतीत हुआ कि यह ठीक वही जगह है, जहाँ होने के लिए मैं जन्मा था... यह स्थान वह ताला है, जिसकी चाबी मुझे बनाया था प्रभु ने...'** पूज्य स्वामीजी को परमार्थ निकेतन आश्रम में पहुँचकर कुछ इस प्रकार अनुभूति हुई थी...

जी हाँ... यही परमार्थ निकेतन आश्रम, जिस की स्थापना सन 194२ में श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ पूज्य स्वामी शुकदेवानंद जी महाराज ने की थी।

कई वर्षों पहले कश्मीर के स्वर्गीय पहाड़ों में भ्रमणशील साधुओं

ने श्रीनगर में शंकराचार्य मठ देखा था। जब भारत में आठवीं शताब्दी के महान संत श्री आदि शंकर दक्षिण से उत्तर तक सभी जीवों में एकता का वैदिक संदेश दे रहे थे, तो वे चार जगहों पर रुके थे और मठों कि स्थापना की थी। ये स्थान थे- शृंगेरी, द्वारका, ज्योति-र्मठ और पुरी और बाद में कांची, जहाँ वह दक्षिण में रहे थे- इन्हें अब शंकराचार्य मठ के नाम से जानते हैं और इन मठों के स्वामी को आदि शंकराचार्य का सीधा वंशज माना जाता है और इसीलिए भारतीय संस्कृति में इन्हें सर्वोच्च स्थान भी दिया जाता है।

पूज्य स्वामीजी अक्सर स्मरण करते हैं... 'जब मैंने श्रीनगर के इस मठ का दर्शन किया, तो मुझे बहुत प्रेरणा मिली। मैं शंकरा-चार्य के संदेश और उनके चरित्र से इतना प्रभावित हुआ कि मैंने तय किया... अब से मैं भी लोगों को एकजुट करने, उन्हें प्रेरित करने और उनके बीच सद्भाव बनाए रखने के लिए जीवनभर समर्पित रहूँगा।'

जितना समय वहाँ निवास किया उस दौरान उन्हों ने कई ऐसे संतों से भेंट की, जिन्हों ने उनको अपना अध्ययन पूरा करने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होंने बताया कि दिव्य ज्ञान और दूरदृष्टि के साथ ही अगर दुनिया में कोई सचमुच कुछ कर गुज़रना चाहता है, अगर वह लोगों को पवित्र और श्रेष्ठ जीवन की तरफ मोड़ना चाहता है, तो उसके पास उच्च शिक्षा भी अवश्य होनी चाहिए। उनके विचार में केवल आंतरिक ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है, 'अगर आप जंगल में रहना चाहते हैं, तो हाँ... फिर ठीक है... यह पर्याप्त है। लेकिन, तुम्हारा जन्म महान कार्यों को करने के लिए हुआ है। तुम्हारी भुजाएँ उत्तर भारत के बाहर... बहुत दूर तक फैलनेवाली हैं

। तुम जीवन के सभी क्षेत्र, संस्कृति और देश के लोगों का नेतृत्व करोगे और अपने अनूठे स्पर्श से सभी का ह्रदय जीत लोगे...। तुम देश और दुनिया के एक आध्यात्मिक नेता होगे।' वे यह सब पहले से ही देख चुके थे, 'साथ ही, तुम बहुत बुद्धिमान भी हो। तुम्हें पढ़ाई में कोई दिक्कत नहीं होगी। तुम्हें शिक्षा अवश्य प्राप्त कर लेनी चाहिए।'

कश्मीर, पंजाब और फिर उत्तराखंड के गांवों में अपने गुरु के साथ घूमते रहने पर भी ये शब्द युवा मुनि जी के कानों में गूंजते रहे। केवल इन शब्दों के जाल में वह फंसे हुए नहीं थे... दस साल पुरानी उनकी कठोर साधना ने उनको ईश्वर की योजना में पूर्ण विश्वास करना सिखाया था। वह जानते थे कि वह सही दिशा में चलेंगे और सुरक्षित भी रहेंगे।

फिर भी, जब वह परमार्थ निकेतन आश्रम में पहुँचे और संस्कृत और दर्शन की पढ़ाई में व्यस्त युवकों को पीली धोती और कुर्ते में देखा, तो उनको संतों की वाणी याद आयी। शंकराचार्य के वेदांत की गहराइयों में गोते लगाने की उनकी खुद की इच्छा थी ही, अब उन्होंने बड़ी स्पष्टता से समझा...स्पष्टता जो अब पूरी तरह से उनके आध्यात्मिक बल की ही अभिव्यक्ति थी... कि अब उनको शास्त्र के अध्ययन की दुनिया में लौट कर अपना अध्ययन पूरा कर लेना चाहिए।

इस तरह, अपने आध्यात्मिक गुरु के आशीर्वाद से- जो जानते थे कि उनकी ज़िम्मेदारी पूरी हो गयी है- मुनि जी परमार्थ निकेतन में ही रुक गए और संस्कृत महाविद्यालय में स्वयं अपना नामांकन करवाया। दिल और दिमाग की एकाग्रता के कारण उन के अध्ययन में कभी कोई भी बाधा नहीं आई... प्रलोभन, और बाहरी संपर्क एवं

कठिनाइयाँ छात्रों को अक्सर परेशान करती रहती हैं, उनके मन को विचलित करती रहती हैं... लेकिन मुनि जी ऐसी सभी बाधाओं से आसानी से दूर रहे... महाविद्यालय के अध्ययन में बड़ी सफलता से आगे बढ़े... उनके प्राप्तांक हमेशा ही सर्वोत्तम रहे और उन्हें कई तरह के पुरस्कार और पदक भी मिले। पूरे भारत के संस्कृत बोर्ड की परीक्षा में उन्हें सर्वप्रथम स्थान भी प्राप्त हुआ।

परमार्थ में प्रारम्भिक वर्ष

संस्कृत भाषा, दर्शनशास्त्र और आध्यात्मिक परंपरा का पुरातन सौंदर्य और समृद्धि को समझने और आत्मसात करने में मुनि जी के दिन बीतते थे, तो शाम को दिन भर के अध्ययन का चिंतन करते हुए गंगा के तट पर टहलते हुए बीतते... जैसे बरसों से जंगलों में घूमते हुए उनका सिर झुका रहता उसी तरह अब गंगा के तट पर टहलते हुए भी उनका सिर वैसे ही झुका रहता...। गंगा के किनारे से जाती हुयी पगडंडियों या पत्थरीली राहों पर कोई मीलों चला जा सकता, बिना किसी रोक-टोक के...कोई नहीं होता था रास्ते में... कहीं-कहीं एक स्टोव पर कोई चाय बनाता मिलता...वह “चाय चाय” करके नहीं बल्कि “जय गंगे” कहकर पुकारता व अभिवादन करता!

छुट्टियाँ पड़ते ही मुनिजी अपने गुरु के पास लौट जाते...चाहे जहाँ वे होते... कई बार तो गुरुजी किसी गाँव या शहर में किसी स्थानीय मंदिर में सत्संग कर रहे होते, तो कई बार जंगलों में भटकते होते... कहीं भी हों, गुरु-शिष्य जब भी अवसर मिलता... मिल ही जाते!

‘वैसे हमारी आत्मा कभी अलग थी ही नहीं’ पूज्य स्वामीजी

कहते हैं, 'हाँ, मैं ऋषिकेश में पढ़ाई कर रहा था और वह जंगलों या गांवों में भटक रहे होते, लेकिन हम ऐसे जुड़े थे कि सदैव साथ ही होते थे। मैं उन्हें अपने पास महसूस कर सकता था, उन्हें सुन सकता था, इतनाही नहीं... मैं उन्हें देख भी सकता था, खासकर जब मैं कोहरे की चादर में लिपटी गंगा जी को देखता या फिर उनकी लहरों में, धुंध में या फिर ढलते सूरज की किरणों में मैं उनको हमेशा देखता था...।'

योग जो रखे निरोग

मुनिजी परमार्थ में अभी आए ही थे तो उनको टायफायड हो गया। चार हफ्ते बीत गए- बुखार, ठंडे पसीने, ठंड़ी पट्‌टियाँ और बेहद हल्के और तरल आहार पर... मुनिजी के पास यह एक और सुनहरा समय था- भीतरी दुनिया में और भी गहराइयों तक झाँकने का! 'पहले प्रभु ने मुझे जंगल में भेजा, बाहरी साधना के लिए- अब इस बीमारी के बहाने प्रभु ने मुझे अंतरात्मा की दुनिया के उस शांत, नि:शब्द, निर्मल और एकान्तवास में भेजा... बाहरी दुनिया से बिलकुल अछूता विश्व था यह...'। इस दौरान, परमार्थ निकेतन के अध्यक्ष पूज्य स्वामी वासुदेवानंदजी ने मुनि जी की एक माँ की वत्सलता से देखभाल की..., बहुत प्यार से वे मुनिजी के बुखार से तपते शरीर पर पट्‌टी करते, उनके लिए ताज़े फलों के रस की व्य-वस्था करते... वह मुनिजी के बिस्तरपर उनके पास बैठकर प्रभु के अनेकानेक स्वरूप, मंत्र, श्लोक और स्तुति आदि की चर्चा करते... जैसे मुनि जी का कमरा, कमरा नहीं, मंदिर ही था...

"योग न हमारे हाथ से पैरों का मिलना है, न ही सिर को घुटनों पर टिकाना... योग तो आत्मा की दिव्यता में एकरूप हो जाना है।"

प्रभुकृपा और पूज्य स्वामी वासुदेवानंदजी के आशीर्वाद और वात्सल्य के स्पर्श से मुनिजी शीघ्र ही ठीक हो गए। फिर भी, मुनि जी को जितनी आशा थी उतनी तेज़ी से उनका स्वास्थ्य पूर्ववत नहीं हुआ... अभी भी कमज़ोरी महसूस हो रही थी। डॉक्टरों ने बार बार उन्हें दवाई की मात्रा बढ़ाने की सलाह दी। मुनिजी को बचपन से ही किसी भी तरह की दवाइयाँ पसंद न थी, आज भी, वे जब अपनी उम्र के इस पड़ाव पर हैं, आज भी वे सौम्य और सात्विक भोजन ही खा पाते हैं। सालों तक साधना की वजह से उनका शरीर किसी तरह की कृत्रिमता से अछूता रहा है। यहाँ तक कि मिर्च, मसाला, नमक और घी जैसे प्राकृतिक पदार्थों से भी वे यथासंभव दूरी बनाए रखते हैं। पूज्य स्वामीजी की 50 वीं सालगिरह पर पूज्य संत श्री रमेशभाई ओझा ने उनके स्वास्थ्य की सही व्याख्या की थी, 'पूज्य स्वामीजी निरंतर स्वस्थ रहते हैं और यदि कभी बीमार होते हैं, तो गंगाजल से ही ठीक हो जाते हैं।'

'यह मैंने जंगल में सीखा'। पूज्य स्वामीजी बताते हैं, 'आप कभी भी जानवरों को डॉक्टर, अस्पताल या दवा की दुकान में जाते हुए नहीं देखेंगे। ना ही, आप उन्हें कराहते हुए या इलाज के अभाव में दयनीय हालात में मरते देखेंगे... बल्कि वे प्रकृति और संसार से इतने एकात्म हो जाते हैं कि स्वाभाविक सहज बोध से ही बीमारी आने से पूर्व ही अपने आप को ठीक कर लेते हैं। कम खाना या उपवास करना, धूप में लेटकर आराम करना इत्यादि बड़े सरल एवं रामबाण उपाय मैंने जंगल में सीखे और आज भी मैं इन्हीं उपायों

को मानता हूँ। जब भी कुछ असंतुलित होता है, चाहे वह हल्का सा जुकाम हो या बुखार, खाने में कमी और आराम ही मेरी दवा है। '

यह उपक्रम उनके विद्यार्थी जीवन में परमार्थ निकेतन में आने से पूर्व ही पूरी तरह प्रस्थापित हो चुका था। इसीलिए, जब डॉक्टरों ने उनको दवा की मात्र बढ़ाने की राय दी, तो उन्होंने मना कर दिया। 'कोई और रास्ता अवश्य होना चाहिए...। ज़रूरत पड़ने पर दवा ठीक है। ज़रूरत पडनेपर इनको मैं मना नहीं करूँगा, लेकिन जब आप को पता चले कि दवाई जितना काम कर सकती थी उतनी कर गयी... इस दवा की पहुँच इतनी ही है। उस के बाद हमें दूसरे पर्याय खोजने चाहिए।'

उनकी बीमारी में, टाय़फाइड की दवा की निर्धारित मात्रा पूरी होने के बावजूद भी बुखार रुका नहीं तो वे जान गए कि वही दवा फिर से खाना उपायोगी नहीं हो सकता...। वे जान गए थे कि उनके युवा, दुर्बल शरीर में और अधिक मात्रा में वही दवा डालने से वह स्वस्थ नहीं होगा। 'मैं ने जंगल में एक बिल्कुल सरल योगाभ्यास की विधि विकसित की थी। वही अभ्यास मेरे योगाभ्यास की नींव थी... उसके अलावा मैं प्राणायाम और ध्यान का अभ्यास करने हेतु घंटों तक पद्मासन एवं सुखासन में भी बैठता था। इन आसनों और प्राणायाम के लाभ से मैं परिचित था और मैं जानता था कि वे वास्तव में तन-मन के संपूर्ण स्वास्थ्य की कुंजी हैं। इसीलिए डाक्टर की सभी कोशिशों के बावजूद भी जब मेरा बुखार कम नहीं हुआ तो मैं योग और प्राणायाम की ओर पूर्ण विश्वास के साथ बढ़ा।'

पूज्य स्वामी भजनानंदजी महाराज, अद्भुत योगी महापुरुष थे... परमार्थ निकेतन के संस्थापक परमपूज्य स्वामी शुकदेवानंदजी महाराज के साथ वे सन 194२ में ऋषिकेश आए थे। 80 वर्ष की

उम्र में भी वे रोज़ काफी समय तक शीर्षासन में रहते थे... जब पूरी दुनिया सोती थी, तब वे प्रात:काल ब्रह्ममुहूर्त में सिर के बल खड़े रहते थे, सिर ज़मीन पर, पैर हवा में... वह भी स्थिर...! शीर्षासन के साथ ही वे दूसरे आसन भी अगले एक घंटे तक करते और प्रात: 4.30 बजे आश्रम परिसर में अपनी सुबह की सैर के लिए निकलते थे। मुनि जी कई बार उनके साथ सैर पर जाते थे, यह उपक्रम भी उनकी बीमारी की वजह से बंद था।

"मैंने उन से योगाभ्यास में मार्गदर्शन करने के लिए प्रार्थना की ताकि मैं अपने शरीर को स्वस्थ कर सकूँ और बुखार हमेशा के लिए चला जाये और मैं पुन: पूर्ण स्वस्थ हो सकूँ"। पूज्य स्वामी वासुदेवानंदजी की देखभाल के साथ साथ ही मुनिजी की योग की कक्षाएँ भी शुरू हो गईं... उन्होंने मन लगाकर, एकाग्र होकर अभ्यास किया और जो काम दवा के रसायन नहीं कर पाए, वह योग ने कर दिखाया! मुनिजी स्वस्थ हो गए...

'उसी समय से मैं योग और प्राकृतिक चिकित्सा का पक्का समर्थक और उपासक बन गया।' पूज्य स्वामीजी कहते हैं। .... आज भी उनकी इस श्रद्धा और योग के अनुशासन में कोई फर्क नहीं आया है।

गुरु की गोद में

परमार्थ निकेतन, ऋषिकेश स्वामी शुकदेवानंद ट्रस्ट का मुख्यालय है। इस ट्रस्ट के अन्य आश्रम हरिद्वार, दिल्ली तथा उस से संब-न्धित आश्रम दूसरी जगहों पर भी विद्यमान हैं। एक दिन पूज्य स्वामी वासुदेवानंदजी हरिद्वार के परमार्थ आश्रम में अपने गुरुभाई,

स्वामी धर्मानंद जी से मिलने जानेवाले थे। मुनिजी टायफायड से मुक्त तो हुए थे लेकिन उन के प्रति पूज्य स्वामी वासुदेवानंद जी का स्नेह यथावत रहा। उन्होंने इस युवा संत को अपने साथ हरिद्वार आश्रम चलने को कहा ताकि वह भी उनके गुरुभाई का दर्शन कर सकें।

'पूज्य स्वामी धर्मानंद जी और मुझमें प्रथम भेंट में ही एक अनोखा गहरा संबंध जुड़ गया'। पूज्य स्वामी जी कहते हैं, 'मुझे अंतरतम की गहराइयों से लगता था कि वे मेरे जीवन में एक दिव्य और अलौकिक पथप्रदर्शक की अहम भूमिका निभानेवाले हैं।' उस प्रथम भेंट के बाद जब भी मौका मिलता, मुनि जी हरिद्वार जाकर उनसे मिलते और पूज्य स्वामी धर्मानंदजी जब भी ऋषिकेश आ जाते तो युवा मुनिजी घंटों उनके चरणों में बैठे रहते।

एक बार किसी समय एक साधु किसी नदी के किनारे अपनी साधना उपासना में दृढ़ और एकाग्र चित्त होकर रहते... एक दिन वे जब प्रतिदिन की भाँति नदी में स्नान करने हेतु गए तो उन्हें नदी की धारा में एक बिच्छू दीख पड़ा... डूबने से बचने के लिए वह तड़प रहा था... बिच्छू तैरनेवाला जीव नहीं है... यदि उसे नहीं बचाते तो उसका मरना तय था... यही सोचकर साधु ने उस बिच्छू को पानी से उठाया। उसे किनारे पर रखते उस से पहले ही बिच्छू ने उन्हें ड़ंक मारा। दर्द हुआ तो साधूने हाथ झटक दिया और उसी झटके के साथ वह बिच्छू पुन: पानी में गिर गया। बिच्छू के ड़ंक से थोड़े सँवर गए तो साधु ने उस बिच्छू को पुन: पानी में तड़पते हुए देखा... करुणावश, साधु ने पुन: उसे पानी से निकालकर रखना चाहा लेकिन वे ऐसा कर पाते उस से पूर्व ही बिच्छू ने उन्हें फिर से

ड़ंक मारा! यह घटना तीसरी बार भी हुई... साधु बिच्छू को बचाते रहे और बिच्छु उसे... उन बचानेवाले को ही काटता रहा...

वहीं पर घूमते किसी आदमी ने यह घटना दूर से देखी...कैसे संत हर बार प्यार से बिच्छू को पानी से निकाल रहा है और कैसे वह बिच्छू हर बार उसे ड़ंक मारकर घायल कर रहा है... उस व्यक्ति से रहा न गया... आगे जाकर वह बोला, 'मेरी धृष्टता के लिए क्षमा करें स्वामी जी, लेकिन जब यह बात इतनी स्पष्ट दिखाई दे रही है कि वह बिच्छू काटना तो छोड़ेगा नहीं... आप उसे छोड़ क्यों नहीं देते, डूबने के लिए...?'

साधु ने उत्तर दिया, 'वत्स! बिच्छू मुझे ईर्ष्या या बुरे भाव की वजह से डंक नहीं मार रहा है। यह तो उसका स्व-भाव है। जिस तरह पानी का स्वभाव भिगोना है, बिच्छू का स्वभाव है ड़ंक मारना। यह नहीं जानता कि मैं उसको डूबने से बचा रहा हूँ। यह समझना उस की दिमागी शक्ति से परे है... लेकिन जिस तरह बिच्छू का स्वभाव ड़ंख़ मारने का है, उसी तरह मेरी प्रकृति और मेरा धर्म जीव को बचाना है। वह जब अपना स्वभावधर्म नहीं बदल रहा है, तो मैं मनुष्य होकर अपना धर्म क्यों छोड़ूँ? मेरा धर्म तो सब की सहायता करना है- चाहे वह मनुष्य हो या जानवर। वर्षों की साधना से जिस गरिमामय धर्म को मैं ने इतनी मेहनत से आत्मसात किया है, उसे एक छोटे बिच्छू को मैं कैसे छीनने दूँ?'

स्वधर्म न छोड़ें : संत और बिच्छू

जीवन में ऐसे हनन करनेवाले, हमें अपमानित करनेवाले, हमारे खिलाफ षड्यंत्र रचनेवाले, हमारे लक्ष्य प्राप्ति में बाधा बननेवाले कई लोग हमें मिलते हैं। कई बार, यह भी देखने को मिलता है.... जैसे हमारा कोई सहकारी जो हमेशा हमारे काम का श्रेय लेता रहता है या हमारे बारे में झूठी निंदा हमारे मालिक या प्रबन्धक के सामने करता है.... कई बार ये काम परोक्ष नहीं होते... कभी तथाकथित मित्र, रिश्तेदार या सहकर्मचारी जो अचानक ही धोखा देता है, या जो हमारी पीठ के पीछे हमारे लिए भला-बुरा कहता रहता है। हमें कई बार आश्चर्य होता है..., 'वह मुझे इस तरह कैसे आहत कर सकता है, कैसे ठेस पहुँचा सकता है....?' बस उसके बाद हमारा हृदय क्रोध और गहरे दर्द से भर जाता है और हमारा मन बदले की भावना से भर जाता है।

धीरे-धीरे हम देख सकते हैं कि हमारे सारे कर्म, शब्द और विचार, क्रोध और दर्द से संचालित होने लगते हैं। हम बदले की भावना से इतने आतंकित होते हैं कि हमें कुछ एहसास होने से पहले ही हम अपने आप को गहरी चोट पहुँचाते हैं... क्योंकि निषेधात्मक और विनाशक भावनाएँ हमारे मन में भर जाती हैं। दूसरों ने भले हमारा अपमान किया हो, या हमें चोट पहुँचायी हो, हमारे काम को नुकसान पहुँचाया हो, हमारी किसी बड़ी उपलब्धि से हमें वंचित किया हो... लेकिन उस नुकसान से भी अधिक और उसके कई गुना नुकसान हम खुद अपने आप को पहुँचाते हैं... हम अपने दिल और दिमाग में नकारात्मक भावों का अंधेरा भर देते हैं और अपने आप को बार बार चोट दे-देकर घायल करते रहते हैं।

हमारा धर्म है, पवित्र विचार, दयालुता, सच्चाई, उदारता, दूसरों के दर्द बांटना और सब की सहायता करना...। अज्ञानवश, समझने

की कमी से (उस बिच्छू की तरह, जो साधु की दयालुता को नहीं समझ सकता) या फिर अपने कर्मों की वजह से, लोग अक्सर द्रोह, स्वार्थ या लापरवाही से काम कर सकते हैं। लेकिन हमें उनके काम या उनकी अज्ञानता की वजह से अपने धर्म के पालन के कर्तव्य से विमुख नहीं रहना चाहिए। उनके अज्ञान, बुरी आदतों और लोभ को हम पर हावी नहीं होने देना चाहिए... खुद को नीचे नहीं गिराना चाहिए। उनके हृदय के अंधकार को हमारे हृदय की अच्छाई के प्रकाश को ढँकने नहीं देना चाहिए।

कभी लोग पूछते हैं, 'लेकिन स्वामीजी, आखिर कब तक हम सहते रहें, दूसरों की आक्रामकता, ईर्ष्या और घृणा-अपमान को कब तक प्रेम से स्वीकारते रहें?' उत्तर ?- **हमेशा के लिए**। दूसरों को उनके कर्मों के आधार पर दंड देना हमारा काम नहीं है। वह तो ईश्वर का काम है कि वह उन्हें उनके कर्मानुसार फल दें। वे अपनी सज़ा पाएँगे। चिंता न करो। जो वे तुम्हारे साथ कर रहे हैं उन सभी दंड और हालात का सामना उन्हें करना पड़ेगा..., लेकिन, यह करना हमारा काम नहीं है। यह प्रभु का काम है- और, कर्म के शास्त्र और विज्ञान के अनुसार - बुरा करनेवालों को दंड मिलेगा, पर हमारे हाथों से नहीं। अगर हम खुद उनको चोट देने, अपमानित करने, उनके विरुद्ध जाकर षड्यंत्र बनाने या उन्हें किसी तरह प्रताड़ित करने में जुटे, तो हम खुद के लिए भयंकर कर्म जमा कर रहे हैं, खुद अपने लिए पापों का गड्ढा खोद रहे हैं।

यदि साधु ने बिच्छू को नदी में डूबने और मरने के लिए छोड़ दिया होता, तो उन्होंने अपना दिव्य-पथ छोड़ दिया होता। हम कह सकते हैं कि बिच्छू को तो मारना ही चाहिए था, हम कह सकते हैं कि साधु ने बिच्छू को कई बार बचाने की कोशिश की, लेकिन

बिच्छू तो साधु को डंक मारता ही रहा। हम साधु की ओर से कई सारी सफाई दे सकते हैं, लेकिन केवल बुरे व्यवहार को माफ करना ही हमारा लक्ष्य नहीं है, न ही केवल कर्तव्य का पालन न होने की दलीलें करना हमारा लक्ष्य है... हमारा लक्ष्य तो हमारी आत्मा की दिव्य क्षमताओं को पूर्णत: जीना है, दिव्यता के पथपर चलना है।

इसीलिए, सदैव याद रहे कि हमारा धर्म पवित्रता, दयालुता, शांति, निःस्वार्थता, विश्वबन्धुता और सद्भाव से भरा जीवन है। हमें इस रास्ते से हटाने का अधिकार किसी को नहीं देना है... किसी भी व्यक्ति या उसके विषैले कर्म को हमारे दिव्य जीवन के लक्ष्य प्राप्ति में बाधा बनने का अधिकार नहीं देना है...

तीसरा अध्याय

तेजोदय

संन्यास

इस संसार के लोभ, प्रलोभन, उम्मीदें, राग, ममता आदि का निष्ठा एवं प्रतिज्ञापूर्वक स्वेच्छा से किया हुआ त्याग सच्चा संन्यास कहलाता है... संन्यस्त जीवन हर क्षण, हर साँस को ईश्वर और मानवता की सेवा में लगाने की एक प्रामाणिक घोषणा है, एक वचन है जिसे आजीवन निभानेका दायित्व है - "इदं न मम..." मेरे लिए नहीं, प्रभो! तुम्हारे लिए...मेरे पास कुछ नहीं, मैं कुछ नही जानता, मैं कुछ नहीं करता हूँ, मुझे जो भी प्राप्त होता है, जो भी मेरे द्‌वारा सम्पन्न होता है... वह सब तुम्हारा है... तुम्हारे लिए है।

वैसे तो मुनिजी का गंतव्य तो उसी क्षण तय हो गया था, जब पूज्य स्वामी ब्रह्मस्वरूपजी ने उनको भ्रू-मध्य पर छुआ था (या फिर जब उनकी आत्मा ने माताजी की कोख को जन्म के लिए चुन

लिया था), लेकिन उनके संन्यास की अधिकृत घोषणा सन्यास-दीक्षा की वैदिक विधि से हुई।

महाशिवरात्रि के दिन, पूरी दुनिया के हिंदू-बान्धव उपवास करते हैं और पूरी रात जागकर उस दिव्य आत्मतत्व की उपासना में लगाते हैं... दिव्यता जो जीर्ण-शीर्ण और अपवित्र को नष्ट कर देती है, और नव-निर्माण के लिए भूमि तैयार करती है। इस दिन सूखे मौसम के बावजूद आकाश गंगा जरूर वर्षा करती है। सन 1975 के इसी महाशिवरात्रि के दिन में संत नारायण मुनि ने संन्यास के वस्त्र धारण किए, वह वस्त्र और उसका रंग जो उगते और डूबते सूरज के तेज से मिलता है, जो अग्नि की ज्वाला से मिलता जुलता है। पूज्य स्वामीजी कहते हैं,

'सूरज सदा देता ही रहता है, बिना किसी सन्देह के, बिना किसी भेदभाव के, बिना किसी रोक के और बिना किसी अवकाश के... सूरज कभी नहीं कहता है, 'मैं बहुत थक गया हूँ, आज आररम करने का विचार है। सोचता हूँ आज छुट्टी ले लूँ...' ना ही वह कहता है- 'तुमने मेरी किरणों के प्रकाश का बिल नहीं चुकाया, इसलिए आज तुम्हारे घर पर नहीं आऊँगा... न ही वह हिंदू, मुस्लिम, ईसाई या यहूदी या भारतीय, अमरीकी या अफ्रीकी के घरों में से किसी एक को चुन कर उस पर अधिक रोशनी लुटाता है! वह सबके लिए बराबर रहता है, कभी बिल नहीं भेजता, कभी छुट्टी भी नहीं लेता। जब हम कहते हैं कि सूरज अस्त हो गया, तब भी वह कहीं और उदित हो रहा होता है। यह तो उसकी कृपा है कि वह आधे दिन का अंधेरा हमें देता है जिस से हम आराम कर सकें। लेकिन वह स्वयं हमेशा व्यस्त है... कभी हमारी दुनिया में तो कभी दुनिया के दूसरे हिस्से में...। संन्यास का यही तात्पर्य है। देना, देना, देना और केवल

देना- कभी किसी से उम्मीद न रखते हुए... देते रहना - बेझिझक, बिना अवकाश और बिना भेदभाव के...

केसरिया रंग अग्नि शिखाओं का भी प्रतीक है, पारंपरिक संन्यास विधि में संन्यास दीक्षा लेने से पूर्व व्यक्ति अपना अंतिम संस्कार भी कर देता है। सभी चीजें जो किसी को भूत से जोड़ती हैं, बांधती हैं, वे इस अंतिम संस्कार समारोह में जला दी जाती हैं। अग्नि की उन पवित्र ज्वालाओं में संन्यासी उसकी सांसारिक पहचान, मोह, लोभ आदि अतीत से जोडनेवाला हर धागा जला देता है और उस अग्नि कि ज्योति से एक नया अस्तित्व उदित होता है। इसीलिए, जब संन्यासी हर दिन जब केसरिया वस्त्र पहनता है, तो वह रंग उसे स्मरण देता है कि पुराना सब उस पवित्र अग्नि में भस्म हो गया है। वर्ष 1975 में महाशिवरात्रि के पावन दिन, पूज्य स्वामी धर्मानंदजी महाराज ने संत नारायण मुनिजी के संन्यास की विधि विधान और विशेष समारोह का आयोजन किया। मुनिजी बिल्कुल नवजात बालक की तरह... वस्त्रहीन होकर माँ गंगा की कल-कल निनादनी धारा से निकले, तो उनके गुरु ने उनके पतले युवा शरीर पर केसरिया वस्त्र डाल दिए और उनको नया नाम दिया **"स्वामी चिदानंद सरस्वती"** ।

'पर, आपके नाम का अभिप्राय या आशय क्या है?' बहुत सारे लोग पूछते हैं... सरस्वती ज्ञान, अध्ययन और विद्वत्ता की दिव्य देवी हैं, जो संगीत और कलाओं की भी अधिष्ठात्री हैं। भक्तजन उनसे परीक्षा में अच्छे नंबर से लेकर दिव्य ज्ञान और चेतना तक के लिए कोई भी प्रार्थना कर सकते हैं। प्राचीन संगीत और कला के ज्ञान एवं अभ्यास हेतु भी जिज्ञासु और साधक सरस्वती की आराधना करते हैं। माँ महालक्ष्मी को धन की देवी माना जाता है,

लेकिन जो धन माँ सरस्वती विद्या के रूप में देती है वह कहीं अधिक मूल्यवान है। किसी के पास ज्ञान के बिना धन हो, तो वह कंगाल माना जाता है। जिसके पास व्यावसायिक या वित्तीय सफलता है, लेकिन इसके स्थान, मूल्य और इसकी श्रेणी को नहीं समझता, तो वह ऐसी समृद्धि से सही लाभ भी नहीं उठा पाएगा। इसीलिए, सच्चा ज्ञान, सच्ची विद्वत्ता ही सबसे बड़ा धन और कृपा है। माँ सरस्वती इसी का आशीर्वाद देती हैं।

सरस्वती परंपरा को शंकराचार्य से भी जोड़ा जाता है। यह परम्परा विवेक और ज्ञान की वह लौ है, जो अज्ञान और एकाकीपन के अंधेरों को नष्ट कर देती है... यह भारत की प्रमुख दशनामी आध्यात्मिक परंपरा में से एक हैं।

चिदानंद का शाब्दिक अर्थ है- प्रज्ञा का आनंद। चिद का तात्पर्य उच्च शिक्षा या किसी खास विषय में प्रावीण्य ही नहीं है। यह तो सच्चा, दिव्य और सर्व व्यापक ज्ञान है। इस ज्ञान से ही सच्चा-झूठा, सत्य और माया का अंतर जाना जाता है। यह वह प्रज्ञा ही है, जिससे कोई प्रत्यक्ष अनुभव करता है- कि वह केवल शरीर नहीं बल्कि वह सनातन जीवात्मा है जो शरीर में केवल बस रहा है। “चिद” उस प्रज्ञा का प्रकाश है, जिससे उस दिव्यात्मा को वह भीतर और बाहर भी देख सकता है।

“...यदि हम शांति दूत बनना चाहते हैं, तो हमें प्रेम की गंगा बनना होगा, सभी तरह के विवादों की ज्वालाओं को हमारी निर्मल शांति और अनुकंपा के जल से शांत करना होगा...”

महाशिवरात्रि

भारत में शिवरात्रि वर्ष की सबसे पवित्र रात्रि है। यह रात भगवान शिव की उपासना और आराधना में समर्पित होती है। शिवरात्रि के समय विशेष शिवार्चन और अभिषेक सम्पन्न करके इस समारोह को मनाते हैं...पूरी रात में ध्यान, कीर्तन और जप कर भक्तगण जागते रहते हैं।

शिवरात्रि का शाब्दिक अर्थ होता है- शिव की रात्रि। यह फाल्गुन मास (फरवरी-मार्च) के कृष्णपक्ष की 13 वीं या 14 वीं तिथि को पड़ती है।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश की त्रिमूर्ति में, भगवान शिव वह देवता हैं, जो सभी जीर्ण-शीर्ण और अमंगल को नष्ट कर देते हैं, जिससे पवित्र और दिव्य सृजन का मार्ग प्रशस्त हो... भगवान शिव हमारे अहंकार, मोह और अज्ञान को जड़ से नष्ट कर देते हैं। कई लोग उनकी संहारक शक्ति से डरते हैं....लेकिन वह संहार भी अनिष्टता का होता है... और नवनिर्माण के लिए ही होता है। मृत्यु के बिना जीवन कहाँ से शुरू होगा! पुरानी बुरी आदतों, मोह और अहंकार जब तक समूल नष्ट नहीं होते तब तक प्रभु को पाने, उनके दिव्य गुणों को अपनाने तथा ऐसे दैवी गुणों को आत्मसात करते हुए जीना संभव नहीं है। शिवरात्रि को, जब हम भगवान शिव की पूजा करते हैं, हम सभी प्रार्थना करें कि जो कुछ पुराना हमें रोक रहा है, जकड़े हुए है वह खत्म हो जाए, हम दिव्यता के पथ पर आगे बढ़ें....

भगवान शिव अपने ललाट पर भस्म लगाए हुए दीखते हैं और शिव जी के भक्त भी अपने शरीर के विभिन्न अंगों में भस्म रमाते

हैं। यह दो बातों का प्रतीक है - आज जो भी दुनिया में दीख पड़ता है, वह उससे पहले राख था और अंत में भी राख हो जाएगा, राख़ ही में मिल जाएगा। तो यह राख हम सभी को याद दिलाती है कि आज हमारे पास जो भी है, जो भी कमाया है वह सब राख़ हो जाना है...इसलिए हमें अपना जीवन प्रभु के चरणों में समर्पित कर देना है...सारे संसार दौलत और सुख सुविधाओं के पीछे भागने की जगह ईश्वर और उसकी बनाई सृष्टि की...मानवता की सेवा में अपने जीवन की ऊर्जा लगा देनी चाहिए...। दूसरी बात यह है कि जब हम पवित्र भस्म लगाते या देखते हैं, हमें स्मरण होता है, 'सच... प्रभु कृपा से ही आज मैं जीवित हूँ और अभी राख में नहीं बदला हूँ। यह उन्हीं की ही कृपा है कि मेरा घर, परिवार और मेरी संपत्ति मेरे साथ है और वे राख नहीं बने हैं.... यह सुख ऐसे ही बना रहने के लिए मुझे उनको याद करना चाहिए, उनसे प्रार्थना करनी चाहिए और उनके चरणों में ही समर्पित हो जाना चाहिए।'

भगवान शिव की कहानियाँ और संदेश अनगिनत हैं। इसमें से एक कहानी सबसे अद्‌भुत है जिसमें विश्व-कल्याण के लिए उन्होंने समुद्र-मंथन से निकले विष को पी लिया था।

कहानी के अनुसार, देव और दानवों ने मिलकर एक बार अमृ-तप्राप्ति के लिए समुद्र का मंथन किया। काफी समय के मंथन के बाद उससे अमृत तो दूर...पहले विष यानी हलाहल निकला। ऐसे कई बार जीवन में भी होता है। जब हम कोई दिव्य उपक्रम हाथ में लेते हैं या कोई परोपकारी योजना बनाते हैं, तो हमारे प्रयासों के अच्छे परिणाम तो दूर... कई बार हमें निंदा झेलनी पड़ती है, कई बार असफलता मिलती है, अपार बाधाओं का सामना करना पड़ता है...

देव और दानव जानते थे कि मंथन जारी रखने के लिए और दिव्य अमृत पाने के लिए वे हलाहल को ऐसे ही फेंक नहीं सकते थे। किसी न किसी को तो इस ज़हर को पीना ही होगा, लेकिन कोई उसे पीना नहीं चाहता था। हरेक के पास विष न पीने का कोई न कोई बहाना था। अंततः भगवान शिव आगे आए। उन्होंने कहा, 'मैं विष पिऊँगा, यदि इससे परिवार में शांति रहे और आप अमृत को पा सकें तो मैं यह काम अवश्य करूँगा।'

जीवन में और परिवारों में, हम अमृत की प्रतीक्षा करते रहते हैं, लेकिन ऐसे प्रतीत होता है कि अमृत नहीं... विष ही विष मिल रहा है... जब हम किसी अच्छे कामों में लगे हों, तब अक्सर अमृत से पहले हलाहल ही सामने आ जाता है.... यदि देवताओं-दानवों ने मंथन को विष से डरकर रोक दिया होता, तो कभी भी अमृत नहीं मिलता। हमें अमृत के मिलने में श्रद्धा व आस्था रखनी चाहिए.... हमें मंथन के लिए हमेशा प्रस्तुत रहना चाहिए, चाहे विष मिले या अमृत।

शिवरात्रि में जब हम भगवान शिव की आराधना करते हैं, तो हमें उनके इस संदेश को हृदय से स्वीकार लेना चाहिए और इसे जीवन में यथाशक्ति उतारने का प्रामाणिक प्रयास करते रहना चाहिए... हम केवल पूजा नहीं करें, बल्कि उनसे प्रेरणा भी लें। जो भी परिवार के लिए, समाज के लिए और मानवता के लिए समय आनेपर विष प्राशन का साहस भी रखता है, वही महादेव है!

मंथन को जारी रखने के लिए विष को भगवान शिव ने उसे अपने कंठ में रख लिया। इसीलिए उनका एक नाम नीलकंठ भी है। फिर, वह वापिस हिमालय की पर्वत श्रेणियों में चले गए और ध्यान में विलीन हो गए।

आपको कई बार हिमालय पर जाने की जरूरत नहीं है। जहाँ भी आप हैं, वहीं अपना हिमालय खुद बनाइए। पहले, तो विष को स्वी-कारनेवाले बन जाइए...। वह बनिए जो त्याग, क्षमा और विनम्रता से परिस्थितियों को स्वीकारे। उसके बाद शांतिपूर्वक ध्यान कीजिए। यह कायरता नहीं, दिव्य शक्ति और अपार बल है।

शिवरात्रि को जब हम देवासुरों के समुद्र-मंथन को याद करते हैं, हमें एक और पाठ भी आत्मसात करना चाहिए। अमृत मिलने के बाद असुरों ने उसे अकेले ही रखना चाहा। यदि वे सफल होते, तो अधिक ताकतवर होते और देवताओं को खत्म कर देते। शृंखलाबद्ध दैवी व्यवधानों की सहायता से ही देव अमर हुए, विजेता हुए।

हमारे भीतर की देवासुरों की लड़ाई में देवों को विजयी बनाने के लिए भी शिवरात्रि विशेष है- अच्छे और बुरे, सही और ग़लत, विष और अमृत, मृत्यु और अमरत्व के बीच की जंग को जीतने के लिए परम कल्याणकारी है। हमें अपनी पूजा, प्रार्थना, ध्यान के माध्यम से अपने अंदर की अच्छाई से बुराई पर, अमृत से विष पर मात देनी चाहिए, ताकि हम भी मृत्यु से अमरत्व की ओर और अँधेरों से उजालों की ओर अग्रसर हो सकें...।

कुंभ मेला

कुंभ मेला भारत का ऐसा पर्व है जिस उत्सव में विश्वभर के तीर्थयात्रियों की सबसे प्रचंड भीड़ इकट्ठा होती है। लाखों-करोड़ों साधक, भक्त, जिज्ञासु एवं पर्यटक इस पवित्र उत्सव में पहुँच जाते हैं- प्रेरणा और मुक्ति की खोज में। प्रयागराज की भूमि को चारों कुंभस्थलों में पवित्रतम माना जाता है, क्योंकि यहीं गंगा और यमुना

का अदृश्य सरस्वती से संगम होता है। इस पवित्र त्रिवेणी संगम पर स्नान कर के लाखों लोग अपने शरीर के स्नान के साथ साथ, अपने पाप, अपनी चिंताएँ और अपनी दुविधाओं को पवित्र त्रिवेणी में बहा देना चाहते हैं। साल के अधिकतर समय में कुंभ मेला क्षेत्र पानी से ढँका होता है। वहाँ कुछ भी स्थायी नहीं होता है। केवल सर्दियों के मौसम में जब जमीन सूख जाती है, तो मेले के लिए शिविर लगते हैं। यह सचमुच असीम आस्था व श्रद्धा का अद्वितीय चमत्कार है कि कुछ ही हफ्तों के समय में बिजली और पानी से युक्त विस्तृत शिविर तैयार हो जाते हैं। यहाँ की बिलकुल बंजर लगनेवाली धरती का एक एक इंच किसी न किसी काम में लग जाता है! यहाँ का घोर सन्नाटा आध्यात्मिक प्रवचनों एवं सत्संगादि दिव्य कार्यक्रमों की आवाज़ों में गुंजरित होने के साथ साथ देखते देखते पिघल जाता है...सारा वातावरण, स्वर्गीय ऊर्जा से भर जाता है...

एक संन्यासी के रूप में वर्ष 1977 में पूज्य स्वामीजी का पहला कुंभ मेला था। वे और स्वामी शाश्वतानंदजी साथ में रात भर की ट्रेन से चलकर हरिद्वार से प्रयागराज पहुँचे ताकि उस ठंडी, सूखी, रेतीली ज़मीन पर एक शानदार डेरा बना सकें... जहाँ मच्छरों के अलावा कुछ नहीं था, वहाँ बिजली और बहते पानी की आपूर्ति करना, रेगिस्तान-सी सूखी भूमि पर हज़ारों लोगों के लिए रहने की व्यवस्था करना, ताकि वे तेज़ हवा और जमा देनेवाली ठंड से बच सकें... ये पहाड़-सा चुनौती भरा कार्य इन दोनों साधुओं ने अपने हाथ लिया था।

आश्रमों में परमार्थ निकेतन और दैवी संपद मण्डल पहले से ही जाने-माने, सम्मानित और प्रस्थापित नाम थे, पूज्य स्वामीजी की दिव्य दृष्टि और ऊर्जा से युक्त परमार्थ कैंप (भारत साधु

समाज का कैंप भी साथ में ही बना) जल्द ही मेले के दौरान दिव्य गतिविधियों का प्रमुख केंद्र बन गया। सुबह की प्रार्थना, सत्संग, योग, ध्यान और प्राणायाम की कक्षाएँ और दिव्य भजन-संध्याओं की वजह से माघ पूर्णिमा से लेकर महाशिवरात्रि तक... जनवरी की कोहरे से भरी शीत लहर से लेकर फरवरी में गला देनेवाली ठंड को बसंती सूर्यप्रकाश में बदलने तक... शिविर दर्शनार्थियों और तीर्थयात्रियों से पूरे समय खचाखच भरा रहता था।

...साबुन का विज्ञापन कहता है, 'एक के साथ एक मुफ्त में पाओ।' भगवान कहते हैं, 'मुझे खरीदो और मुक्त हो जाओ....'

शिविर को इतनी अभूतपूर्व प्रसिद्धि और प्रशंसा मिली कि जब प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी कुंभ के दर्शनार्थ आयीं, तो उन्हों ने परमार्थ के शिविर की ही भेंट की!... एक अस्थायी मंच इतनी शीघ्रता से खड़ा हुआ... बिना कोई मशीन, न बहता पानी, ना ही कोई पेशेवर मदद से... और इस मंच से प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी जी ने संत समाज का अभिवादन किया तथा तीर्थ यात्रियों को संबोधित किया। इंदिरा गाँधी जी ने कुंभ मेला, परमार्थ का शिविर और आध्यात्मिक और मानवता को समर्पित धर्मार्थ गतिविधियों से स्पष्ट दीखनेवाले परमार्थ निकेतन आश्रम के योगदान को भावविभोर होकर सराहा...

भारत दर्शन

वर्ष 1979 में पूज्य स्वामीजी ने परमार्थ निकेतन के पूज्य संतों के नेतृत्व में एक भव्य रेल यात्रा (तीर्थयात्रा) का अद्भुत आयोजन किया। संतों के साथ परमार्थ निकेतन के लगभग 600 भक्तों ने पूरी ट्रेन को ही किराए पर ले लिया और पूरे देश में उत्तर से दक्षिण

और पश्चिम से पूर्व तक भ्रमण किया। इस यात्रा का मुख्य आशय- 'भारत दर्शन', था। तीर्थयात्रियों को पूरे भारत में स्थित अनेक आध्यात्मिक केंद्रों का दर्शन करने हेतु इस बृहद यात्रा का आयोजन किया गया था। इसके साथ ही, सभी महापुरुष एवं पूज्य स्वामीजी इस रेल यात्रा से परमार्थ के संदेश और प्रेरणा को समाज के सभी स्तर, आयु और जाति के लोगों तक ले जाना चाहते थे। जैसे, आदि शंकराचार्य ने दक्षिण से उत्तर तक का भ्रमण कर एकात्मता का संदेश दिया था, पूज्य स्वामीजी एवं पूज्य स्वामी शाश्वतानन्द जी ने भी उत्तर से दक्षिण की यात्रा की संकल्पना की थी, साथ में सैकड़ों लोगों को भी लिया था, जो न केवल मंदिरों और पवित्र स्थलों की खोज या दर्शन कराने, बल्कि विभिन्न भाषाओं, जनपद और जातियों की विभिन्नताओं के बावजूद सभी लोगों में अंतर्निहित एकता के दर्शन कराने...।

जिस तरह महात्मा गाँधी ने गाँव के लोगों, गरीबों और आदिवासियों की प्रतिष्ठा और अहमियत पर ज़ोर दिया था, पूज्य स्वामीजी ने भी पूज्य संतों के सानिध्य में यात्रा को छोटे गाँवों, कस्बों और बंजर आदिवासी इलाकों को प्राथमिकता दी, जगह जगह रुक-रुक कर स्थानीय लोगों को दिव्यता का स्पर्श कराया। सभी यात्री रात में ट्रेन में सोते और सुबह प्लेटफॉर्म पर उतरकर जल्दी से स्नान करते। प्रत्येक स्टेशन पर स्नान के लिए एक प्लेटफॉर्म था... पुरुष हैंडपंप से बाल्टियों में पानी भरते और खुले में नहाते। स्त्रियाँ अपनी साड़ियाँ जोड़कर एक घेरा-सा बना लेतीं और उसके बीच में एक एक कर के नहातीं, अन्य सभी उनके लिए परदा करतीं, उनकी ढाल बन जाती। फिर नहाने के बाद, प्लेटफॉर्म पर ही सुबह की प्रार्थना के लिए सभी इकट्ठा होते।

स्टेशन में सुबह की भीड़ और कोलाहल में भी संत, यात्री, स्थानीय भक्त और हर कोई उस समय स्टेशन पर होता... साथ बैठकर प्रार्थना में जुड़ जाता। सामूहिक प्रार्थना का नेतृत्व पूज्य स्वामीजी अपनी स्वर्गीय मधुर आवाज़ से करते... अपने मधुर स्वरों के साथ.... उस धूल-से भरे, डीजल इंजिन धुएँ से घुटन भरे प्लेट-फॉर्म बैठे हुए सभी श्रद्धालुओं को... हिमालय से सैंकड़ों मील दूर... साक्षात माँ गंगा के शीतल तट पर अनायास ही ले जाते!

दिन में स्थानीय मंदिरों, सभागारों में सत्संग होते रहते... और- समय के अभाव में जब शहर में नहीं जा पाते- तो सभी यात्री मिलकर स्थानिक स्टेशनों के प्लेटफॉर्म को ही झाड-पोंछकर साफ सुथरा कर लेते और फिर वहीं पर सत्संग होते।

बैठकर या खड़े होकर सभी 575 यात्री और उनके परिवार के सदस्य हाथ में स्टील की थाली लिए आश्रम के रसोइया द्वारा तैयार किया भोजन ग्रहण करते। परमार्थ निकेतन का अर्थ, 'सबके कल्याण के लिए बना निवास स्थान' है और यही संदेश और उद्देश्य ही सभी संतों द्वारा बखूबी निभाया जाता था। स्टेशन पर भंडारा लगता तो, यात्री प्रसाद पाते थे और, जो सत्संग सुनने आते थे या संतों के दर्शन को आते थे उन सब को भी खिलाते थे । सहयात्रियों के साथ ही यदि कोई अपने मित्र और परिवारजन से मिलने आता था, तो उसे भी खिलाया जाता था.... या जो कोई भी भूखा हो... भोजन सबको मिलता। पूज्य स्वामीजी याद करते हैं, 'सबको खिलाने के बाद कई बार जब हम खाने बैठते थे तो कुछ भी नहीं बचा होता था, या सब कुछ ठंडा होता था, लेकिन खिलाने का जो आनंद था, जो देने में, बाटने में आनंद का अनुभव होता था

वह अद्‌भुत होता है...। हम न केवल उनके शरीर को, बल्कि उनकी अंतरात्मा को भी खिलाते थे। वह जुड़ाव का अनुभव दिव्य था।'

पूज्य स्वामीजी समझ चुके थे कि यह 575 लोगों की भीड़ के लिए एक बोगी में जमा होकर शाम में प्रवचन सुन पाना असंभव है... इसलिए, उन्होंने पब्लिक एड्रेस सिस्टम की पूरी व्यवस्था की थी ताकि इस खास व्यवस्था से संतों की आवाज़ पूरी ट्रेन में प्रसारित की जा सके...। इस तरह हर व्यक्ति अपनी सीट पर आराम से बैठे-बैठे ही उस दिव्य संदेश को सुन सकता था।

यात्रा में सब कुछ बहुत खूबसूरती से पार हो गया। फिर भी इसमें कुछ वैसे न टाली जा सकनेवाली बाधाएं भी थीं, जो यात्रा और छुट्टियों का अंतर स्पष्ट करती हैं...

एक बार, एक शाम एक छोटा समूह, यात्रा में घूमने निकला था, लेकिन उसे वापस स्टेशन लौटने में देर हो गई। पूज्य स्वामीजी उनको वापस लाने के लिए शहर गए, क्योंकि उन दिनों तत्काल संपर्क के लिए मोबाइल या पेजर जैसी चीजें तो थीं ही नहीं। स्वामीजी जी जब समूह को लेकर वापस लौटे तो पूज्य स्वामी धर्मानंदजी को लगा कि पूज्य स्वामी जी ही इस समूह को लेकर गए थे और ऐसे में इस ग़लती के लिए पूज्य स्वामी चिदानंद जी ही ज़िम्मेदार थे, वही उस समूह का नेतृत्व कर रहे थे... उन्होंने पूज्य स्वामीजी को अच्छी खासी डाँट लगायी। पूज्य स्वामीजी उस घटना को याद करते हैं, **'मेरी तो जैसे साँसें रुक गयीं... यह मेरे पूज्य गुरु थे, जिनकी सेवा में मैं हर क्षण जी रहा था, जिनके लिए मेरे जीवन का एक एक पल समर्पित था और वे ही मुझे ग़लत समझ रहे थे? फिर भी मैंने उनको पलटकर जवाब नहीं दिया। उन्हों ने जो भी कहा या किया उन सब अनुभवों को मैं ने प्रभु**

की योजना का एक हिस्सा माना और इसे स्वीकार कर लिया। यह एक भूल नहीं थी, ग़लतफहमी ही थी... पर प्रभु की इच्छा मानकर मैं ने इसे धैर्यपूर्वक स्वीकार कर लिया। मैं जानता था... इस बार मैं गैरज़िम्मेदार या किसी भी तरह से ग़लत नहीं था, लेकिन क्या पता... शायद भूतकाल में कुछ ग़लती हो गयी हो...। इसीलिए, मैंने इस बार इस प्रसंग में अपनी भूल नहीं समझा, बल्कि इस डाँट को पूर्व के किसी प्रमाद का प्रसाद माना!

जब गुरुजी ने डाँट खत्म कर दी, तो मैंने उनके पैर छुए और चुपचाप अपने रेल डिब्बे के कूपे (सीट) में लौट गया। अपने बिस्तर पर लेटकर आँखें मूँद लीं और मंद स्वर में अपने मंत्र का जप करने लगा"।

जब रात्रि-भोजन का समय आया, पूज्य स्वामीजी ने भोजन के लिए मना कर दिया।

''मुझे लगा कि प्रायश्चित और जो भी भूल हुई है, उसके निरा_ करण के लिए उपवास करना चाहिए।" स्वामी जी कहते हैं...

कुछ देर के बाद एक सेवक ने कूपे के दरवाजे पर दस्तक दी। 'जब तक आप नहीं करते महाराज जी भी भोजन नहीं करेंगे।' लड़के ने कहा। पूज्य स्वामीजी उस लड़के के पीछे चलकर गुरु जी के कुपे सीट तक पहुँचे...

"जीवन तो यात्रा है, मंजिल नहीं... स्वर्ग यहीं है... बाद में इसके आने की प्रतीक्षा न करो...मोक्ष भी यहीं है... उसे जियो .... मृत्यु की प्रतीक्षा न करो।"

'महाराज जी, कृपया भोजन कर लें। मैं ठीक हूँ। मैं अपनी ग़लती के लिए उपवास कर रहा हूँ... ' पूज्य स्वामीजी ने बड़ी मृदुता से अनुनय किया।

उस डाँट फटकार और रात्रि भोजन के समय के बीच किसी दूसरे व्यक्ति ने उनके गुरु को जानकारी दी थी कि वास्तव में देरी क्यों हुई थी... उन्होंने महसूस किया कि अपने प्रियतम और नज़दीकी शिष्य के साथ उन्होंने अन्याय कर दिया है।

'यदि तुम अपनी ग़लती के लिए उपवास करोगे, तो मैं अपनी ग़लती के लिए....।'- पूज्य स्वामी धर्मानंदजी ने कहा। पूज्य स्वामीजी समझ गए कि उनके खाने तक गुरु जी भी नहीं खाएँगे, तो उन्होंने सेवक को दोनों के लिए खाना लगाने को कहा।

पूज्य स्वामी धर्मानंद जी की सेवा में बिताए 36 वर्षों में बस यही एक समय था जब पूज्य स्वामीजी ने उनसे डाँट खायी।

"केवल अपने मंदिर में दिया न जलाओ, अपने हृदय में भी एक दिया अवश्य जलाए रखो...."

अध्याय चार

हिंदू-जैन मंदिर की खोज

कनाडा, अमरीका और अन्य देशों का भ्रमण

वर्षों के अनुभव से यह स्पष्ट हो चला था कि पूज्य स्वामीजी की दूरदर्शिता, योग्यता और समर्पण अतुल्य हैं। यद्यपि पूज्य स्वामी सदानंदजी महाराज परमार्थ के आधिकृत प्रमुख थे, वे अनेक निर्णयों, नीतियों और कार्यक्रमों के लिए पूज्य स्वामी जी पर ही निर्भर रहते थे। इसीलिए, यह आश्च-र्यजनक नहीं था कि उन्होंने विदेश यात्रा के लिए अपने साथ हेतु पूज्य स्वामीजी को ही चुना...यात्रा सितंबर 1980 में शुरू होकर कनाडा (ओटावा) से होते हुए अमरीका, इंग्लैंड आदि देशों तक चलनेवाली थी।

अमरीका में संतों ने जिस जगह प्रथम भेंट की वह लॉस एंजेलिस में मैलिबु शहर था। यह समुद्र के किनारे बसा हुआ कै-लिफोर्निया के रईसों और हॉलीवुड सितारों का आलीशान ठिकाना

है। उनका उद्देश्य भ्रमण या छुट्टी मनाना कदापि नहीं था। उन्हें उस इलाके में रह रहे एक प्रमुख भारतीय मूल के डॉक्टर अमरजीत सिंह मारवाह ने बुलाया था। एक सफल डॉक्टर होने के साथ साथ डाक्टर अत्यंत विनम्र और भक्तिभाव से भरे पुण्यात्मा भी थे। डॉक्टर मारवाह भारत के प्रबुद्ध संतों द्वारा खुद को, परिवार को और वहाँ बसे सिख/पंजाबी समुदाय लिए आशीर्वाद लेना चाहते थे। पूज्य स्वामीजी हॉलीवुड के अपने दौरे को याद करते हैं,

'मुझे याद है, जब मैं अमरीका पहली बार 40 साल पहले गया था और मैलिबू, कैलिफोर्निया में ठहरा था... एक दिन, वहाँ रहते भारतीयों में से एक ने पूछा, 'स्वामीजी, क्या मैं आपको हॉलीवुड दिखाने ले जा सकता हूँ? 'मुझे हॉलीवुड के बारे में कुछ पता नहीं था, मैंने कभी इसके बारे में कुछ नहीं सुना था। यह बॉलीवुड का अमरीकी संस्करण होनेकी संभावना पर मैंने उस समय ध्यान नहीं दिया। मैंने सोचा कि यह कोई जंगली इलाका (वुड) होगा। हम अक्सर हिमालय के होली वुड्स (पवित्र वृक्षों के जंगल) की बात करते थे और मैंने सोचा क यह भी कुछ ऐसा ही होगा... इसीलिए, मैंने 'हाँ' कर दी और अगले दिन हम यूनिवर्सल स्टूडियो और हॉलीवुड देखने गए। कहने की ज़रूरत नहीं कि यह जंगल ही था, लेकिन बिल्कुल ही अलग तरह का, मेरी कल्पना से कोसों दूर...। खैर, वापसी में कुछ विलक्षण हुआ। हम लोग फ्री वे पर एक रॉ_ ल्स-रॉयस कार में आ रहे थे... अचानक ही हमारी बातचीत के बीच में ही जो भक्त गाड़ी चला रहे थे उन्होंने बहुत उत्तेजना से मुझसे पूछा, 'स्वामीजी, आप वह कार देख रहे हैं'- कहते हुए उन्होंने फ्री वे, (हाई वे) में हमारी बगल में चल रही एक कार की तरफ इशारा

किया। चूँकि हम एक आध्यात्मिक विषय पर गंभीर चिंतन में थे, उन्होंने आगे कुछ नहीं कहा। जैसे ही उनको लगा कि मैं ने वह कार देख ली है, उन्होंने वार्ता को फिर से आध्यात्मिक विषय की ओर वहीं मोड़ दिया। बाद में, जैसे ही हम मैलिबू पहुँचे और वे डॉक्टर मारवाह के घर मुझे छोड़कर जाने लगे, तो उन्होंने कहा- 'स्वामीजी, मुझे आपका आशीर्वाद चाहिए... क्या आपको वह कार याद है, जो मैंने आपको रास्ते में दिखाई थी? मेरी इच्छा हाई कि रॉल्स-रॉयस कार का वही मॉडल मुझे भी चाहिए। कृपया मुझे आशीर्वाद दीजिए कि वह मुझे मिल जाए...' मैं हैरान था... यहाँ हम एक रॉल्स-रॉयस में बैठे हुए हैं और यह आदमी एक और रॉल्स-रॉयस कार के सपने देख रहा है। लेकिन दुनिया का यही सच है.... जीवन हमेशा ऐसा ही रहता है। लगता है कि बस कार का यह नया मॉडल मिल जाए तो बस जीवन सन्तुष्ट हो जाएगा। काश ऐसा होता!!

मोबाइल फोन के दिन अभी आए नहीं थे। भारत और अमरीका के बीच कॉल ऑपरेटर द्वारा संपर्क कराया जाता था। लाइटनिंग कॉल का मतलब तेज़ सेवा या दस गुणा शुल्क से था, फिर भी कई मिनट लगते थे... कई बार तो घंटों लग जाते थे। इन विलंब और परमार्थ निकेतन के कार्यालय में सेवकों के साथ कई बार हलो-हलो चिल्लाने के बाद, पिट्सबर्ग, पेनसिल्वेनिया के डॉक्टर प्रकाश श्रीवास्तव ने स्वामी सदानंदजी महाराज और स्वामी चिदानंदजी को मैलिबू में खोज ही लिया। वे उसी साल की शुरुआत में अपनी भारत यात्रा के दौरान ऋषिकेश आए थे। वे परमार्थ निकेतन गए भी थे लेकिन पूज्य स्वामीजी से व्यक्तिगत तौर पर मिले नहीं थे। फिर भी उनको यह बताया गया था कि वे पिट्सबर्ग के समाज को

प्रेरणा देने और भक्त समाज को एक करने के साथ एक मंदिर के निर्माण में प्रेरक शक्ति बन सकते हैं। जब प्रकाशजी को पता चला कि दोनों संत अमरीका में हैं, तो उन्होंने तय किया कि इन संतों को पिट्सबर्ग भी जरूर आना चाहिए। उन्होंने फोन पर स्वामीजी से अनुरोध किया।

पूज्य स्वामी सदानंद जी ने प्रकाशजी का अनुरोध इस आधार पर टाल दिया कि उनके कार्यक्रम पहले से ही तय थे। वहाँ पिट्स-बर्ग में अतिरिक्त कार्यक्रम के लिए समय नहीं दे पाएँगे। उन्होंने हालाँ कि, प्रकाशजी को बताया कि पूरे समुदाय के साथ उनका आशीर्वाद है और अगली बार वह पिट्सबर्ग आने की कोशिश ज़रूर करेंगे। प्रकाशजी फोन पर इस दूरी वाले आशीर्वाद से संतुष्ट नहीं थे और फिर कुछ दिनों बाद उन्होंने पूज्य स्वामी सदानंदजी को मनाने के लिए फोन किया। दूसरी बार, भी उनका अनुरोध टाल दिया गया। हालाँ कि, समय और भाग्य जल्द ही बनने वाले हिंदू-जैन मंदिर के पक्ष में था... भाग्यवश, तीसरी बार जब प्रकाशजी ने फोन किया तो पूज्य स्वामी सदानंद जी उपलब्ध नहीं थे। इसीलिए, डॉ. अमरजीत सिंहजी ने फोन पूज्य स्वामीजी को दे दिया, जिनका मंत्र हमेशा ही 'तथास्तु' या "नो प्रोब्लेम" रहा है।

प्रकाशजी का अनुरोध सरल और प्रामाणिक था। हिंदू मंदिर के लिए भूमिपूजन समारोह होने वाला था और वे संतों का आशीर्वाद चाहते थे। उन्होंने उस समय पूज्य स्वामी जी को यह नहीं बताया था कि महाराज जी (स्वामी सदानन्दजी) ने उनको पहले ही दो बार मना कर दिया है, या फिर वे पूज्य स्वामीजी के वहीं स्थायी तौर पर बस जाने की मंशा रखते हैं... उन्होंने सभी भारतीयों को एक करने के अपने संघर्ष की भी कहानी बताई कि किस तरह सभी

आध्यात्मिक धाराओं वाले भारतीय एक होकर यहाँ मंदिर बनाने को उत्सुक हुए हैं। पूज्य स्वामीजी द्रवित हो गए। वे हमेशा ही आपसी संबंधों को मजबूत करने और लोगों को आंतरिक एकता समझाने में विश्वास रखते हैं, चाहे उनकी भाषा, संस्कृति और समुदाय अलग क्यों न हो... वे हमेशा, खासकर भारत की भूमि के अनेक शुद्ध और पवित्र धर्मों के मूलभूत ऐक्य को ही पुरस्कृत करने के पक्ष में रहे हैं... उनकी अनेकता में छुपी हुई एकता को उजागर करना चाहते हैं।

पूज्य स्वामीजी स्वभावत: कोमल हैं... किसी की भी सहायता करने में वे सदैव तत्पर रहते हैं... और फिर पूरे पिटसबर्ग, पेंसिल्वे-निया वासियों की तरफ से प्रकाशजी की गुहार- प्रार्थना इतनी हृदय से थी कि जितनी भी हो सके उतनी सहायता इस मंदिर समुदाय परिवार के लिए करने के लिए पूज्य स्वामी जी ने आश्वासन दे दिया। दैवयोग से पिट्सबर्ग के मंदिर में सिखों के लिए एक गुरु-द्वारा बनना भी शामिल था... इसीलिए जब दिन में इस बात पर स्वामी सदानंद जी के साथ चर्चा हुई तो डॉ. अमरजीत सिंह ने उन्हें मनाने में पूज्य स्वामीजी की मदद की। पूज्य स्वामी सदानंदजी ने जब परिस्थिति की माँग समझी तो वे जान गए कि मंदिर समुदाय को संतों की मदद और समर्थन की जरूरत है... और आखिरकार उन्हों ने उनके प्रस्ताव के लिए सहमति प्रकट की। फिर क्या था... पहले टिकट रद्द किए गए और फिर से नए टिकट बुक किए गए। यात्रा का कार्यक्रम बदला और न्यूयॉर्क से वाशिंगटन डी. सी. के रास्ते पिट्सबर्ग में कुछ घंटे रुकने की योजना बनाई गई।

इस तरह दशहरे के पावन पर्व पर - जो अशुभ पर शुभ की विजय का पर्व है- भूमिपूजन हुआ और हिंदू-जैन मंदिर के निर्माण की भूमि और भूमिका तैयार हुई। पहले इसका नाम हिंदू टेंपल ऑफ

नॉर्थ अमरीका ही सोचा गया। बाद में इसका नाम बदला जाना था... भूमिपूजन का धार्मिक संस्कार पूज्य संतों की सन्निधि एवं आशीर्वाद तथा भारत के राजदूत की उपस्थिति में हुआ।

यद्यपि पूज्य संत-वृंद तो कुछ समय ही रुके, लेकिन उसका प्रभाव गहरा था। भूमिपूजन और नींव का पत्थर रखे जाने के बाद संतों ने आशीर्वादस्वरूप कुछ शब्द कहे। पूज्य स्वामीजी ने तीन भजन गाए। उनकी मधुर आवाज सुनते हुए डॉ सुधाकर रेड्डी और डॉ प्रकाश श्रीवास्तव और मंदिर से जुड़े दूसरे सभी अधिकारियों ने तुरन्त पहचान लिया कि पूज्य स्वामीजी ही वह आध्यात्मिक नेतृत्व प्रदान कर सकते हैं, जिनकी उनको तलाश थी। 'उनके प्रवचन और भाव-भक्ति से भरे गीत सुनकर हम तुरन्त जान गए, कि हमें इन्हीं की प्रतीक्षा थी... हमने आखिर प्रभु कृपा से उनको पा ही लिया!'

अगले कुछ महीनों तक डॉ. प्रकाशजी और कार्नेगी मेलन यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर डॉ रघुनाथ पूज्य स्वामी सदानंदजी और पूज्य स्वामी धर्मानंदजी से लगातार बात करते रहे... उनसे उस युवा, तेजस्वी और फुर्तीले संन्यासी को वापस भेजने की प्रार्थना करते रहे... पूज्य स्वामीजी को भी उन्हों ने कई पत्र लिखे... पिट्सबर्ग को अपना निवास बनाने की प्रार्थना भी की...लेकिन केवल पत्र लिखकर प्रकाश जी रुके नहीं... प्रकाशजी वापस ऋषिकेश स्वयं आए, ताकि उनसे पूज्य स्वामीजी को भेजने के लिए व्यक्तिगत प्रार्थना कर सकें। पूज्य स्वामी सदानंदजी को मनाने के लिए किए हुए ऋषिकेश के अपने खास दौरे को रघुनाथजी आज भी याद करते हैं। 'यह काम अकेले करना मेरे लिए आसान नहीं था इसलिए मैं अपने ससुर जी को भी ले गया, जो समुदाय में काफ़ी प्रतिष्ठित और सम्मानित व्यक्ति थे।'

जब उन्होंने पूज्य स्वामी सदानंदजी से पूज्य स्वामीजी को पिट्सबर्ग मंदिर के लिए अनुज्ञा देने को कहा, तो उन्होंने दो-टूंक जवाब दिया, 'आप उनके अलावा और किसी को भी ले जा सकते हैं। क्यों कि वह यहाँ सबकुछ देखते हैं और मैं उनको नहीं छोड़ सकता...।'

अगले दिन, रघुनाथजी ने अपने श्वसुर से एक बार फिर महाराज जी से अनुरोध करने को कहा। इस मुलाकात का सही प्रभाव साबित हुआ... और पूज्य स्वामी सदानंदजी मान गए। लेकिन साथ में दो शर्तें रखीं... पहली, प्रारम्भ में हर वर्ष पूज्य स्वामीजी छह महीने पिट्सबर्ग में और छह महीने ऋषिकेश में रहेंगे। दूसरे, यदि उनकी ऋषिकेश में जरूरत होगी- पिट्सबर्ग प्रवास के दौरान भी- उनको तुरन्त भेज दिया जाएगा...पूरे वर्ष के दौरान यह तीन बार भी हो सकता है। ... रघुनाथजी मान गए। पूज्य स्वामी सदानंदजी ने कहा कि पूज्य स्वामी धर्मानंदजी की आज्ञा भी जरूरी होगी, क्योंकि वे पूज्य स्वामीजी के गुरु हैं।

माँ की गोद में

पूज्य स्वामी धर्मानंदजी ने बड़े प्रेम और आशीर्वाद पूर्वक तुरन्त ही पूज्य स्वामीजी को पिट्सबर्ग जाकर अपनी देखरेख में हिंदू मंदिर के निर्माण का नेतृत्व करने की अनुमति दे दी। पूज्य स्वामी धर्मानंदजी की सोच एक गुरु की थी...वे स्वयं असंग और विरक्त थे... वे जानते थे कि उनका शिष्य परमार्थ निकेतन आश्रम के प्रसार, प्रचार और विकास से भी अधिक महान कार्य के लिए बना है।

पिट्सबर्ग के लिए पूज्य स्वामीजी की प्रस्तावित यात्रा से पहले

जितना समय था उस दौरान परमार्थ के काम ने प्रचण्ड रफ़्तार पकड़ी। चूँकि पूज्य स्वामीजी ही सबकुछ देखते थे और वे ही छह महीने के लिए बाहर रहनेवाले थे तो उनके जाने से पहले सारे आवश्यक काम पूरे हो जाने थे! इनमें एक नए भोजन कक्ष का निर्माण भी शामिल था, जिसमें सैकड़ों साधु, संन्यासी, ऋषि और ब्रह्मचारी एक साथ खाना खा सकें...पूज्य स्वामीजी ने घंटों तक अनेकों डिजाइन में से चुनकर व्यक्तिगत तौर पर डिजाइनर और ठेकेदार के साथ मिलकर इसका डिज़ाइन निश्चित किया। केवल वे ही जानते थे कि हर ईंट, सीमेंट का एक एक कट्टा, या कौन सी कीलें और दस्ता कहाँ लगना है। सुबह से शाम तक वे स्वयं खड़े होकर काम का निरीक्षण करते थे ताकि निर्माण का काम उत्कृष्ट हो और कोई भी समस्या आने से पूर्व ही उसको तुरन्त सुलझा दिया जा सके।

अपनी विदेश यात्रा की पूर्व संध्या पर, पूज्य स्वामीजी अपने प्रिय गुरु पूज्य स्वामी धर्मानंदजी के चरणों में बैठे थे। स्वामी धर्मा-नंदजी जोर दे कर बता रहे थे कि वास्तव में काम शानदार हुआ है और यद्यपि पूज्य स्वामीजी परमार्थ में किसी से भी अधिक क्षमता और सामर्थ्य रखते थे, फिर भी उनको अपनी व्यस्ततम सेवा के दौरान साधना की दृढ़ता नहीं खोनी चाहिए।

"यदि आप जीवन में कभी भी निराश नहीं होना चाहते हैं, तो कभी भी प्रभु से रोज़ मिलने का निश्चित नियत समय ... 'अपोइंटमेन्ट' न चूकें"...

'गुरुजी', पूज्य स्वामीजी ने जवाब दिया, 'मैं मस्त हूँ। जब मैं सेवा करता हूँ, तो लगता है मैं ध्यान ही कर रहा हूँ। मेरे चर्म चक्षु भले ही फाइल, ड्रॉइंग या ईंट-कांक्रीट पर हो, लेकिन मेरी भीतरी दृष्टि हमेशा प्रभु की दिव्यता में ही लीन होती है। मेरे हाथ भले ही बाहर से किसी कलम या फोन या फाइल को पकड़े हों, लेकिन मेरी माला हमेशा वहाँ होती है, जप हमेशा जारी रहता है।' पूज्य स्वामी धर्मानंदजी अपने शिष्य के अंतःकरण की गहराइयों में देख सकते थे कि उनका प्रिय शिष्य केवल सच ही कह रहा है...

वे जानते थे कि पूज्य स्वामी जी में एक विशेष क्षमता है: वे शारीरिक स्तर पर किसी काम में पूरी तरह व्यस्त रहकर भी आध्यात्मिक स्तर पर ध्यान और प्रार्थना में लीन रह सकते हैं। वे यह भी जानते थे कि उनके युवा शिष्य एक गंभीर और अत्यंत महत्वपूर्ण काम हाथ में लेने जा रहे हैं- उत्तर अमरीका में पहले अपने ढंग के अनूठे विशाल हिंदू मंदिर के निर्माण का- और वे भारत माँ को छोड़कर एक ऐसी दुनिया के लिए निकलने वाले थे, जहाँ वह अपना जीवन, सभी देशों, सभी संस्कृतियों और विभिन्न व्यवसायों से आनेवाले जनों को भवसागर के पार ले जाने में लगा-नेवाले थे...। वे जानते थे कि उनका प्यारा बालक शिष्य वह नैया बननेवाला है जो लाखों को शांति, आनंद और दिव्यता के तट पर ले जाएगी। ...वह पवित्र नाव बनने के लिए उसका अपना आश्रय और अधिष्ठान भी बहुत मज़बूत होना चाहिए।

'मेरे बेटे...' गुरु ने कहा, 'मैं जानता हूँ कि तुम जो कह रहे हो, वह सब सच है। परन्तु, अपने जंगल के दिन मत भूलना। मानवता की सेवा की उत्कंठा में अपनी गहन, कठोर साधना मत भूलना... इस सेवा से या जिनकी सेवा करने जा रहे हो उन लोगों से भी

आसक्त और मोहित न होना। तुम्हारा आंतरिक मौन ही सबसे बड़ा बल होगा। तुमको और भी अनुष्ठान करने होंगे।'

'गुरुजी', पूज्य स्वामीजी ने जवाब दिया, 'आपके आशीर्वाद से मुझे तो मेरा जीवन ही अनुष्ठान लगता है। प्रभुकृपा से पूरे हृदय से और ईमानदारी से मैं सेवा करता हूँ, लेकिन मैं केवल दिव्यता का ही आभिलाषी हूँ..., यह आप भी जानते हैं। फ़िर भी, यदि आपको लगता है कि मुझे अधिक समय आंतरध्यान में रहना चाहिए तो मैं उसके लिए भी तैयार हूँ। मैं वही करूँगा जो आप कहेंगे।'

स्वामी धर्मानंदजी अपने शिष्य की परीक्षा लेना चाहते थे ताकि सुनिश्चित कर सकें कि जैसे बोल रहा है वैसे ही सचमुच यह बालक निर्लिप्त है। उन्होंने कहा, 'तुम कल से अनुष्ठान में बैठोगे, सत्रह महीनों के लिए।'

पूज्य स्वामीजी की परीक्षा अनावश्यक थी, क्योंकि जिस समय से पूज्य स्वामी ब्रह्मस्वरूप जी ने उनके त्रिनेत्र पर अपना अंगूठा रखा था, और उन्हें भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन हुए थे, तबसे केवल ईश्वर से ही उनकी आसक्ति थी। प्रभुसेवा तो प्रभु से प्रेम है। प्रेम की भावना से कोई अपने प्रेमी को गुलाब या चॉकलेट देता है। कोई प्रेमी अपने प्रेमपात्र के तलवे सहलाता है या फिर कोई प्रेमी के लिए उसका मनपसंद खाना बनाता है। ये सारीं क्रियाएँ लिप्तता या चॉकलेट और फूल के लिए आसक्ति से नहीं होतीं हैं। बल्कि यह प्रेमी या प्रेमिका के प्रति जुड़ाव से होता है। इसी तरह, वर्षों जंगल में गुजारने, दिव्यता की गोद में रहने के बाद, दिव्यता की सेवा की उनकी इच्छा और उत्तेजना तीव्र थी।

लेकिन यह जुड़ाव सेवा से नहीं, दिव्यता से था। इसीलिए, विदेश यात्रा पर रवाना होने में जब 24 घंटे से भी कम समय बचा था,

उनके गुरु ने यह बात कही... ऐसे में, इस आश्चर्यजनक और कल्प-नातीत घोषणा को उनका प्रतिसाद केवल दो शब्दों का था- "जी, महाराज जी! जैसे आप की आज्ञा!"।

महीनों लम्बे मौन, एकान्त और ध्यान में जाने की तैयारी करने से पहले वे अपने गुरु के चरणों में झुके...

पूज्य स्वामी धर्मानंदजी महाराज उस पल भूल चुके थे कि अगले दिन उनका शिष्य पिट्सबर्ग मंदिर के आध्यात्मिक प्रमुख के तौर पर अपनी भूमिका शुरू करने वाला है। वे जानते थे कि यह यात्रा नहीं टलनेवाली है, लेकिन भूल गए कि यह कल ही है.... वे भूल गए थे कि अंतरराष्ट्रीय उड़ान की टिकटें बुक हो चुकी हैं और सभी व्यवस्था हो चुकी है। साथ ही वे पूज्य स्वामीजी की सच्चाई को जाँचना चाहते थे। एक बार पूज्य स्वामी जी दिखा चुके थे कि वे सघन साधना में जाने को तैयार हैं, तो वह परीक्षा संपन्न हो गयी और उनके लिए वास्तविकता में इसे जारी रखना आवश्यक नहीं है... परीक्षा में वे उत्तीर्ण हो गए हैं...। इसीलिए, गुरु ने उन्हें बुलाया और कहा, 'मेरे बच्चे। चिंता न करो। मैंने दुनिया से तुम्हारी निर्लिप्तता की गहराई और गंभीरता देखी है और दिव्यता से तुम्हारे संबंध की मज़बूती और परिपक्वता भी! यह तो मेरे तुम्हें समझने से भी परे है। इसीलिए, तुम्हारे अमरीका जाने की योजना को रद्द करने की ज़रूरत नहीं है। पिट्सबर्ग के लोग बेसब्री से तुम्हारा इन्तज़ार कर रहे हैं। तुम अपनी योजना के अनुसार ही जाओ।'

पूज्य स्वामीजी दृढ़प्रतिज्ञ थे। एक बार तय हो जाने के बाद उन का संकल्प दृढ़ रहता था। उन्होंने वचन दे दिया था और अपने गुरु के कहने पर 17 महीनों के अनुष्ठान का व्रत ले लिया था। अब मुड़ना संभव नहीं था। परमार्थ का भंडारा हॉल, पिट्सबर्ग का

मंदिर और बाहरी दुनिया का सबकुछ अब रुक सकता था। प्रभु सब संभालेंगे। गुरु को दिया हुआ वचन और उनके अनुष्ठान का व्रत निरस्त नहीं हो सकता था।

ऋषिकेश में ठंड शुरू हो गयी और ठंडी हवाएँ माँ गंगा के ऊपर से बहने लगीं, और पूज्य स्वामीजी आश्रम के एक छोटे कमरे में बंद हो गए। यही छोटा-सा कमरा अगले 17 महीनों तक उनकी ध्यान-गुफ़ा बनने वाली थी। बिछाने के लिए एक पतली चटाई और सिरहाने ईंट के अलावा उनके पास एक पतली दरी और सूती तकिया था। जंगलों में रात गुज़ारने से अलग, इस बार उनके पास अपना एक शौचालय भी कमरे के साथ था।... जंगलों में उनका ध्यान बाल ध्रुव और आशीर्वाद मुद्रामें खड़े श्रीविष्णु की तस्वीर पर रहा करता था... इस बार उनका अनुष्ठान माँ गायत्री की तस्वीर पर केंद्रित होना था। नियम उतने ही कड़े थे जैसे पहले थे। 17 महीनों तक उन्होंने कठोर मौन का पालन किया। पूरे दिन में, एक बार, आश्रम का एक सेवक उनके कमरे के बाहर बरामदे में आकर उबली दाल और दो सूखी रोटियाँ रख जाता। शाम को जब माँ गंगा की शीतल लहरों पर ढलते सूर्य की आखिरी किरणें नृत्य करतीं, तब वे माँ गंगा के तट पर टहलते। केवल इसी समय वे अपने कमरे की चार दीवारों से बाहर निकलते.... इस समय, सूर्यास्त के समय की धुंधली चादर में... नज़रें हमेशा नीचे होतीं... 17 महीनों तक वे एक शब्द नहीं बोले, न ही किसी व्यक्ति से आँखें मिलायीं, न ही अपने कक्ष से गंगा के अलावा कहीं और गए...

जंगलों के बाद, यह मेरे जीवन का सबसे दिव्य अनुभव था। जो मौन कोई ध्यान के दौरान पाता है, वह केवल खाली मौन नहीं होता। यह निष्क्रिय मौन नहीं, केवल शोर का अभाव नहीं... यह

मौन ज्ञान से रहित नहीं होता... बल्कि यह पूर्ण मौन है, प्रभावी मौन! यह वह मौन है, जिसमें गंगा की लहरों के चट्टान से टकराने से आनेवाली आवाज की तरह प्रभु की आवाज साफ-साफ सुनी जा सकती है...यह वह मौन और एकान्त है, जहाँ प्रभु का वास हाथ की माला की तरह प्रत्यक्ष होता है।

मुझे याद है कि साधना की शुरुआत में तीन बैठकों में 11 घंटे तक तनकर सीधे बैठे रहना बहुत कठिन होता था। यह 11 घंटे जप करना मेरे अनुष्ठान का नियम था। बाकी का समय योगासन, प्राणायाम, गंगातट पर घूमने, ग्रंथों के अध्ययन या फिर मेरी डायरी में लिखने या विश्राम में व्यतीत किए जा सकते थे। तो, बिल्कुल पहले दिन प्रथम एक या दो घंटों के लिए तो मैं बिल्कुल पद्मासन में सीधे बैठ कर तना हुआ था, उसके बाद मैं झुकने लगा। मेरी माला अब तक हाथ में थी, लेकिन पद्मासन में बैठे रहने के बजाय मैं सुखकर स्थिति में बैठने लगा- घुटने मेरी छाती से लगे हुए, सिर एक तरफ झुका हुआ, दीवार से सटकर या यहाँ तक कि लेटकर भी... चूँकि पद्मासन में बैठे-बैठे, बिना मुड़े, मेरा शरीर दर्द करने लगता था, तो मैंने खुद को किसी भी मुद्रा में बैठने की छूट दे दी। दिन में तीन बार मैं लेट जाता था, पाँव बाहर निकले हुए, एक बाँह पर सिर रखे हुए और दूसरे से जाप करते हुए...

लेकिन.... जिस क्षण मैं अपने कमरे के दरवाज़े पर सेवक लड़के की हल्की-सी दस्तक सुनता था, मैं तुरन्त ही संपूर्ण पद्मासन में बैठ जाता। वह मुझे देखनेवाला नहीं था... वह केवल भोजन छोड़ कर जाने वाला था, चुपचाप... फ़िर भी, कुतूहल तो सदैव रहता है! मैं निश्चित तौर पर जानता था कि वह कमरे के अंदर जरूर झाँकता होगा.... यह देखने को कि मैं क्या कर रहा हूँ... यह जाँचता

होगा कि मैं ध्यान में पूर्ण मग्न हूँ कि नहीं.... इसीलिए, जैसे ही मैं बरामदे में आवाज़ सुनता, तुरन्त पद्मासन लगा लेता! किसी दीवार की तरह तना हुआ, बायीं हथेली घुटने पर ऊपर की तरफ रखी हुई, दाहिने हाथ से जप की माला के मणि पलटते हुए, चेहरे पर दिव्य मुस्कान!!! मैं निश्चित तौर पर जानता था कि वह वापस जाकर गर्वपूर्वक बताता होगा, 'महाराज जी किसी मूरत की तरह स्थिर बैठते हैं, किसी पेड़ की तरह तने हुये बैठते हैं... पूरे दिन! वे सचमुच गहरे ध्यान में हैं। '

जिस क्षण सेवक के पीछे दरवाजा बंद होता, मेरी लगन का दरवाजा भी बंद हो जाता!! एक बार फिर, मैं झुकता, या सोता या दीवार के सहारे लग जाता। सुस्ता लेता... जैसे ही शाम को फिर उसकी आहट सुनाई देती... मैं फिर ध्यान मुद्रा में आ जाता!

अनुष्ठान के तीसरे दिन उस लड़के ने मेरा भोजन टेबल पर रख दिया और अपने पीछे दरवाज़ा बंद कर दिया, तब मैंने एक आवाज़ सुनी। मैं अपनी टांग पसारने और आराम करने जा ही रहा था कि माँ के दिव्य विग्रह से आवाज़ आई, "तुम एक सेवक के सामने अपनी आदर्श योगासन स्थिति का पूरा ध्यान रखते हो, लेकिन मेरा ध्यान नहीं रखते? वह तो केवल तुम्हारा

> "अपने जीवन की बागडोर प्रभु के हाथ में दे दो। उनको अपना सारथी होने दो। उनको अपना चालक होने दो। उनको ही तुम्हारा जीवन चलाने दो"।

भोजन देने आता है, लेकिन तुम सधे हुए आसन में बैठ जाते हो... प्यार से, रोब से और गौरव से भरे। मैं यहाँ दिन रात तुम्हारे साथ हूँ और तुम?...तुम ध्यान भी नहीं देते? आखिर, यह अनुष्ठान किस के लिए है?...उसके लिए या मेरे लिए?

मेरे पाँव काँपे और मेरी उंगलियाँ थरथरायीं... माला हाथ से छूटने लगी....मेरा हृदय तेज़ी से धड़कने लगा और ज़ोर ज़ोर से ॐ ॐ ॐ ॐ की आवाज़ मेरी छाती से निकलने लगी। उनकी आँखें मेरी आँखों में गढ़ गयीं....क्या उनकी भी आँखों में आँसू थे...? या केवल मेरी ही आँखों में पानी था? मुझे अपनी शिथिलता का ज्ञान हुआ। मैं अपनी आँखें बिना खोले जप कर रहा था, बिना जाने कि माँ तो मेरे सामने ही थीं। मेरे मंत्र उसको पुकारते थे और वह चली आयी थीं...लेकिन मैं बिलकुल बेखबर रहा...

उस अनुभव के बाद कोई भी मूर्ति या चित्र कभी भी मेरे लिए केवल एक मूरत या चित्र मात्र नहीं होता। उस समय से, प्रभु का प्रतिनिधित्व करनेवाली हर चीज़ में उनकी दिव्य आवाज़ मैं सुन सकता हूँ, उन्हें महसूस कर सकता हूँ।

अनुष्ठान में अब पूज्य स्वामी जी पूरी तरह तादात्म्य हो गए थे... वे अब बिल्कुल स्थिर बैठते थे, साधना के आनंद में खोये हुए... लेकिन उनके पैर की माँसपेशी में दर्द शुरू हुआ। जिस दिन से देवी माँ बोली थीं, उस दिन से वे माँ से पूर्ण एकरूप हो गए थे...। अब, स्थूल शरीर को पड़े रहने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि वे प्रत्यक्ष अपनी माँ की दिव्य गोद में बैठे रहते थे।

चाहे जितना लचीला और ताकतवर शरीर क्यों न हो लेकिन पद्मासन में रोजाना 10 या 1१ घंटे बैठे रहना वह भी एक या दो दिन, सप्ताह नही... महीनों तक... आसान नहीं होता...। कई महीनों

बाद, युवा सन्यासी को उनकी साधना के शारीरिक परिणाम महसूस होने लगे... वैसे उनको इसका तनिक भी खेद न था...। लेकिन, वे जानते थे कि उनका जीवन मानवता की सेवा के लिए है और इस वजह से उनको अपने शरीर को स्वस्थ और मज़बूत रखना ही होगा। इसीलिए, योगासन और आराम के बावजूद जब दर्द ने कम होने का नाम नहीं लिया, तो उन्होंने आश्रम के होमियोपैथिक डॉक्टर के पास दवा के लिए पर्ची भेजी। शाम को दूध के साथ दवा भी आयी, जिसे पूरी श्रद्धा से पूज्य स्वामीजी लेने भी लगे, पर कोई आराम नहीं पड़ा... उनकी पिंडलियों में दर्द होता ही रहा और किसी भी आसन से उनको आराम नहीं मिल रहा था। एक दिन वे जब सोने के पहले देवी माँ से प्रार्थना कर सोने जा रहे थे, तो भीतर से आवाज़ आयी, 'तुमने डॉक्टर से दवा मंगाई, लेकिन उससे क्यों नहीं कहा जो हर दर्द की दवा है? उससे क्यों नहीं कहा, जो सभी तरह की दवाइयाँ और इलाज का स्रोत है।' तत्क्षण, पूज्य स्वामीजी साष्टांग दंडवत मुद्रा में ज़मीन पर लेट गए, अपनी माँ की शरण में... वह दर्द जो गायब हुआ, उसने फिर कभी मुड़कर नहीं देखा!

पिट्सबर्ग, अमरीका वापसी

वर्ष 1982 की गर्मी के आखिरी दिनों में पिट्सबर्ग समुदाय के लोगों की प्रार्थना अंत में सुनी गयी और पूज्य स्वामीजी पुन: पिट्सबर्ग समुदाय के लोगों में जा पहुँचे। डॉक्टर जीतू देसाई, जो एक प्रख्यात न्यूरोलोजिस्ट हैं, उनके प्रभाव को बताते हैं, 'अपनी मेहनत से जो लोग आगे बढ़े थे, यश और समृद्धि को जिन्हों ने पाया था उन्हें एक प्रभावी नेतृत्व की कमी खलती थी...। जो हमारे समुदाय से जुड़े

हुये थे... उनके बीच मनमुटाव और विवाद होते रहते थे। जहाँ एक हिंदू मंदिर बनाने का प्रामाणिक काम कर रहा एक समन्वयशील अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में यह समाज उभर सकता था वहाँ यह बिखर रहा था... बाँटने वाली ताकतें और तेज़ ज़ोर पकड़ रही थीं। इसी दौरान दो हिन्दू गुटों ने हमारे समुदाय को छोड़ दिया... यह हमारे हिंदू समुदाय का एक बुरा दौर था...लेकिन श्री स्वामी चिदानंदजी के आने से धार्मिक गतिविधियों को तो बल मिला ही, मंदिर निर्माण के कार्य के लिए मिलनेवाली दानराशि में भी वृद्धि हुई। बहुसांप्रदायिक मंदिर में पूज्य स्वामी जी की श्रद्धा और दृढ़ विश्वास ने ही उन के दिलों को जीत लिया। समुदाय ने नए उत्साह से सेवा में प्रतिभाग भाग लेना शुरू किया और नई ऊर्जा से निर्माण में अपना योगदान देना भी शुरू किया।'

पिट्सबर्ग यूनिवर्सिटी के कार्डियोलॉजी विभाग के प्रमुख डाक्टर सुधाकर रेड्डी पूज्य स्वामीजी के आगमन को मंदिर के लिए "एक निर्जीव शरीर में चेतना का संचार" जैसा बताते हैं। प्रसिद्ध हृदय रोग विशेषज्ञ डॉक्टर इंदर पंडित सहमति जताते हुए कहते हैं, "पूज्य स्वामी जी के आगमन ने हम लोगों में नयी ऊर्जा की ज्योत जलायी और मंदिर निर्माण का काम कल्पनातीत गति से आगे बढ़ा...विकसित हुआ"।

जिस दिन पूज्य स्वामीजी वहाँ पहुँचे, उसी दिन की एक घटना आज लगभग तीन दशकों बाद भी उन लोगों को याद है। यह समुदाय के ऊपर उनके प्रभाव पड़ने से पहले की घटना है। डॉक्टर रघुनाथ कहते हैं, 'मुझे याद है, मुझे पिट्सबर्ग में एक भारतीय के यहाँ से फोन आया, उनको मैं जानता तो था, पर वह समुदाय का नज़दीकी सदस्य नहीं था। उसने मुझसे पूछा कि क्या हमारे मंदिर

में कोई स्वामी आनेवाले हैं? मैंने उनको कहा- हाँ, ऋषिकेश से हमारे स्वामीजी आज आ रहे हैं। 'क्यों'? मैं ने पूछा...उस आदमी ने जवाब दिया- क्योंकि वह मेरे सामने खड़े हैं और लगता नहीं कि उन्हें रास्ते का पता है, या कहाँ जाना है और क्या करना है। जब स्वामीजी फोन पर आए, तो उन्होंने कहा कि वे तो प्रतीक्षा कर रहे थे लेकिन कोई उन्हें लेने ही नहीं आ पाया। जिस व्यक्ति को उन्हें लेने जाना था, किसी ग़लतफ़हमी की वजह से वह पहुँच ही नहीं सका। रघुनाथजी ने पूछा- आप कितनी देर से प्रतीक्षा कर रहे हैं?- जवाब आया...'चार घंटे'। प्रोफेसर रघुनाथजी चौंक गए-आपने पहले फोन क्यों नही किया? 'मेरे पास पैसा ही नहीं था, चूँ कि धन का मैं स्पर्श ही नहीं करता...'...सीधासादा-सा जवाब आया।'

संन्यास के पारंपरिक नियमों के अनुसार पूज्य स्वामीजी पैसा नहीं रखते थे। इसीलिए, वे ऋषिकेश से दिल्ली, दिल्ली से लंदन और लंदन से पिट्सबर्ग आ गए, लेकिन उनके पास उनके झोले में एक डॉलर भी नहीं था। किसी से पैसे के लिए वे कहना भी नहीं चाहते थे, इसीलिए वे जब तक कोई भारतीय सामने से नहीं गुज़रा तब तक चुपचाप बैठे रहे, और तब तक किसी को अपनी दुबिधा भी नहीं बता सके। सौभाग्य की बात यह थी कि इन्तज़ार केवल कुछ घंटों का हुआ.... उस समय की भारतीयों की जनसंख्या को देखते हुए यह इन्तज़ार तो कई दिन का भी हो सकता था....

मनरोविल, पिट्सबर्ग के पहाड़ में साधना

जब पूज्य स्वामीजी वर्ष 1982 में पिट्सबर्ग लौटे, तो भी मंदिर के नाम पर वहाँ चर्च जैसा एक कक्षीय मंदिर था। पहाड़ में नए मंदिर

के लिए निर्माण जारी था, लेकिन प्रगति काफ़ी धीमी थी। जब वे आए, तो भक्तों ने शुरुआत में उनको अपने घरों में रहने के लिए आग्रह किया। एक महीने तक वे विभिन्न घरों में कुछ दिन रहे, उसके बाद उन्होंने किसी के घर रुकने के लिए मना कर दिया। वे बताते हैं, 'मैं ने महसूस किया कि मैं मंदिर की सेवा करने आया था, उसे बनवाने आया था। वह करने के लिए, मुझे उसी परिसर में ही रहना चाहिए... चौबीसों घंटे, मंदिर के साथ। इसीलिए, पूज्य स्वामीजी ने पुराने मंदिर की इमारत में एक छोटा, खाली कमरा अपने लिए चुना। लेकिन इस फैसले से मंदिर के अधिकांश सदस्य और भक्त प्रसन्न नहीं थे क्यों कि वह सुविधाजनक नहीं था। पूज्य स्वामीजी चिंतित नहीं थे । 'मैं हिमालय के जंगलों में रहा था। मैं जंगली जानवरों, साँपों और बिच्छुओं के साथ रहा था। जब मैं पिट्सबर्ग आया था, तभी से जानता था कि ईश्वर का हाथ मेरे सिर पर है, क्योंकि मैं उनका विशेष कार्य पूरा कर रहा था और मुझे किसी से ख़तरा नहीं है।'

शुरुआती दिनों में जिस तरह की उलझनें उनको झेलनी पड़ीं, वे हिंसा या अपराध की नहीं थीं, बल्कि यह समस्या नहाने की जगह को लेकर थी! मंदिर में पूज्य स्वामीजी के कमरे में कोई बाथरूम भी नहीं था। वह भवन जो पहले चर्च था और अब बहु-सांप्रदायिक मंदिर के तौर पर काम कर रहा था, वहाँ सार्वजनिक शौचालय तो था, और प्रबंध समिति ने सोच लिया कि वे उसका इस्तेमाल करेंगे। उनके दिमाग़ से यह बात ही निकल गयी कि सिंक और शौचालय के साथ स्वामीजी को एक नहाने की जगह भी तो चाहिए।

पूज्य स्वामीजी- जो उत्तर भारत के एक समृद्ध परिवार में जन्मे, जंगलों में पले और गंगा नदी के तट पर एक आश्रम के

प्रमुख थे- हमेशा ही एक मंत्र के साथ जिए हैं- जीवन में जो भी मिले, उसे भगवान का प्रसाद समझकर ग्रहण करो, जो भी मिला उसके साथ प्रसन्न रहो और कभी भी अधिक की माँग न करो।" इसीलिए, उन्होंने किसी को अपनी दिक़्क़त के बारे में नहीं बताया... जब तक किसी ने ग़ौर नहीं किया कि उनके पास नहाने के लिए शॉवर या बाथटब भी नहीं है तब तक उस छोटे से मंदिर के सामुदायिक केंद्र में छह महीने से भी अधिक बीत गए! हर सुबह वे मंदिर-भवन का मुख्य दरवाज़ा बंद कर देते और सामुदायिक रसोई में से एक बाल्टी भर लेते। उसके बाद वह रसोई के फर्श पर खड़े होकर इस सावधानी से नहाते कि वह अधिक गीला न हो। अपने स्नान के बाद वह रसोई में पोंछा भी लगा देते थे... इसलिए किसी को पता भी नहीं चला!

'कई बार मैं रसोई के सिंक में भी नहा लेता था। मैं उसको खूब साफ कर लेता, जब तक कि वह चमकने न लगता फिर किसी तरह उसमें बैठकर सीधा टैप से गिलास की मदद से नहा लेता।'

> **"आध्यात्मिक पथ की एक चाबी तो अहंकार को जड़ से नष्ट करना है, विनम्र बनना है और खुद को प्रभु की शरण में समर्पित करना है।"**

एक सुबह, पूज्य स्वामीजी दरवाज़ा बंद करना भूल गए और उसी समय एक भक्त आया, ...वे अभी अभी नहा लिए थे। उन्होंने पूज्य स्वामीजी को केवल तौलिया पहन कर रसोई में पोंछा लगाते

देखा। समुदाय को अब पता चल ही गया कि वे तो उनके निवास में बाथरूम की व्यवस्था करना ही भूल गए हैं। तुरन्त ही शॉवर के साथ एक बाथरूम बनाया गया।

पूज्य स्वामीजी याद करते हैं, 'उन्होंने यह कुछ ही दिनों में कर दिया। मैं समुदाय के प्रेम को याद करता हूँ, वे सभी आए और खुद दीवार तोड़ी, जोड़ी, सिंक लगाया, टॉयलेट और टब लगाया। उस समय मंदिर में दान बहुत कम आता था, तो हम किसी ठेकेदार को बुलाकर बाथरूम नहीं बनवा सकते थे। सब कुछ भक्तों ने ही करना था। तो, उन्होंने खुद ही सब कुछ किया और एक सप्ताह के भीतर ही मुझे 'स्नानगृह' मिल गया।'

एक और चीज़ जो वे शुरुआत में भूल गए थे, वह थी मंदिर परिसर की सफाई की व्यवस्था। पूज्य स्वामीजी के आने से समुदाय काफ़ी उत्साहित था और उन्होंने सप्ताहाँत में लगातार बैठकों और कार्यक्रमों को भी बढ़ावा दिया। इनके दौरान या बाद में चाय-कॉफी और कई बार नाश्ता भी होता। जब सब लोग परिसर से चले जाते - गंदे कप और जूठे प्लेट वगैरह छोड़कर.... तो वे सोचते होंगे कि उनके जाने के बाद कोई आकर कप, प्लेट और गंदगी हटाता होगा, टेबल साफ करता होगा और फर्श बुहारता होगा...हाँ ...कोई करता तो था यह सब.... लेकिन, वे ये नहीं सोच पाते थे कि जो व्यक्ति इसे करता था, वह कोई और नहीं...उनके प्यारे और पूज्य स्वामीजी, स्वयं थे!!!

इसे साधना का ही एक रूप मानते हुए, अपनी तपस्या के भवन में एक ईंट मानते हुए, वह प्रत्येक शनिवार की रात को सफाई करते, ताकि सुबह की योग-कक्षा के लिए फर्श बिल्कुल साफ-सुथरा मिले। 'यह अच्छा नहीं लगता कि लोग सुबह-सुबह नहा धो-कर

आएँ, और गंदे कप या बर्तन देखें।' इसीलिए, रात के ध्यान में बैठने से पहले या फिर सूर्योदय के बहुत पहले, जब वे नहाने के बाद अपना सुबह का ध्यान कर चुके होते, तभी सभी बर्तन और कूड़ा साफ करते, फर्श पर पोंछा लगाते और कमरे को तैयार करते।

उनकी साधना का यह पक्ष भी फिर से संयोग वशात् ही पता चला, जब एक भक्त ने स्वामीजी को कमर तक भगवा धोती बांधे, एक बड़े काले प्लास्टिक बैग में कूड़ा ले जाते देखा। महाराजजी, क्या कर रहे हैं आप? क्या सफाईकर्मी नहीं हैं?- उसने आश्चर्य से पूछा। पूज्य स्वामीजी ने कहा, 'मैं हूँ न!! मैं स्वामीजी हूँ । मैं योग शिक्षक भी हूँ, मैं सफाई कर्मी भी हूँ ।' भक्त की आँखें आँसुओं से भर गयीं और मंदिर समुदाय ने तुरन्त ही एक सफाई कर्मचारी की नियुक्ति की।

दो दशकों से अधिक की गहन साधना ने, जिसमें उपवास के भी दिन शामिल थे, पूज्य स्वामीजी को सिखा दिया था कि जब भी भोजन आए या न आए, उसे प्रसाद समझकर स्वीकार करें। एक दिन जब डॉक्टर नवल और नीला कांत ने जब उस सूची की जाँच की जिसमें पूज्य स्वामीजी के लिए लंच और डिनर लानेवालों का नाम था... उन्होंने कुछ ख़ास देखा। कुछ मौक़ों पर, पूज्य स्वामीजी ने भोजन लानेवाले के नाम को काटकर वहाँ 'उपवास' लिख दिया था। नीलाबेन ने कैलेंडर देखकर उनके उपवास की प्रणाली का पता लगाना चाहा। यह न तो हर सोमवार को था, न हर मंगलवार को, न ही एकादशी, न पूर्णिमा। इस उपवास की विधि में कोई क्रम न था। जब पूज्य स्वामीजी से पूछा गया, तो उन्होंने उड़ता सा जवाब दिया- 'मैं तब उपवास करता हूँ, जब ईश्वर मुझे कहता है'। नीलाबेन ने जब काफ़ी ज़ोर दिया, तब उन्होंने अंत में स्वीकार किया कि

उन्होंने उन दिनों उपवास किया, जब लोग उनका खाना लाना भूल गए या किसी कारण वश न आ सके... क्यों कि वे जानते थे: जब वे आएँगे और अपना नाम उस कैलेंडर में देखेंगे तो अपना कर्तव्य भूलने के लिए दुखी होंगे। इस ग्लानि से उन्हें बचाने के लिए ही उन्होंने कैलेंडर में उपवास लिख दिया, ताकि वे जान सकें कि जब वे खाना लाना भूले तो वह तो स्वामीजी के उपवास का दिन था।

इन दिक़्क़तों के बावजूद, जब भी पूज्य स्वामी सदानंदजी या पूज्य स्वामी धर्मानंदजी, फोन कर उनका हालचाल पूछते तो वे एक ही जवाब देते- बहुत बढ़िया, अत्युत्तम। वे कभी यह सोचते तक नहीं थे कि व्यवस्था अत्युत्तम से तनिक भी कम है। इसके साथ ही, यदि कोई पूज्य स्वामीजी से हिंदू-जैन मंदिर बनने के दिनों की कथा सुनता तो ये कठिनाइयाँ उनके

“आध्यात्मिक पथ की एक चाबी तो अहंकार को जड़ से नष्ट करना है, विनम्र बनना है और खुद को प्रभु की शरण में समर्पित करना है।”

सामने कभी नहीं आती थीं। वे केवल प्रभु के धाम के बनने की और एक बिखरे समुदाय को एकता के सूत्र में बाँधने की शानदार कहानी ही उनसे सुन पाता। आक्रामकता और असहिष्णुता को प्रेम और समझदारी में बदलने की कहानियाँ वे सुनाते। बाथरूम के न होने या सफाईकर्मी के छूट जाने की कहानियाँ मंदिर के दूसरे सदस्य ही बताते हैं, जो शुरुआती दिनों में वहाँ थे। तभी, पूज्य

स्वामीजी कहते हैं, 'ओह हाँ... वह भी था, लेकिन कोई समस्या नहीं। संत तो धरती पर मस्तिष्क हृदय और आत्मा को साफ़ करने आते हैं। यदि हमें कभी-कभार कमरा भी साफ़ करना पड़ जाए, तो कोई समस्या नहीं है। हमें तो यहाँ लोगों के अहं, लोभ, वासना, मोह और बाधाओं से मुक्ति के लिए भेजा गया है। यदि हम कूड़ेदान भी खाली कर देते हैं, तो कोई दिक्कत नहीं। हम तो भक्तों के हृदय की सफाई के लिए हैं, अगर उनके हृदय को साफ करते हुए एक हॉल में भी झाड़ू लगा दिया, तो कोई समस्या नहीं है। यह सब साधना है, यह सब प्रभु की सेवा है।"

समुदाय का मतलब एकता में मिलकर रहो...

मंदिर की उद्घाटन स्मारिका में हरिलाल पटेल पूज्य स्वामीजी के समुदाय पर प्रभाव का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि, **'समुदाय में वर्ष 1982 में पूज्य स्वामीजी के पिट्सबर्ग में आने की खबर जंगल की आग की तरह फैल गयी। हर आदमी उनके दर्शन को लेकर बहुत उत्साहित था। लोग सुबह से लेकर देर रात तक उनके कमरे में बैठे रहते। जो कभी उजड़ी हुई जगह थी, वह चेतना से चहकने लगी। उन्होंने पिट्सबर्ग के क्षेत्र में सभी भारतीयों को एक कर दिया। समुदाय गुंजायमान बन गया और हर कोई उनके बारे में उत्साह और प्रसन्नता से बात करने लगा। वैसे तो, पिट्सबर्ग क्षेत्र के समुदाय के लिए स्वामीजी आए थे, लेकिन उनके अच्छे स्वभाव और भक्ति की ख़बरें अन्य शहरों में में भी फैल गयीं। जल्द ही उनको अमरीका और कनाडा के सभी राज्यों से निमंत्रण मिलने लगे। उन्होंने विभिन्न शहरों में भारतीय समुदाय की ज़रूरतों को**

समझा और उन सब को मंदिर बनाने में भी सहायता करने लगे.... पूज्य स्वामीजी विभिन्न संप्रदायों के बीच एकता लानेवाले योगी बन गए। वे अब न केवल कनाडा और अमरीका तक सीमित थे, बल्कि अन्य देशों में भी कई समुदाय उनसे परामर्श लेने लगे।'

पूज्य स्वामीजी न केवल मंदिर बनाने, बल्कि समाज के सभी वर्गों में भी एकता लाने की अपनी प्रतिबद्धता पर भी दृढ़ थे। 'समुदाय का मतलब है, एकता में साथ आओ' वे सबको याद दिलाते, - 'हम जब तक एक नहीं होते तब तक सही मायने में समुदाय नहीं बना सकते... हमें एक होना ही होगा'।

जिस मंदिर का इस्तेमाल केवल सप्ताहाँत को आध्यात्मिक कार्यक्रम के लिए होता था, अब वहाँ सप्ताह के सातों दिन कुछ न कुछ होने लगा। वे जब उस भवन के एक कमरे में चले गए, तो उन्होंने समुदाय के विभिन्न सदस्यों को प्रतिदिन फोन कर उनका और परिवार का हालचाल पूछना और उनको आरती, भजन, सत्संग या पूजा के लिए मंदिर में बुलाना शुरू किया। अंतरात्मा की आवाज़ और स्वामीजी के अद्भुत व्यक्तित्व के आकर्षण से लोग मंदिर की तरफ नियमित तौर पर आने लगे।

कल्पना जम्बूसरिया याद करती हैं, 'स्वामीजी के अमरीका आने के बाद, मुझे नवरात्रि में मंदिर के दृश्य आज भी याद है। मेरे पति और दोनों बच्चियाँ अनोखी और अनेरी साथ थे। उस समय एक दो साल की, जबकि दूसरी केवल कुछ महीने की ही थी। स्वामीजी जानते थे कि हम में से अधिकांश गुजराती हैं, इसलिए उन्होंने हारमोनियम निकाला और कहा, कि सब गरबा खेलेंगे और गाएँगे और बजाएँगे। यह थोड़ी विशेष-सी बात थी, फिर भी हम सभी इस मौक़े पर उछल पड़े। अधिकांश युवक-युवतियों ने भक्तिभाव से नृत्य

करना शुरू कर दिया, मैंने शुरू में मना किया और स्वामीजी से कहा कि मुझे बच्चियों की देखभाल करनी है। उन्होंने कहा, बच्चियों का पालना उनके पास रख देवें। । मैंने स्वामीजी का प्रस्ताव स्वीकार किया और दूसरों के साथ गरबा करने लगी...और वे मेरी बेठियों की देखभाल कर रहे थे!' अगर मंदिर की गतिविधियों में उससे तेज़ी आती है, भारतीय संस्कृति और धरोहर को बढ़ावा मिलता है तो पूज्य स्वामीजी के लिए "बेबी सिटिंग" भी बहुत मामूली कीमत थी। जो लोग पहले से मंदिर से जुड़े नहीं थे, उन्हें जोड़ने के लिए पूज्य स्वामीजी घर घर जाकर पूज्य स्वामीजी नियमित तौर पर भजन-कीर्तन और सत्संग करने लगे। ईश्वर के नामजप और पूज्य स्वामी जी के पावन प्रेरणात्मक सत्संग से धीरे धीरे सभी समुदायों के सदस्यों की आध्यात्मिकता में रुचि जागने लगी।

"अपने कर्तव्य लगन से और पूरी निष्ठा से करो, लेकिन परिणाम के प्रति आसक्ति नहीं।"

वासवीबेन पटेल कहती हैं, 'हम नियमित तौर पर भारत नहीं जा पाते न ही अपने बच्चों को ले जा पाते। पूज्य स्वामी जी और इस मंदिर की बदौलत ही हम अपनी संस्कृति से जुड़े रह सके... मेरी संतानों के लिए तो यही किसी वरदान से कम नहीं है! आम तौर पर लोगों को गुरु के पास जाना होता है...हम लोग बहुत भाग्यशाली हैं...स्वयं गुरु हमारे पास आए!'

अपने आने के कुछ दिनों बाद ही पूज्य स्वामीजी ने एक विशेष

गायत्री यज्ञ पूरे समाज के लिए किया, ताकि सभी सदस्य प्रसन्न रहें, सकारात्मक भावना बनी रहे और देवी माँ का आशीर्वाद उन्हें मिल सके। उन्होंने स्वयं सभी यज्ञ और पूजा का संचालन किया। डॉ. राधू अग्रवाल के अनुसार, 'उन्होंने सब कुछ किया... वे स्वामी जी थे, पर उन्होंने एक पूजक,आध्यात्मिक गुरु, योग शिक्षक, मार्गदर्शक और हर तरह की ज़िम्मेदारी निभायी।'

"सॉरी, ग़लत नंबर..."

आसपास का स्थानीय समुदाय, इस क्षेत्र परिसर में हिंदू मंदिर बनने को लेकर बहुत उत्साही नहीं था... भले ही मनरोविल प्रशासन ने बाद में उसकी अनुमति दी। परंतु समुदाय के कई लोग भारतीय मंदिर का कड़ा विरोध कर रहे थे। ये वे दिन थे, जब भारी संख्या में भारतीयों का अमरीका गमन शुरू ही हुआ था और कई तरह की पूर्व धारणाएँ भी हिंदुओं के बारे में बनी हुयीं थीं।

फरवरी 1983 में जब मंदिर-निर्माण को कानूनी तौर से रोकने का काम नहीं हो पाया, तो कुछ संप्रदायवादी तथा ज़ातीयतावादी उग्रपंथी लोगों ने उपद्रव करना शुरू किया...मंदिर और गार्ड पर हमला कर के नुकसान पहुँचाना शुरू किया...। खिड़कियाँ तोड़ी गयीं, दीवारों पर डामर पोत दिया गया, और जगह जगह बीभत्स और निंदा करनेवाले नारे लिख दिए गए। फिर भी उस विरोध के काले बादलों में भी आशा की एक किरण मुखर हुई... इसने मंदिर के सदस्यों को जहाँ हताश और हतबल किया.... वही उनको एक साथ जोड़ने में भी सहायक बनी!

पूज्य स्वामीजी की सुरक्षा के साथ ही मंदिर की संपत्ति की

सुरक्षा को लेकर चिंतित समुदाय ने एक सशस्त्र सुरक्षा गार्ड कुछ दिनों के लिए रखा, लेकिन उसके लिए आवश्यक धनराशि नहीं थी और पूज्य स्वामीजी भी उसको जारी रखने के बिल्कुल सहमत न थे। 'हम भगवान के घर में हैं। वह हमारी रक्षा करेंगे।' पूज्य स्वामी जी ने कहा! बाद में, नया मंदिर तो बन गया, लेकिन भारत से नया और मज़बूत दरवाज़ा आना बाकी था, तो हर रात को पूज्य स्वामीजी मंदिर के दरवाजे पर सोते थे, अपने पैरों से अस्थायी दरवाज़ों को बंद रखते! 'मुझे डर नहीं था। मैं जानता था कि एक विशेष कार्य के लिए मुझे विशेष रूप से यहाँ भेजा गया है... मुझे ईश्वर के मंदिर की और उनको मेरी रक्षा करनी है। एक बार बचपन में मैंने डर के मारे उनका चित्र ज़मीन पर गिरा दिया था... मैं जानता था कि ग़लत लोगों के डर से मैं फिर कभी उनको (प्रभु को) अकेले नहीं छोड़ सकता था!'

पूज्य स्वामीजी अपने पैरों से दरवाजे को बंद कर सोते हैं, यह लगभग रहस्य ही बना रहा, क्योंकि स्थानीय समुदाय की तरफ से वे किसी भी तरह हिंसा की घटना नहीं होने देना चाहते थे। उनका लक्ष्य उनकी ऊर्जा को बनाए रखना और उनके दिलों में भक्ति की ज्योत जगाए रखना था। 'यदि मैं सबको कह देता कि कुछ ग़लत और विरोधी प्रवृत्ति के लोग रात में दीवारों पर स्प्रे-पेंट करने या संपत्ति को नुकसान पहुँचने की नीयत से आते हैं, तो लोग डर जाते और उनका दिल टूट जाता, उनकी आस्था प्रभावित होती।' एक दिन भक्तों का एक परिवार बहुत देरी से रात में आया।

'कुछ कारणों से मैं सो नहीं पाई। मुझे बस स्वामीजी को देखना था'- पत्नी ने कहा। इसीलिए, वे आए और जब उन्होंने नीचे मंदिर के कमरे में उनको नहीं पाया, तो उन्होंने पहाड़ की ओर देखना शुरू

किया। जब उन्होंने दरवाजे को धकेला, तो एक हल्का सा अवरोध महसूस हुआ। तभी उन्होंने स्वामीजी को ज़मीन पर, सोए हुए और अपने पैरों से दरवाज़े को रोके हुए देखा... साँय साँय करती भीषण हवा और संभावित ख़तरे से बेखबर... कंबल के साथ सिर्फ एक फ्लैशलाइट के सहारे...

पूज्य स्वामीजी कहते हैं, 'मैं ने इस सब को साधना के लिए प्रभु द्वारा भेजा हुआ फूलों का गुलदस्ता मान लिया। मेरी साधना का फल और भी मीठा हो जाए इसलिए प्रभु मुझे सब तरह के अनुभव दे रहे थे...ताकि मैं हर पल साधना में सतर्क रहूँ... बगीचे में भी केवल एक जैसे फूल अच्छे नहीं लगते जितना विविध रंगों और सुगंध से भरा हुआ बगीचा सुंदर लगता है...।' पूज्य स्वामीजी को और मंदिर को न केवल शारीरिक हिंसा का भय था, बल्कि उन्हें तीखे शब्दों से भी कई बार निशाना बनाया गया था। स्वामी जी न तो ईसाई थे न गोरे थे...ऐसे लोगों के बारे में जो लोग पूर्वाग्रह से ग्रस्त होते हैं ऐसे लोगों से फोनपर खुद को मिली गालियों और अपशब्दों के बारे में हँसते हुए पूज्य स्वामी जी कहते हैं...

एक रात मुझे फोन आया। युवक जरूर ही शराब में धुत रहे होंगे। उन्होंने मंदिर के नंबर पर फोन किया... जब मैंने जवाब दिया तो उन्होंने कुछ ऊटपटाँग बातें कहीं। मैंने उनमें से अधिकांश शब्द पहले नहीं सुने थे, पर उनका भाव मैं समझ गया। वे लगातार बोलते रहे। पहले एक, फिर दूसरा, फिर एक के बाद एक...बोलते ही गए...बकते ही रहे... जब तक उन्होंने अपने शब्दकोश की सारी गालियाँ नहीं बोलीं वह बोलते ही गए...। आखिरकार, वे रुके... शायद उन्होंने सोचा कि मैंने फोन रख दिया। उन्होंने कहा, हलो? वे जानना चाहते थे कि क्या मैं अभी भी फोन पर बना हूँ?.... मैंने

बहुत प्यार से कहा, 'सॉरी, रोंग (ग़लत) नंबर।' उन्होंने तुरन्त फोन रख दिया और वह बेहुदा फोन काल्स आने बंद हो गए।

'यह सॉरी, रांग नंबर' एक सुंदर मंत्र बन गया था, जो पूज्य स्वामीजी पूरी दुनिया के लोगों को सिखाते हैं। वह बताते हैं कि हमें उन अपमानों को स्वीकार करने की जरूरत नहीं है, जो दूसरे हमारी तरफ फेंकते हैं। जिस तरह ग़लत पता लिखी हुई चिट्ठी हमारे दरवाज़े तक तो पहुँच सकती है, लेकिन हमारे आनंद में कोई बाधा नहीं पहुंचा सकती है, उसी तरह यदि अपमान घृणा और गालियाँ भी लोग यदि हम पर फेंकते हैं, तो वह हमारे कानों पर अपना असर न छोड़ सके...

हम लाइट बल्ब नहीं हैं। हमें खुद को दूसरों की इच्छा से नहीं जलना न ही बुझना है... कई बार मैं लोगों को कहते सुनता हूँ- ओह, मैं इतने अच्छे मूड में था, पर रॉबर्ट ने फोने किया और बताया कि जूली ने मेरे बारे में कुछ कहा है...' 'ओह, श्याम ने फोन किया और बताया उस ने हमारे बारे में बकवास की' या- 'ओह, उस फोन ने मेरा पूरा दिन खराब कर दिया'। इसी ध्यान रहे ह दो तरह से इसका प्रभाव हमपर होता है। कई बार, यह सब सुन हम दुखी या निराश होते हैं... हमें कोई अच्छी चिट्ठी मिलती है या फिर कोई चॉकलेट, बिस्किट या केक देता है तो उससे हमें अच्छा भी लगता है। ऐसा क्यों? क्या हमारे भाव, विचार इतने कमज़ोर हैं और हम इतने निर्बल हैं या दूसरों को उसे नियंत्रित करने की अधिक शक्ति है...हम से अधिक?

ऐसा कभी नहीं होना चाहिए। अध्यात्म पर चलनेवाले हम सब इससे कहीं अधिक बड़े, दिव्य और गंभीर होने चाहिए। मानव जीवन

और योग्यता इस क्रिया और प्रतिक्रियाओं से कहीं अधिक शक्तिशा-ली है। हमें स्वयं पर नियंत्रण हमेशा अपने ही हाथ में रखना सीखना होगा। अपने बाद इसे ईश्वर को दें... वरना, लोग हमारा स्विच ऑन और ऑफ करते ही रहेंगे, और हमारा भीतरी लाइट बल्ब बार बार जलता बुझता ही रहेगा!

बजाय इसके, हमें सब कुछ प्रसाद की तरह स्वीकार करना चाहिए, एक अनुग्रह की तरह। हमें समृद्धि और दुख... दोनों ही में स्थिर और शांत रहना चाहिए। हमें इस क्रिया-प्रतिक्रिया में उलझकर अपनी ऊर्जा व्यर्थ नहीं करनी चाहिए।

परन्तु, पूज्य स्वामीजी के आंतरिक संतुलन और शांति के बावजूद स्थानीय समुदाय का किल्मिष और प्रतिबंधन, प्रतिरोध बढ़ता ही रहा। जिस तरह कभी एक ने मनरोविल प्रशासन से मंदिर को रुकवाने की कोशिश की थी, उसी तरह अब कई पड़ोसियों ने निर्माण को रोकने की कोशिश की। स्थानीय चर्च के साथ ही वहाँ के फर्नीचर स्टोर ने भी अपनी पार्किंग सुविधा का इस्तेमाल करने पर अचानक प्रतिबंध लगाया... जो पहले नहीं था।

पूज्य स्वामीजी का जीवन में मंत्र था- 'यदि कोई आपके साथ बुरा व्यवहार करता है, तो उनके साथ और अच्छा व्यवहार रखें..., यदि कोई आपको नुकसान पहुँचाने की कोशिश करता है, तो हमेशा उसके कल्याण की प्रार्थना करें'- स्थिति की गंभीरता को देखते हुए पूज्य स्वामीजी मैत्री, करुणा, मुदिता के नए लक्ष्य के सफ़र पर चल पड़े। उस वर्ष क्रिसमस के बहाने, उन्होंने भक्तों के साथ मिलकर बढ़िया फलों की टोकरियाँ तैयार करवाईं और स्वयं हर दरवाज़े पर गए और क्रिसमस उपहार बाँटे... धीरे-धीरे सारे पड़ोसियों का मन बदला और वे सहयोगी बन गए... और आज यह मंदिर

अमरीकी-भारतीय, ईसाई, यहूदी, हिंदू, सिख, बौद्ध और जैन मूल के लोगों का सामंजस्य और मैत्रीभरा स्थल बन गया।

नए मंदिर के निर्माण की तैयारियाँ

निर्माण के लिए धनराशि जुटाने हेतु पूज्य स्वामीजी पिट्सबर्ग के साथ ही पड़ोस के इलाकों मॉर्गनटाउन, पश्चिमी वर्जीनिया, इरी, जो-न्सटाउन (पेनसिल्वेनिया) और आसपास के राज्यों में भी निमंत्रण पर जाने लगे थे। वह भजन, कीर्तन, प्रार्थना और पवित्र पूजाओं का आयोजन करने लगे ताकि चेतना, जन-जागरण और मंदिर निर्माण के लिए धनराशि जमा हो सके।

पूज्य स्वामीजी हमेशा ही एकता, अहिंसा, समग्रता और स्वीकार के समर्थक और उपासक थे। वे बचपन को याद कर के बताते हैं कि हिंदू मंदिर के साथ ही पहली मंजिल पर गुरुद्वारा और बगल में जैन उपासना स्थल भी उन्हों ने देखा था। यह उनके जंगल जाने से पहले के दिनों की बात थी। नीचे वाले भाग में हिंदुओं का मंदिर था और इसके ठीक ऊपर सिखों का गुरुद्वारा था। अगला दरवाज़ा जैन मंदिर का था। इस प्रकार, एकता का यह प्रभाव उन पर बचपन से ही था। उन्होंने हिंदू-जैन मंदिर का इसी दृढ़ संकलपना से नेतृत्व किया और इस संकल्प और निष्ठा ने न केवल पिट्सबर्ग, अमरीका समुदाय की सेवा की, बल्कि पूरे विश्व के समुदाय की भी की। जैसा कि जैन भक्त डॉ. सेठी बताते हैं, 'पूज्य स्वामीजी कि कृपा, प्रेरणा और मार्गदर्शन में हमारा पहला हिन्दू-जैन मंदिर पूरी दुनिया में ऐसा था, जिसने जैनों की दोनों धाराएँ... श्वेतांबर और दिगंबर को एक जैसा सम्मान दिया गया। हालाँकि, अब हमारी देखादेखी एवं प्रेरणा

से कई जगह ऐसे ही नए मंदिर बने हैं। हमारा मंदिर अनेकों शहरों और देशों के लिए एक अद्‌भुत उदाहरण बना...'

क्या किसी तरह की आलोचना हुई? क्या जैन समुदाय में कहीं ये भाव आया कि कुछ पाप हुआ है? नहीं, कतई नहीं- डॉ. सेठी और विनोद डोशी तुरन्त कहते हैं–'कोई भी विरोध, चर्चा या आलोचना कहीं से भी और किसीने ने भी नहीं की बल्कि, अधिकतर लोगों ने एवं शहरों में इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ा तथा एकता की नई पहल हुई'।

जब जैन संत पूज्य सुशील मुनि जी और पूज्य चित्रभानु जी मई 1984 में प्राण-प्रतिष्ठा के लिए आए, तो सचमुच उनकी आँखों में आँसू थे। कार्यक्रम के दौरान उन्होंने कहा, 'हमारा यह सपना था। स्वामीजी, आप आए और आपने ही इस सपने को साकार किया। न्यूयॉर्क, शिकागो या लॉस एंजेलिस की तुलना में पिट्सबर्ग एक छोटा समुदाय है, लेकिन आप ही पहले संत हैं, जिन्होंने हमारा सपना समझने का कष्ट किया और उसे पूरा भी किया।'

शुरुआत में यह आसान नहीं था। वर्ष 1980 से जब उन्होंने भूमिपूजन शुरू किया था, पूज्य स्वामी सदानंदजी के साथ मिलकर, तब से स्थापना और भवन के उद्‌घाटन तक, पूज्य स्वामीजी नि-ष्ठापूर्वक हिंदुओं, जैनों और अन्यों के बीच की एकता बनी रहे इस के लिए प्रयास करते रहे। जहाँ कहीं भी वे दुनिया में जाते थे, बडी प्रसन्नता से मनरोविल मंदिर के एकता एवं सद्‌भाव की चर्चा करते। समुदाय के साहस, निष्ठा और श्रद्‌धा ने विरोधियों को विश्वासियों में बदल दिया। धीरे-धीरे पूज्य स्वामीजी के संकल्प और समर्पण के कारण पूज्य आचार्य सुशील मुनि जी, पूज्य श्री चित्रभानुजी सहित

और अन्य सज्जनों के सहयोग से दुनिया के जैन समुदाय ने इस नवजीवित एकता को स्वीकार किया, अपने हिन्दू भाईयों और बहनों का स्वागत किया।

स्थापना

वर्ष 1983 के अंत तक, उत्साह अपने चरम पर था। सभी देख रहे थे कि एकता के मंदिर का सपना अब वास्तव में साकार होने जा रहा था। पाँच गर्भगृहों की स्थापना पूरी हो चुकी थी और दीवारों और छत का कार्य प्रगति पर था। मंदिर कमेटी के ट्रस्टीगण जान रहे थे कि अब मूर्तियों की स्थापना का समय आनेवाला है... और उन्होंने उसके लिए योजना बनानी शुरू कर दी।

पूज्य स्वामीजी के नेतृत्व में हिंदू टेंपल सोसायटी ने विशाल स्थापना समारोह की तैयारियाँ शुरू कर दीं। मूर्तियाँ आ गयीं थीं। उनके खास आभूषण और गहने भारत से स्वयं पूज्य स्वामीजी लेकर आए और प्रत्येक गर्भगृह और वेदिकाओं को सजाने की तैयारियाँ शुरू हो गयीं, जहाँ मूर्तियों की स्थापना होनी थी। उत्साह और भक्ति ने समुदाय को भर दिया था, सभी सदस्य खुद को और अपने मंदिर को भी देवताओं की प्रतिष्ठापना के लिए तैयार कर रहे थे। मंदिर न केवल फ्रेम की हुई तस्वीरों, शंखों, अगरबत्तियों और दियों और भक्ति की जगह है, बल्कि वास्तविक देवताओं, प्रभु के विग्रहों का भी घर है, इन मूर्तियों को प्राण-प्रतिष्ठा के बाद पूजन हेतु तैयार किया जाना था।

आधिकारिक तौर पर वर्ष 1984 की रामनवमी से स्थापना समारोह शुरू हुआ। नौ दिनों के लिए हिंदू कैलेंडर के सबसे पवित्र

दिनों में से इस अवसर पर पूज्य स्वामीजी ने समुदाय को स्थापित किए जानेवाले हर देवता और प्रत्येक यंत्र के लिए लाखों मंत्र जप करवाए। मंदिर प्रांगण में प्रत्येक रविवार को चलनेवाले स्कूल के बच्चों ने अपनी कॉपियाँ मंत्रों से भर लीं और उनको कई दिनों तक कई बार लिखा। इन कॉपियों को बाद में गर्भगृह में हरेक मूर्ति के नीचे पीठिका के रूप में रखा गया।

दिनांक 12-13 मई 1984 को वास्तविक प्राण-प्रतिष्ठा का दिन था, जिसमें पत्थर की इन सुंदर मूर्तियों में दिव्य प्राण प्रतिष्ठा की गयी और ये पत्थर की मूर्तियों से दिव्य जागृत देवता हो गयीं। कई पड़ोसी शहरों से कुल मिलाकर 2000 भक्तों ने इसमें भाग लिया। यहाँ तक कि भारत से भी लोग आए। पूज्य स्वामी सदानंद जी, पूज्य आचार्य सुशील मुनिजी, पूज्य आचार्य चित्रभानुजी, पूज्य संत केशवदास, पूज्य स्वामी अर्जुन पुरी जी, पूज्य स्वामी सच्चिदानंद जी, (लोटस टेंपल) और पूज्य स्वामी चिदानंदजी (पूज्य स्वामीजी) ने इस मौके पर उपस्थित होकर समारोह की गरिमा बढ़ायी। विख्यात भजन सम्राट श्री अनूप जलोटाजी विशेष रूप से अपनी संगीत टीम के साथ पधारे।

स्थापना समारोह में संतों के प्रेरणादायक सत्संग के अलावा मशहूर गायक श्री अनूप जलोटा जी के भजनों ने पूरे भक्त समाज को मोहित कर दिया। वह इस घटना को याद करते हुए बताते हैं, 'आम तौर पर कहीं भी कार्यक्रम से पहले मैं कुछ शर्तें रखता हूँ, लेकिन जब मैं ने सुना कि पूज्य स्वामीजी मंदिर निर्माण में सम्मि-लित हैं, तो मैं ने सारी शर्तों को भूल कर अमरीका आने के लिए अपनी सहमति दे दी। पूज्य स्वामीजी मेरे मार्गदर्शक भी हैं, और मेरे ज्येष्ठ भ्राता भी...हम दोनों का रिश्ता विशेष है।'

स्थानीय इलाक़े के पार्षद थॉमस शुएर्गर भी आए और पिट्सबर्ग के मेयर माइकल लिंच का संदेश लाए। यहाँ के प्रसिद्ध अख़बार पिट्सबर्ग पोस्ट-गैजेट ने रिपोर्ट करते हुये लिखा कि, 'पिट्सबर्ग, मनरोविल में नए हिंदू मंदिर का उद्घाटन एक मील का पत्थर है। यह भारत के विभिन्न धर्मों को एक छत के नीचे लाने का अद्भुत प्रयास है। यह मानवीय संबंधों की जीत का भी उत्सव है...यह हिंदू मंदिर में संलग्न विभिन्न संप्रदायों के लिए ही केवल एक उपयोगी संदेश नहीं है, बल्कि दूसरे विभाजित धार्मिक समुदायों के लिए भी एक प्रेरणा देनेवाला संदेश है।'

नाम परिवर्तन

स्थापना के बाद जिसमें मंदिर का नाम अब भी हिंदू टेंपल ऑफ नॉर्थ अमरीका ही था, हिंदुओं और जैनों ने सोचा कि उनके गहरे संबंध को विधिपूर्वक एकात्मता का स्वरूप दे दिया जाए। अत: पूज्य स्वामी जी के मार्गदर्शन एवं प्रेरणा से **1 जून 1986 को, हिंदू टेंपल ऑफ पिट्सबर्ग आधिकारिक तौर पर "हिंदू-जैन टेंपल ऑफ पिट्सबर्ग" बन गया।**

यह नाम-परिवर्तन दोनों ही आस्थाओं के अंतर को रेखांकित करने के लिए नहीं था, बल्कि दुनिया को यह दिखाने के लिए था कि दोनों परंपराएँ एकता में प्रतिष्ठित हैं। समुदाय के एक जैन नेता कहते हैं, 'हम यह नाम इसलिए भी चाहते थे ताकि लोग जब भी यहाँ से गुज़रें और यह साइनबोर्ड देखें, तो उन्हें पाता लगे कि यहाँ पास ही में एक जैन मंदिर भी है, जहाँ वे पूजा कर सकते हैं। हम सभी पड़ोसी राज्यों में रहनेवाले भारतीय भइबहनों को प्रेरित करना

चाहते थे कि जैनों को एक हिंदू मंदिर में पूजा करने की अनुमति मात्र नहीं है, बल्कि इस सुंदर दिव्य भवन में एक पूर्ण हिंदू मंदिर और एक पूर्ण जैन मंदिर है।'

उन्होंने पूज्य स्वामीजी का इस प्रकरण पर निर्देश माँगा। पूज्य स्वामीजी ने नाम-परिवर्तन को आधिकारिक बनाने के लिए उनका उत्साह बढ़ाया, क्योंकि उन के विचार से इससे जैनियों में भी मंदिर में बराबर की मान्यता का भाव आता और वे केवल आन्तर्मन से ही नहीं बल्कि नाम से भी जुड़कर बराबर हो जाते, एक हो जाते। जैन समुदाय के एक नेता और सिविल इंजीनियर विनोद डोशी बताते हैं कि यह सब 'केवल पूज्य स्वामीजी की दूरदृष्टि और आशीर्वाद से ही संभव था... मैं आजतक कभी किसी ऐसे संत से नहीं मिला था, जो इतना मुक्त और उदार हो। उनके इस स्वभाव ने हमें एकता के सूत्र में सदा के लिए बाँध लिया।'

हिन्दू मंदिर के साथ "जैन" शब्द जुडने से मंदिर को और अधिक प्रतिष्ठा और अद्वितीयता प्राप्त हुयी। फिर भी जैसे किसी भी समुदाय में किसी परिवार की तरह ही मतभेद भी होते हैं, चरित्र, प्रकृति और विचार में अंतर होना भी स्वाभाविक है। यद्यपि, मंदिर समुदाय के अधिकांश सदस्यों ने अधिकृत नाम-परिवर्तन का स्वागत किया, लेकिन कुछ विरोधी तो हर जगह होते ही हैं। दोनों ही समुदायों में से कुछ सदस्यों ने दशकों तक साथ रहने और पूजा करने के बावजूद भी यही समझा कि दोनों ही मत एक छत के नीचे नहीं रहने चाहिए। एक अस्थायी साइनबोर्ड लगाया गया... जब कि 'हिंदू-जैन मंदिर' लिखा हुआ स्थायी साइनबोर्ड बनाने के लिए दिया गया था। एक दिन सुबह-सुबह जब पूज्य स्वामीजी मंदिर के बाहर टहलने गए तो उन्होंने देखा कि किसी ने जैन लिखा हुआ

हिस्सा हटा दिया है और अब वह केवल 'हिंदू' मंदिर लिखा नज़र आ रहा है। उन्होने भक्तों के आने से पहले उस बोर्ड को खुद ही सुधार दिया। कुछ दिनों के बाद उन्होंने 'हिंदू' वाले हिस्से को ज़मीन पर पाया और उसी तरह चुपचाप उसकी भी मरम्मत कर दी। परंतु बाहर किसीसे भी उसकी चर्चा नहीं की ताकि समाज में एकता का भाव बना रहे।

प्राण-प्रतिष्ठा समारोह

प्राण प्रतिष्ठा का अर्थ

एक हिंदू मंदिर दिव्य ऊर्जा और शक्तियों से भरा हुआ एक पवित्र स्थान है। हर मंदिर के गर्भ गृह में देवता होते हैं, जिसे हम पूजते हैं और झुकते हैं। लेकिन, इन मूर्तियों को, प्रतिमाओं को हम ईश्वर की तरह क्यों पूजते हैं? वे कैसे दिव्य चरित्र को धारण करते हैं? इसका उत्तर है...प्राण-प्रतिष्ठा समारोह! प्राणशक्ति वह दिव्य चेतना है, जिसकी वजह से हम जीवित हैं। हमारे जीवन के अंतिम समय में ऐसा कौन सा तत्व चला जाता है, जो हमें जीवंत व्यक्ति से एक मृत शरीर में बदल देता है? वह है प्राण। हमारी मृत्युशय्या पर, हम एक पुरुष, महिला या पिता माता रहते हैं, लेकिन जैसे ही हमारे प्राण निकलते हैं, हम निर्जीव शरीर बन जाते हैं। प्रतिष्ठा का अर्थ होता है- स्थापित करना। इसीलिए, प्राण-प्रतिष्ठा का अर्थ वह पवित्र समारोह होताहै, जिसके द्वारा जीवन की चेतना का बलस्रोत, किसी मूर्ति में प्रस्थापित किया जाता है, मूर्ति में प्राण फूँककर उसे ऊर्जासे भरपूर देवता बनाते हैं।

लोग कहते हैं कि हिंदू मूर्ति-पूजक होते हैं। यह प्लास्टर या सं-

गमरमर या पत्थर की मूर्ति नही है, जिसे हम पूजते हैं... बल्कि यह तो ईश्वर की विद्यमानता है जिसे मूर्ति में प्रतिष्ठापित किया जाता है, उसके बिना यह केवल मूर्ति होती है, जिसका रंग-रूप किसी शो-रूम में भी देखा जा सकता है...। हमारी मानवीय आँखें दिव्यता को साक्षात पकड़ सकतीं, ईश्वर दयालु और करुणावान होता है... वह हमारे देवताओं की मूर्तियों को दिव्य चेतना से भरते हैं और उसे इन मूर्तियों के ज़रिए पूजने का अवसर हमें प्रदान करते हैं।

मंदिर के देवी-देवता दिव्यता की ओर एक झरोखे की तरह होते हैं। उनके विग्रह पर अपनी आँखें केन्द्रित कर हम उस परम सत्य की झाँकी देख पाते हैं। जिस तरह हम एक दूरबीन के माध्यम से आकाशगंगा में स्थित नक्षत्र और ग्रहों को देख सकते हैं, उसी प्रकार मूर्ति के दर्शन में हम प्रभु की दिव्यता का दर्शन करते हैं।

प्राण-प्रतिष्ठा की परंपरा और कर्मकांड आगमिक ग्रंथों के पूरी सतर्कता से किए जाते हैं। प्रतिष्ठापाना से पूर्व वैदिक शिक्षा में प्र-शिक्षित आचार्य पूजक विशिष्ट मंत्रों से पूजा करते हैं, जिसके ज़रिए किसी वस्तु में दिव्य जीवन और ऊर्जा का आवाहन किया जाता है।

किसी को आश्चर्य हो सकता है कि आखिर किसी पत्थर, मिट्टी या संगमरमर में किस तरह प्रभु का प्रवेश हो सकता है। हालाँ कि, यदि सर्वोच्च सत्ता की उस मूर्ति में उपस्थिति नहीं भी होती, केवल एक अंश ही पत्थर में जाता है, तो भी वह दिव्य हो जाएगी। अनंत का एक अंश भी अनंत है। इसीलिए, अनंत दिव्यता का एक छोटा हिस्सा भी अनंत ही है।

यह मंत्र और कर्मकांड उस कलाकार से शुरू होते हैं, जो पत्थर तराशता है। वह कोई सामान्य कलाकार नहीं होता। वह तो ईश्वर का भौतिक स्वरूप गढ़ने वाला एक कलाकार है। मूर्ति बनाने से

पहले और उसके दौरान भी वह पूजा करता है। वह अपने दिमाग में उस देवी या देवता की छवि रखता है, जिसे वह खोदता है और उस पर ध्यान करता है। वह प्रभु से प्रार्थना करता है कि प्रभु उसकी मूर्ति में आकार बसें। उसका काम करने का शिल्प कक्ष किसी आर्ट स्टूडियो-सा नहीं बल्कि किसी मंदिर-सा पवित्र लगता है। इसीलिए, पहले पल से ही पत्थर को आदर और पूज्य भाव से देखा जाता है, वैसा ही सम्मान दिया जाता है, ताकि वह प्रभु की असीम ऊर्जा को स्वयं में प्रतिष्ठित कर सके।

जब मूर्तियाँ बन जाती हैं और मंदिर में ले जायी जाती हैं तो विशिष्ट प्राण प्रतिष्ठा कार्यक्रम होता है, जो पाँच दिनो तक चलता है। इस समय में असंख्य कर्मकांड और विधियाँ सम्पन्न की जाती हैं, जो पवित्र ग्रंथों के अनुसार होती हैं और उस दौरान पवित्र मंत्रों का जप और गान होता है। इस कठिन और विस्मयपूर्ण कर्म कांड के बाद ही मूर्तियाँ प्राणवंत हो जाती हैं और उनमें दिव्यता का संचार होता है। इस समय से वह मूर्ति मात्र नहीं रह जातीं। वे दिव्य हैं। इसके बाद हम उस पत्थर या कोई भी सामग्री का उल्लेख नहीं करते, जिससे वे बने हैं। वे पवित्र हो जाते हैं, साक्षात प्रभु हो जाते हैं और अब वे केवल सर्वोच्च शक्ति का साकार विग्रह मात्र हैं। वे अब संगमरमर नहीं हैं। वे दिव्य हैं। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं, 'मेरे किसी भी स्वरूप को यदि भक्त सच्ची श्रद्धा से पूजता है, भजता है, तो मैं उसी स्वरूप में आ जाता हूँ- देवता के या मेरे ही स्वरूप के किसी अन्य विग्रह में- किसी को भी उसी रूप में मुझे पूजना चाहिए। मैं प्रत्येक जीव में रहने के साथ ही मेरे निराकार और साकार रूप में... दोनों ही में रहता हूँ।'

जब मूर्तियाँ दिव्य चेतना से भर जाती हैं, तो मंदिर जीवंत हो

जाता है। देवता मंदिर की आत्मा बन जाते हैं और वह भवन उनका शरीर। हमसे लोग पूछते हैं कि हमें देवताओं और मंदिर की क्या जरूरत अगर ईश्वर सर्वव्यापी है? अधिकांश लोगों के लिए उस अव्यक्त, सर्व-व्यापी, सर्व-स्वरूप सर्वोच्च सत्ता को देखना मुश्किल है। हमारे लिए अपना ध्यान और प्रेम उनकी साकार मूर्ति पर केंद्रित करना आसान है। प्रभु के अव्यक्त और सर्वव्यापी निराकार स्वरूप के सामने अपने भावों को प्रकट करना आसान नहीं होता है...इस की तुलना में, प्रभु के प्राणप्रतिष्ठित विग्रहपर ध्यान लगाना और अपनी भावनाओं को व्यक्त करना कहीं अधिक सरल होता है। प्राण-प्रतिष्ठा के जरिए और अपनी आस्था व श्रद्धा के बलपर वह मूर्ति जीवंत हो जाती है... वही बन जाती है। प्रेम और विश्वास से ऐसी मूर्ति को पूजने पर हम उस प्रभु के श्रीचरणों में ही पहुँच जाते हैं।

जब हम अपने घरों के लिए बिजली चाहते हैं, तो हम किसी निर्गम केंद्र पर उसका प्लग लगाते हैं। वह प्लग मुख्य पावरहाउस से जुड़ा होता है। हमें सीधा पावरहाउस में जाकर अपना कंप्यूटर या मिक्सर नहीं जोड़ना या लगाना होता। बिजली की लाइनें बिछी होती हैं, हमारे व्यक्तिगत घर उससे जुड़े होते हैं। हमें केवल अपने उपकरण को जोड़ना होता है, यदि हम बिजली चाहते हैं तो। प्राण प्रतिष्ठा समारोह को वैसे ही समझें कि मूर्ति को चेतना से जोड़ दिया गया है। पवित्र विधियाँ, पूजा और मंत्र उस निपुण विशेषज्ञ की तरह हैं, जिनसे बिजली जोड़ी जाती है। जब हम दिव्य से जुड़ना चाहते हैं तो हम सीधा मंदिर जाते हैं और उस पावरहाउस से अपने आप को जुड़े पाते हैं।

पूज्य स्वामीजी के लिए यह महत्वपूर्ण था कि कोई भी नाम की पट्टिका के साथ हुई इन घटनाओं के बारे में न जाने। एकता

के प्रकाश में जब पूरा समुदाय आनंद ले रहा है... कुछ छुटपुट घटनाओं, कुछ विरोधियों और कुछ दो एक लोग, जो संकटों और बाधाओं के आगे नहीं देख पाते, ऐसे लोगों को समुदाय की एकता के प्रकाश को किसी काली छाया से ग्रहण लगाने नहीं दिया जा सकता... इसीलिए, उन्होंने इन घटनाओं का जिक्र भी किसी से नहीं किया।

पूज्य स्वामी जी का लक्ष्य भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिकता का एक केंद्र तैयार करना और भारतीय समाज की एकता था। वे जानते थे कि यदि उन्होंने समाज को दिक्कतों और मतभेदों पर ध्यान केंद्रित करने दिया, तो यह मतभेद साधन और योजना को, दोनों को नुकसान पहुँचाएगा... लक्ष्य को दूर करेगा। पूज्य स्वामीजी शांत रहे, लेकिन अपने लक्ष्य के प्रति एकाग्र और सुस्पष्ट... उन्होंने कभी बाधाओं को महत्व नहीं दिया, न ही उन्हें अपने रास्ते का रोड़ा बनने दिया...

"यदि हम दिव्य उदाहरण बनते हैं, तो दूसरे हमारा अनुसरण करेंगे"

फिर भी, पूज्य स्वामी जी घटनाओं के बारे में सोचते रहते कि आखिर क्यों ऐसी घटनाएँ बनतीं हैं? यदि हिंदू और जैन भक्तिपूर्वक अपने इष्ट दिव्य स्वरूपों की पूजा करेंगे, तो कोई भी कलह कैसे हो सकती है? अपनी आंतरिक जिज्ञासा के जवाब में एक रात जब सब कुछ बंद हो गया था, तो उन्होंने मंदिर के दरवाजोंसे गर्भगृह में

झाँका। उनको सब कुछ शांतिपूर्ण लगा। देवता शांत थे और उनके मंदिरों में शांति थी। दूसरी रात्रि, सुबह के 1 बजे वे फिर से रात के अंधेरे में देखने गए। सब कुछ फिर से शांतिपूर्ण था। उसके बाद के हफ्तों में वह कई रातों तक मंदिर में घूमते रहे। कभी भी उन्हें शांति, ऐक्य और संवाद के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला।

समुदाय के अगले बड़े समारोह में उन्होंने अपने प्रवचन में इसका उल्लेख किया।

मैंने सोचा कि कहीं ऐसा तो नहीं कि जब सब घर चले जाते हैं, और जब मंदिर के दरवाजे बंद हो जाते हैं, बत्तियाँ बंद हो जाती हैं तो शायद भगवान कृष्ण और महावीर अपने सिंहासन से उतरकर मंदिर के फर्श पर लड़ना शुरू कर देते हों। शायद वे चिल्लाते हों, लड़ते हों या और एक-दूसरे से शिकायत भी करते हों कि आप यहाँ कैसे?... पर मैं आज आपको विश्वासपूर्वक बता सकता हूँ कि चाहे दिन हो या रात के किसी भी समय आप देखें, हमारे देवता शांत, बिल्कुल शांति से बैठे होते हैं। जब प्रकाश नहीं होता, जब कोई नहीं देख रहा होता, तब भी वे साथ में शांतिपूर्वक होते हैं। यदि हमारे देवता एक कमरे में शांतिपूर्वक रह सकते हैं, तो हम क्यों नहीं? यदि हमारे देव प्रेम और आदर के साथ एक-दूसरे के साथ हैं, तो हम क्यों आलोचना, निंदा और नुकसान पहुँचाने पर कई बार उतारू हो जाते हैं? क्या हमें प्रभु के आदेश के अनुसार नहीं चलना चाहिए?

किसी परिवार के मुखिया की ही तरह, पूज्य स्वामीजी ने समाज की एकता, घनिष्ठता, संतुलन, सद्भाव और समभाव को बनाए रखने के लिए अनवरत सेवा की और किसी भी तरह के मतभेद को जड़ पकड़ने से पहले ही उखाड़ फेंका। कुछ एक विरोधी स्वरों को तूल न मिलने से वे धीरे-धीरे खुद ही बुझ गए। आज लगभग

४0 वर्षों से भी अधिक समय से वहाँ प्रेम, भाईचारा और हिंदू-जैन सौहार्द के अलावा और कुछ भी असन्तोष नहीं दिखता है। यह शायद दुनिया का पहला मंदिर है, जहाँ श्वेतांबर और दिगंबर एक साथ पूजा करते हैं और यह विश्व का आदर्श हिंदू-जैन मंदिर भी है।

एक बार एक विख्यात आध्यात्मिक व्यक्ति मंदिर में आयीं...। पूज्य स्वामीजी तब ऋषिकेश में थे और व्यक्तिगत तौर पर उनकी सेवा नहीं कर सके। वह जब मंदिर के केंद्र में खड़ी हुईं और पहले लक्ष्मी-नारायण, फिर राधा-कृष्ण, फिर राम परिवार, फिर शिव-पार्वती, फिर जैन मंदिर, फिर यज्ञ कुंड को देखा तो ... तो वह चक्कर आने और सिरदर्द की शिकायत करने लगीं। उन्होंने अपने प्रवचन में कहा, 'लगता है, मैं बेहोश होनेवाली हूँ...यह मंदिर मुझे बीमार बना रहा है। एक तरफ यहाँ रजोगुण है, दूसरी तरफ तमोगुण का विग्रह और तीसरी तरफ सतोगुण दिख रहा है। ये सभी एक साथ और एक जगह नहीं हो सकते हैं। जिसने भी इस तरह से मंदिर को बनाने का सुझाव दिया है, वह ज़रूर ही नर्क में जाएगा।'

जब यह घटना पूज्य स्वामीजी को बतायी गयी, तो उन्होंने हँसते हुए कहा, 'यदि मुझे एकता का मंदिर बनाने के लिए नर्क में भी जाना पड़े, तो भी मैं तैयार हूँ। मैं तो इस तरह के पूर्वाग्रह के प्रति चिंतित हूँ। मैं भाइयों और बहनों के बीच की दीवारों को लेकर चिंतित हूँ। मैं ऐसे किसी भी भेदभाव भेदभाव को लेकर चिंतित हूँ । मैं नर्क के बारे में चिंतित नहीं हूँ। हम यदि नर्क में गए तो चिंता न करो। हम वहाँ भी हिंदू-जैन मंदिर बनाना शुरू कर देंगे...!' भक्तगण उनका यह उत्तर सुनकर दंग रह गए। सब की शंकाओं का समाधान हो गया। आज भी सब लोग मिलकर उस दिव्य एकता को कायम रखे हुये हैं।

अनुष्ठान

वर्ष 1985 में जबरदस्त ठंड पड़ी थी। अपने जीवन में पहली बार स्वामीजी ने इतनी बर्फ देखी थी। कई जाड़े उन्हों ने पिट्सबर्ग में बिताए थे, परंतु तरह की बर्फ उन्होंने कभी नहीं देखी थी, जैसा 1985 की ठंड में गिरी। एक भक्त को लिखी चिट्ठी में वह कहते हैं, 'हर तरफ बर्फ है, और कुछ भी नहीं। छतों पर बर्फ, कार पर बर्फ, पेड़ों पर बर्फ, इंच-इंच ज़मीन पर बर्फ। मैं सोचता हूँ कि यह धरती पर बर्फ है या धरती ही बर्फ की है...।

...मैं सचमुच बर्फ से ढँके इन पेड़ों को देखकर रोमांचित हूँ। पि-ट्सबर्ग आश्रम बहुत सुंदर लग रहा है....बिलकुल उस उत्तुंग कैलाश पर्वत की तरह लग रहा है, जो अभिभूत कर देनेवाले हिमालय में अवस्थित है। इस बर्फ सी सफेद पवित्रता में ढँका आश्रम एक अद्भुत अनुभव है... शांति और समन्वय...प्रेम... एक साथ। ओह... कितना सुंदर। इस आंतरिक और बाह्य सुंदरता से प्रेरित होकर मैंने 40 दिवसीय अनुष्ठान करने का निर्णय लिया है, मैं मौन रहूँगा जनवरी के पहले सप्ताह से फरवरी तक।'

और, उन्होंने यही किया। 1986 की जनवरी और फरवरी में स्वामीजी ने 40 दिवसीय गायत्री अनुष्ठान का आयोजन मंदिर पर किया। वे किसी से बोलते नहीं थे और पूरी तरह प्रभु की भक्ति में लीन थे। समुदाय के सदस्यों ने उस दौरान अनुभव की हुई दिव्य ऊर्जा का वर्णन किया है, जो उनके अनुष्ठान के समय होते थे। एक सदस्य ने कहा, 'हालाँ कि, हमने पूरे 40 दिनों तक उनके दर्शन नहीं किए और हमें उनकी बेइन्तहा याद आयी, अद्भुत आध्यात्मिक

तरंगें हमें महसूस हुईं। मंदिर परिसर में प्रवेश करने के साथ ही लगता था कि कुछ अपूर्व घटित हो रहा है यहाँ...।'

अनुष्ठान से निकलते ही, जब उनका भक्तों ने प्रेमपूर्वक स्वागत किया, हरिभाई पटेल ने उन्हें श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया तो पूज्य स्वामीजी नेदेखते ही कहा, 'केम छो, हरिभाई?' पूज्य स्वामीजी की मातृभाषा हिंदी है, वे संस्कृत पढ़े हैं ...उन्होंने अपनी किशोरावस्था और जवानी पंजाब और हरियाणा एवं विभिन्न स्थानों में गुज़ारी है। उनका राजस्थान के मारवाड़ी लोगों से भी गहरा संबंध रहा है। इसीलिए वे हिंदी, संस्कृत, पंजाबी और मारवाड़ी तो धाराप्रवाह बोलते हैं, लेकिन गुजराती? वर्ष 1986 के बाद के दशक में उन्हों ने गुजरात और गुजरातियों के बीच काफी समय गुज़ारा है। लेकिन 1986 में गुजरात से उनका भौतिक संपर्क कम था। वे गुजरात आधे दर्जन से कम ही बार गए थे। फिर भी, 40 दिवसीय अनुष्ठान से जब वे निकले तो पहले शब्द गुजराती भाषा में प्रस्फुटित हुए!

"अगर आप जीवन में कभी धक्का नहीं खाना चाहते, तो अपने हृदय और घर में एक आध्यात्मिक कोना जरूर बनाएँ"।

आश्चर्यचकित गुजराती भक्तों ने कहा, 'ठोके राखो (बोलते रहिए)'..और, वे बोलते रहे। आज उनकी गुजराती इस कदर परिष्कृत है कि कई लोग तो उन्हें गुजराती ही समझ लेते हैं। वे कहते हैं कि यह तो अनुष्ठान के दौरान हुआ...'मेरे कमरे में पूज्य मोरारी बापू द्वारा गुजराती भाषा में लिखी गयी कथा की पुस्तक थी- रा_

मचरितमानस की। जब मैं पूजा नहीं कर रहा होता था, तो कभी कभी ग्रंथ पढ़ लेता था। एक दिन मैंने रामचरित मानस उठाया और बस पढ़ना शुरू कर दिया। बिना किसी कठिनाई के, जैसे यह मेरी मातृभाषा हो।'

पूज्य स्वामीजी मानवीय परियोजनाओं के साथ और दुनिया के भक्तों के साथ जैसे जैसे और अधिक जुड़ते गए, वे अब महीनों या वर्षों का मौन नहीं ले सकते थे। लेकिन 40 दिवसीय अनुष्ठान उनकी वार्षिक चर्या का हिस्सा बन गया और वह उन्हें अमरीका में और बाद में ऑस्ट्रेलिया में भी करते रहे...जहाँ उनके आशीर्वाद और प्रेरणा से दुनिया के पहले भूमिगत मंदिर का निर्माण हुआ। यह मंदिर सिडनी, ऑस्ट्रेलिया में है।

उपनयन संस्कार

हिंदू-जैन मंदिर एक जगह है, जहाँ लोग रोज़ की पूजा और आरती के लिए, साप्ताहिक शिवाभिषेक या हनुमान चालीसा पाठ, छुट्टी या त्योहारों में या फिर जीवन के बडे आनुभविक अनुष्ठानों और कर्म-कांडों के लिए आते हैं। हिंदू धर्म में जन्म से मृत्यु तक 16 संस्कार हैं। उसमें बच्चे के जातक कर्म से लेकर अंतिम संस्कार तक शामिल हैं। इन संस्कारों में सबसे महत्वपूर्ण उपनयन संस्कार है, जिसे पारंपरिक तौर पर वैदिक शिक्षा के प्रारंभ के लिए किया जाता था।

जैसे तरल तार्किक व्यवस्था क्रम व्यक्तिगत अभिवृत्ति पर आधारित होने लगा वैसे व्यवस्था स्थायी और जड़ बन गयी, जन्माधारित पदानुक्रम ने रूढ़ व्यवस्था ले ली, उपनयन संस्कार ने अधिक महत्व ले लिया। यह एक बच्चे के चंचल बचपन से

गंभीर आध्यात्मिक अध्ययन की ओर जाने का संस्कार है, और यह जातियों के विभाजन को भी दिखाता है। ब्राह्मण बालक, जिनका पुरोहित बनने या ग्रंथों के अध्ययन का शौक नहीं है, वह भी इस पवित्र समारोह का हिस्सा बनते हैं। इसे एक भौतिक प्रतीक, अर्थात् तीन या छह धागों के उपनयन को पहनने के साथ स्थायी बनाया जाता है।

एक दिन, मंदिर के एक भक्त ने पूज्य स्वामीजी से पूछा कि क्या उनकी बेटियों के लिए उपनयन संस्कार किया जा सकता है? पूज्य स्वामीजी ने कहा, 'कोई बात नहीं। अवश्य हो सकता है।' कई किशोरियों के साथ एक तथाकथित अन्य जाति के बालक को भी उसी समारोह में उपनयन की दीक्षा दी गयी। बालक दरअसल किसी और मंदिर से संबद्ध था, जहाँ उसे संस्कार के लिए प्रोत्साहन नहीं दिया गया। समर्थन की कमी देख, वह दूसरे मंदिर को छोड़कर उत्साहपूर्वक यहाँ हिंदू-जैन मंदिर में आ गया। यह उपहार भी पूज्य स्वामीजी की मौजूदगी से ही मिलता है, कहीं भी वे जाते हैं, सभी को प्रेरित करते हैं...। उनके दर्शन और निर्देश के तहत हिंदू-जैन मंदिर एक ऐसी जगह बन गया है, जहाँ प्रभु की पूजा शब्दों से भी होती है और आत्मा से भी होती है...

उपनयन संस्कार

उपनयन संस्कार को यज्ञोपवीत भी कहते हैं, या अंग्रेजी में से-क्रेड-थ्रेड सेरेमनी। यह एक महत्वपूर्ण संस्कार है और इससे एक नया जन्म होता है। पारंपरिक तौर पर, यह समारोह तब होता था, जब बालक अपना घर, अपने अभिभावकों का साथ छोड़ कर गुरु

के घर अध्ययन के लिए जाता था। अगले कुछ वर्षों तक गुरु के निर्देशन में बालक ग्रंथों के पारायण के साथ ही धार्मिक जीवन के प्रमुख आयामों का अध्ययन करता था। वह ध्यान, प्राणायाम और योगासन भी सीखता था। उप का अर्थ होता है- नजदीक और नयन का मतलब होता है- ले जाना, इस तरह उपनयन का अर्थ हुआ वह संस्कार जिस से बालक को गुरु के पास भेजा जाता है।

आम तौर पर उपनयन बालक के आठवे वर्ष में होता है। यद्‌यपि, कुछ तो इसे पाँच वर्ष में भी ग्रहण करते हैं और कुछ 12 वें वर्ष में भी। यह उपनयन संस्कार जरूरी और पवित्र माना जाता है और अधिकांश परंपराएँ इसे बेहद जरूरी मानती हैं, भले ही इसमें कितनी भी देर क्यों न हो जाए।

यह रीति एक अवगाहन दिखाती है- एक चंचल, चुलबुला और शरारती बालक, बचपन छोड़ के ग्रंथों के अध्ययन की गंभीर दुनिया में प्रवेश करता है। वह छात्र न केवल अपने अभिभावकों के घर को ही छोड़ता है, बल्कि अपने अपरिपक्व और मुक्त बचपन को भी छोड़कर जिम्मेदारी, सावधानी और अध्यात्म के मार्ग पर कदम रखता है।

जनेऊ का पहनना एक जटिल, प्राचीन विधि है और इसके भी गहरे मायने हैं। इसमें असल में तीन पतले धागे होते हैं, जो एक साथ बन्धे होते हैं और कंधे से लेकर कमर तक पहने जाते हैं।

धागा बाँधता और एक करता है। यदि हम दो चीजों को साथ करना चाहते हैं, तो हम धागे का इस्तेमाल कर उन्हें बाँधते हैं। इसी तरह यज्ञोपवीत संस्कार समारोहपूर्वक और रीतिपूर्वक बच्चे को ईश्वर से बाँधता है। वैदिक समारोह का आयोजन बालक के हृदय को खोलने और उसे दिव्यता से जोड़ने के लिए होता है। हर बार,

जब बालक नीचे देखता है- नहाते, कपड़े बदलते और पूरे दिन- तो वह जनेऊ को देखता है, याद करता है- ओह, मैं तो दिव्यात्मा से बंधा हूँ। मैं उसका हूँ। मुझे उसी तरह व्यवहार करना चाहिए। जिस तरह राजा का बेटा, एक राजकुमार लगातार याद दिलाया जाता है कि उसे एक राजकुमार की गरिमा भूलनी नहीं चाहिए, उसी तरह जिस बालक को जनेऊ मिला है, वह लगातार याद रखता है कि वह दिव्य राजा ईश्वर की संतान है और उसे एक दिव्य, धार्मिक जीवन जीना है।

तीन धागों के अपने अनेक अर्थ हैं। एक मायने यह है कि वे तीन ऋणों- देव ऋण, पितृ ऋण और ऋषि ऋण को दिखाते हैं। वे पहनने वाले को याद दिलाते हैं कि किसी का जीवन वैसे ही फेंक देने के लिए नहीं है, बल्कि मैं तो दिव्य हूँ और मैं ऋषियों की संतान हूँ। मैंने कोई भी ज्ञान पाया है, तो संतों और ऋषियों की वजह से जिन्होंने ज्ञान को सुलभ बनाया। इसीलिए, यदि जिंदा हूँ और मेरे पास जो भी समझ है, तो मैं उनका ऋणी हूँ। इस ऋण को चुकाने का एकमात्र रास्ता है एक सत्यनिष्ठ, पवित्र जीवन जीना और मेरी साँसों और ज्ञान का उपयोग कर मानवता की सेवा करना।

जनेऊ के तीन धागे तीन गुणों- सत्, तम और रजस को भी दिखाते हैं। पहननेवाले को इन तीनों ही गुणों के ऊपर होना चाहिए और तीनों ही गुणों के जीवन को पार कर जाना चाहिए।

तीन धागों की गाँठ को ब्रह्मग्रंथि कहते हैं, जो दिव्यता की त्रिमूर्ति को दिखाता हैः ब्रह्मा (सर्जक), विष्णु (पालक) और शिव (संहारक) के ऐक्य को।

ग्रीष्म शिविर: समर कैंप

प्रारम्भिक दिनों में मंदिर समिति के सदस्य एक ऐसी जगह की ज़रूरत पर चर्चा कर रहे थे, जहाँ बच्चे गरमी की छुट्टियों में जा सकें, जहाँ वे न केवल हिंदू संस्कृति के बारे में सीखें बल्कि उसे जिएँ, अपनाएँ और आत्मसात करें। एक ऐसी जगह जहाँ अध्ययन शिक्षाप्रद, मनोरंजक और आनंददायी हो। उन्होंने तय किया कि मंदिर के बच्चों के लिए एक समर कैंप लगाया जाए और इरी झील जो पेंसिल्वेनिया, अमरीका में है, के तट पर लकड़ी के झोंपड़ी नुमा बने घर, डाइनिंग हॉल और खेल की सुविधा के साथ उन्होंने एक खूबसूरत जगह चुनी।

पूज्य स्वामी जी ने अपनी उपस्थिति से कैंप को गौरवान्वित किया और वातावरण को आनंद से भर दिया। वे बच्चों के साथ एक ही हो गए। उन्होंने बच्चों के साथ मिलकर भजन गाए, मंत्र पढ़े और गीत गाए, आरती की, साथ ही खूबसूरत प्राकृतिक दृश्यों के बीच उन्हें योग, प्राणायाम एवं ध्यान सिखाया तथा उनका मार्गदर्शन भी किया।

डॉक्टर रोहित अग्रवाल याद करते हैं, 'मैं पहला हिंदू-जैन मंदिर का समर कैंप कभी नहीं भूलूँगा, जिसमें स्वामीजी पधारे थे। वे एक युवा, आकर्षक व्यक्तित्व, ऊर्जावान और जोशीले व्यक्ति थे। अब तक जिन संतों को हमने देखा था उन सभी आध्यात्मिक गुरुओं से वे अलग थे। वे हममें से एक, अपने लगते थे...सरल, मित्रवत...। उन्होंने धार्मिक शिक्षाओं को आनंदप्रद बना दिया और हमारे चेहरों पर मुस्कान ले आए। हम उन्हें प्यार करते थे, उनका सम्मान करते थे। वे हमारे नायक थे, हमारे अग्रणी थे...।'

वासवीबेन पटेल बताती हैं जिस तरह पूज्य स्वामीजी ने सभी बच्चों को जप करना सिखाया, 'यह केवल कृष्ण, शिव या ईश्वर के किसी और नाम का जप नहीं था, बल्कि सभी को स्वामीजी ने 'नो प्रॉब्लम' का भी जाप सिखा दिया। सभी बच्चे अभी भी उनके 'नो प्रॉब्लम' मंत्र को याद करते हैं। यहाँ तक कि दशकों बाद आज भी जब कुछ भी मेरे अपने बच्चों के साथ होता है, तो वे खुद हमेशा कहते हैं- नो प्रॉब्लम मॉम... या नो प्रॉब्लम डैड... !'

समर कैंप की तरह ही संडे-स्कूल का भी मुख्य आकर्षण हमेशा पूज्य स्वामीजी ही थे। जब भी वह शहर में रहते तो इसमें हिस्सा लेते और बच्चों को प्रार्थना और भजन सिखाते, आरती गाते, ग्रंथों से कहानियाँ सुनाते और उनकी असंख्य जिज्ञासाओं का धैर्यपूर्वक जवाब देते। देवांशी पटेल याद करती हैं, 'मुझे याद है कि संडे स्कूल के दौरान, पूज्य स्वामीजी की दिनचर्या बहुत व्यस्त हो गयी और हम उन्हें साल में कुछ ही बार देख पाते। जब भी हमें उनके आने की सूचना मिलती, सभी बच्चे और अभिभावक इतने उत्तेजित होते कि संडे स्कूल में जिन्हें कभी नहीं देखा ऐसे बच्चे भी उस कार्यक्रम में दिखाई देते।'

मनुष्यों की तरह ही, भवनों को भी नियमित देखभाल की जरूरत होती है। वर्ष जैसे बीतते हैं, कुछ हिस्सों को मरम्मत की ज़रूरत होती है। साथ ही, मंदिर समुदाय भी बढ़ रहा था, दान राशि भी आई थी तो कुछ अतिरिक्त परियोजनाएँ भी शुरू हो गयी थीं। जैसे, पुरानी चर्च वाली इमारत में- जहाँ पुराना मंदिर और पूज्य स्वामीजी का निवास था... अब एक अस्थायी सामुदायिक केंद्र बना दिया गया, जहाँ नये मंदिर को पहाड़ के ऊपर खोल दिया गया। सभी भक्तों का पुराना सपना था कि एक सामुदायिक केंद्र हो, जहाँ

वाचनालय, कक्षाएँ और बड़े हॉल के साथ किचन और भोजनालय के लिए जगह हो। यह सपना 1998 में पूरा हुआ, जब नया सामुदायिक केंद्र शुरू हुआ जहाँ शादी-विवाह, एवं अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रम भी किए जा सकें।

23 जनवरी 1998 को जब जाड़े की तेज़ बारिश ने मंदिर का स्वागत किया, सदस्य इकट्ठा हुए। पूज्य स्वामीजी ने नए केंद्र के लिए भूमि पूजा की। मंदिर की नींव के लिए जब उन्होंने ज़मीन खोदी थी, उसेक लगभग 20 साल बाद उन्होंने नए केंद्र के लिए कुदाल चलायी! जिस कमरे में वे वर्षोंतक रहे थे, जिसे उन्होंने समुदाय के विरोध के बावजूद अपना बनाया था, समाज के लोग चाहते थे कि उनके लिए सुविधापूर्वक भक्तों के यहाँ व्यवस्था की जायेपर पूज्य स्वामीजी ने कहा कि मैं यहीं एक साधारण कमरे में रहकर समाज कि सेवा करना चाहूँगा।... उसके ठीक बाहर उन्होंने शिक्षा और संस्कृति के एक केंद्र के लिए आज कुदाल चलायी!

अध्याय पाँच

मुख्य बदलाव:
अध्यक्षता के पद का दायित्व

वर्ष 1986 में पूज्य स्वामीजी जब यूरोप में थे, परमार्थ निकेतन, ऋषिकेश से अचानक उनको एक अत्यंत असा-धारण और आवश्यक फोन आया... उनसे कहा गया कि पूज्य स्वामी सदानंदजी अस्वस्थ हैं और इसीलिए उनकी तुरन्त वापसी अनिवार्य है। उन्होंने दिल्ली की अगली फ्लाइट पकड़ी और ऋषिकेश, भारत पहुँचकर देखा कि पूज्य स्वामी सदानंदजी स्वास्थ्य ठीक नहीं है। एक महान आत्मा का शरीर भले ही अस्वस्थ था पर उनकी आध्यात्मिक ऊर्जा उतनी ही तेज़ और प्रखर थी! आत्मा का स्वास्थ्य उतना ही संपूर्ण और अनंत होता है... , यद्यपि इस आत्मा को धारण करनेवाला शरीर, वर्षों तक उसे ढोनेवाला वाहन देखने में जीर्ण-शीर्ण लगता है। पूज्य स्वामीजी जब पूज्य स्वामी सदानंदजी के बिस्तर के पास बैठे थे, तो उन्होंने पूज्य स्वामीजी

को परमार्थ के अध्यक्षपद का भार वहन करने हेतु भी चर्चा की। कई वर्षों से दुनिया भर में घूमने, प्रेरणा देने, मंदिर निर्माण का निर्देशन करने के बावजूद पूज्य स्वामीजी परमार्थ के सेवा कार्यों का भी निरीक्षण करते रहते थे। वे व्यक्तिगत तौर पर हो या टेलीफोन, टेलीग्राम या फैक्स के ज़रिए, वे सभी छोटे से छोटे या बड़े से बड़े हर निर्णय में शामिल थे। अब पूज्य स्वामी सदानंदजी महाराज के ब्रह्मलीन होने के बाद पूज्य स्वामी धर्मानंदजी महाराज उस व्यवस्था और भूमिका को अधिकृत करना चाहते थे। परमार्थ निकेतन आश्रम की सरल और सुचारु व्यवस्था हेतु पूज्य स्वामीजी सर्व सम्मति से परमार्थ निकेतन के आधिकारिक तौर पर अध्यक्ष नियुक्त किए गए।

अपने पहले मुख्य निर्णयों में एक निर्णय से अतिथि-कक्षों में अटैच बाथरूम बनवाकर उनका नवीनीकरण कराने का कार्य प्रारम्भ किया। इस से पूर्व, कुछ छुटपुट कमरों को छोड़कर, कोई भी कमरा संलग्न स्नानागार वाला नहीं था। सुबह 4 से 6 के बीच कोई भी तीर्थयात्रियों और अतिथियों को पानी का लोटा लिए आश्रम के पीछे जंगल में या गंगा तट पर जाते देखा जा सकता था। पूज्य स्वामी जी के इस कदम के पीछे दो कारण थे। पहला, विदेशों में काफी समय गुज़ारने के बाद वह समझ चुके थे कि विदेशी हों या देशी, जो लोग नगरों-महानगरों में रहे हैं, उनको संलग्न स्नानागार की आदत होती है। इसीलिए, उनके आराम और सुविधा के लिए उन्होंने सोचा कि बाथरूम को कमरे के साथ जोड़ना चाहिए, ताकि वे सुविधापूर्वक साधना एवं सत्संग कर सकें, तथा विशेष कर युवा पीढ़ी जो इन सुविधाओं के अभाव में होटलों में रहना पसंद करती

है, उनका ध्यान आश्रम कि ओर आकर्षित किया जा सके ताकि उनके जीवन में भी संस्कार आ सकें...।

दूसरे, वे जब माँ गंगा के तट पर किशोरावस्था में आए थे। गंगा जी ही उनकी दिव्य माँ थी। वह सुबह उठकर सबसे पहले उसी के पास जाते थे, जैसे छोटे बच्चे अपनी माँ की गोद में जाते हैं। उन्होंने जब देखा कि कुछ लोग नियमित तौर पर सुबह का शौच-कर्म गंगा के तट पर करने लगे हैं, तो वे समझ गए थे कि उनको कोई विकल्प तलाशना होगा। संलग्न स्नानागार से दो समस्याओं का निराकरण हो गया... एक, तो आनेवाले भक्तों की समस्या और परेशानी का समाधान हो गया और दूसरे, सुबह में माँ गंगा के तट पर होनेवाली गंदगी में कमी आयी।

दूसरा बड़ा बदलाव जो उन्होंने किया वह था आश्रम में मूलभूत सफाई की चर्या का नित्य नियम... कूड़ेदान मंगाए गए और कई जगहों पर रखे गए। सफाईकर्मियों की अतिरिक्त मंडली की नियुक्ति हुई और हिंदी और अंग्रेजी में कूड़ेदान का इस्तेमाल करने और गंदगी न फैलाने के निर्देश लिखवाए गए। जल्द ही, परमार्थ निकेतन ऋषिकेश के सबसे साफ स्थलों में से एक हो गया।

माना कि इस ज़मीं को गुलज़ार ना कर सके हम।
कुछ ख़ार (कांटे) तो कम हुए, गुज़रे जिधर से हम।।

ये बदलाव भले जितने भी अच्छे दिखें, लेकिन कार्यान्वयन के समय इन्होंने खासा विरोध भी झेला। ‘वह परमार्थ को अमरीका

बनाना चाहते हैं'- पुरातन पारंपरिकों की शिकायत थी, कि क्या ज़रूरत है इस सबकी? उनहों ने हर कमरे में और सोने के कक्ष के समीप बाथरूम होने पर अपनी प्रतिक्रियाएँ दी। परंतु, पूज्य स्वामीजी जानते थे कि तमाम आलोचना के बावजूद उनको आगे बढ़ते जाना है। उनका काम ईश्वर के सृजन की सेवा करना था। उनका जीवन मंत्र था---

...यानी, हम पूरी ज़मीन को भले ही उद्यान न बना सकें, लेकिन जहाँ से भी गुजरें, उस रास्ते के कुछ काँटे तो कम हो सकें... जिस से आगे आनेवालों का मार्ग सरल और सुविधापूर्ण हो सके...।

आप यह कलम नहीं हैं...

वर्ष 1988 में माताश्री और पिताश्री ने अपने दिव्य पुत्र के नक्शे कदम पर चलते हुये हिमालय की पहाडियों में अपनी पवित्र तीर्थ-यात्रा की शुरुआत की। उनकी यात्रा का उद्देश्य संन्यास नहीं था, न ही हमेशा के लिए उनको हिमालय में रहना था। बल्कि उन्होंने एक विशेष पवित्र तीर्थयात्रा का रुख किया... बद्रीनाथ धाम! चार धामों में से एक यह तीर्थ स्थली हिंदुओं के लिए अतिशय धार्मिक महत्व की है, खासकर वैष्णवों के लिए...परंपरा तो यह है कि इस पवित्र मंदिर में दर्शन से पहले व्यक्ति तप्त कुंड में स्नान करता है, शुचिर्भूत होकर फिर भगवान विष्णु के दर्शन करता है।

जोशीमठ और बद्रीनाथ के बीच का रास्ता संकरा है...केवल एकतरफा वाहनों के लिए ही चौड़ा है। इसीलिए, उस समय यह ऐसी व्यवस्था से चलता कि उत्तर की ओर बद्रीनाथ जानेवाला या दक्षिण को जोशीमठ जानेवाले रास्ते पर दरवाजा समय-समय पर बंद और

खोला जाता है। जब माताश्री और पिताश्री ने स्नान के बाद मंदिर में दर्शन कर लिए तो वे अपनी कार की तरफ बढ़े ताकि बद्रीनाथ से निकल सकें।

जैसे ही उनके कदम पुल पर पड़े जो उन्हें अलकनंदा से होकर मंदिर से दूर ले जाते और वह पार्किंग में पहुँचते, पिताश्री रुक गए, 'मुझे एक बार और स्नान करना है।' आखिरी दरवाजा बंद होने में समय था, तो माताश्री ने सहमति दे दी और वे तप्त कुंड तक वापस आए। वे तालाब में झुक गए और डुबकी लगायी। आँखें बंद किए हुए, आंतरिक या बाह्य स्पंदनों से दूर, वह पवित्र जल में खड़े थे, भगवान विष्णु का उत्तुंग मंदिर उनके सिर पर शोभायमान था। उन्होंने हाथ जोड़े हुए थे, सिर झुकाया हुआ था और धीरे से अपनी पत्नी को कहा, 'एक बार और दर्शन करना चाहता हूँ ।'

माताश्री ने कहा, 'ठीक है, लेकिन जल्दी कीजिएगा। कहीं ऐसा न हो कि वापिसी जानेवाला गेट बंद न हो जाए।' वह चुपचाप तप्त-कुंड से निकले, शरीर पोंछा और मंदिर की ओर चले। ऐसा लग रहा था, जैसे उनको कोई खींच रहा है, कोई अदृश्य हाथ जैसे उनको ले जा रहा है। माताश्री बताती हैं। आमतौर पर दर्शन कुछ क्षणों की बात है। चूँ कि, दर्शनार्थी लगातार बद्रीनाथ के बाज़ार और गलियों में लाइन लगाए रहते हैं, तो पुजारी उनको लगातार हटाते रहते हैं-चलो, चलो का शोर करते हुए, जबकि दर्शनार्थी जितनी देर संभव हो, मूर्ति के सामने रहने का प्रयास करते हैं।

दर्शन करके पिताश्री मंदिरसे निकले। चूँ कि दरवाजा बंद होने का समय करीब था, और अगर वे गेट बंद होने तक रुक गए होते, तो उनको बद्रीनाथ में ही एक और रात गुजारनी पड़ती, जिसके लिए न तो उनकी तैयारी थी, न ही बुकिंग। वह जैसे ही मंदिर से

निकले, पत्नी ने उनको कार की तरफ जल्दी से आने को कहा। 'बस, तप्त कुंड में एक और स्नान'- उन्होंने जवाब दिया कि आज एकदशी का पवित्र दिवस है, ऐसा अवसर फिर कब मिलेगा? ...और उनकी आवाज़ से पत्नी समझ गयीं कि किसी बहस या समझौते की गुंजाइश थी नहीं... उन्होंने तप्तकुंड में प्रवेश किया। .... तप्त कुंड के जल से निकली हुई भाप में खड़े रहकर भगवदगीता का पाठ किया.... उनके दोनों हाथ प्रार्थना में जुड़े हुए थे, धीरे धीरे अंधेरा हो रहा था...। पिताश्री के होंठ प्रार्थना में जुड़े थे, माताश्री ने देखा, जब उन्होंने अपनी आँखें खोलीं, अपना सिर धीरे से झुकाया और- हाथ जोड़े और प्रार्थना में खुले होंठों के साथ- धीरे से पानी में झुके और गीता का पाठ करते करते वहीं तप्तकुंडा के जल में ही लुढ़क गए। जब तक वह उन्हें और संभालतीं उनकी हृदयगति थम चुकी थी। जब वह भगवान का नाम ले रहे थे, तभी उनकी हृदय गति मंद पड़ी और जब वह कुंड में प्रार्थना मुद्रा में खड़े थे, तभी उनके प्राण निकल गए जिसने उनके निर्जीव शरीर को पानी में गिरा दिया। संक्षेप में... वहाँ कोई भी नहीं था- न डॉक्टर, न कोई पारिवारिक सदस्य और न ही कोई दर्शक- जो मानता कि वह डूब गए थे। उस घटना के विस्तृत विवरण से पता चलता है कि पिताश्री की आत्मा ने शरीर का साथ तभी छोड़ा, जब वह पूरी तरह चेतन, जाग्रत थे। वह ध्यान में थे और यह तो उनका निर्जीव शरीर था, जो ढला, गिरा और जिसे डाक्टरों ने बाद में जीवंत करने की कोशिश की।

परमार्थ का एक सह-आश्रम बद्रीनाथ में भी है- परमार्थ लोक। इसीलिए, यह बात बहुत तेज़ी से फैली कि 'परमार्थ निकेतन स्वामीजी' के पिताश्री गुज़र गए और जल्द ही खबर पूज्य स्वामीजी तक ऋषिकेश में भी पहुँच गयी।

'हम मृत शरीर को ऋषिकेश लेकर आ रहे हैं, उनकी अंतिम क्रिया के लिए।'- माताश्री ने कहा। पूज्य स्वामीजी ने माताश्री को पिताश्री की अंतिम क्रिया परमार्थ में ण कर सीधे घरपर ले जाने का सुझाव दिया। वर्ष 1975 में जब मुनिजी पीले वस्त्रों में ब्रह्मचारी बनकर गंगा में उतरे और वस्त्रहीन होकर बाहर निकल कर संन्यासी का वस्त्र धारण किया, तो उनका पुनर्जन्म हुआ था। माताश्री और पिताश्री का पुत्र संत नारायण मुनि गंगा में समा गया था, स्वामी चिदानंद सरस्वती, गंगापुत्र उसमें से बाहर निकला था। उस दिन से विश्व ही उसका परिवार था। जिस गाँठ ने उनको परिवार से बाँध कर रखा था, वह खुल गयी थी। वह बंधमुक्त हो गया था।

"'मैं' ही हमारी सारी समस्याओं की जड़ है। यह एक दीवार है, बाधा है- हमारे और दूसरों के बीच। मैं की दीवारों को गिराकर पुल बनाना सीखो। "

पिताश्री का अंतिम संस्कार करना बेवजह ही उनके रिश्तेदारों में पारिवारिक बंधनों को जगाता, वे अपेक्षा करते कि पूज्य स्वामीजी कुछ खास तरह से व्यवहार करें, जो उचित नहीं होता। पिताश्री के लिए उनकी विशिष्ट भावनाएँ और संवेदनाएँ थीं, क्योंकि उन्होंने एक तापसी युवक को समृद्ध आध्यात्मिक वातावरण दिया था। आज भी पूज्य स्वामीजी का हृदय उस व्यक्तित्व के लिए प्रेम से भरा है, जिसने उंगली पकड़कर उनको गुरु से मिलवाया था।

यद्यपि, इन भावनाओं में वह मोह या आसक्ति नहीं थी, जो सहज ही लोगों को अपने माँ-बाप से होती है। वह किसी पुत्र की भावनाएँ निर्मित नहीं कर सकते थे। अपने पिता के अंतिम संस्कार पर एक शोकग्रस्त पुत्र की भूमिका निभाना उनके लिए असंभव होता... उन्होंने अपनी माताश्री को विनम्रता पूर्वक कहा कि अंतिम संस्कार वहीं शहर में ही होना चाहिए, जहाँ सारे सगे-संबंधी आ सकें।

माताश्री इतनी आसानी से नहीं मानने वाली थीं। उन्होंने हरि-द्वार में पूज्य स्वामी धर्मानंदजी महाराज से जाकर मिली और उनके शिष्य यानी अपने बेटे के बारे में बताया कि वे ऋषिकेश में अपने पिता के अंतिम संस्कार की भी अनुमति नहीं दे रहे। पूज्य स्वामी धर्मानंदजी ने उनको पिताश्री का शरीर हरिद्वार आश्रम में लाने की आज्ञा दी तथा कहा कि अंतिम संस्कार के सारे इंतजाम करेंगे। पूज्य स्वामीजी को तब उनके गुरुदेव से एक फोन आया, 'तुम अपनी माँ को कैसे मना कर सकते हो? तुम अपने पिता का अंतिम संस्कार करने हरिद्वार आओगे।'

'महाराजजी। क्या संन्यास अवस्था में मेरे लिए यह उचित होगा?... आश्रम में आनेवाले हर व्यक्ति से अधिक वो मेरे पिता हैं क्या? क्या मैं हिमालय से अधिक उनका बेटा हूँ ?' -पूज्य स्वामीजी ने पूछा।

उनके गुरु को इन शब्दों के पीछे छिपे सत्य की गहराई अनुभव हुयी। हालाँकि, तब भी वह यकीन न कर सके कि वह बालक मुनिजी, संन्यास को इतनी गहराई तक आत्मसात कर चुका है। स्वामीजी ने आदेश दिया कि 'जब वे बद्रीनाथ से हरिद्वार आ रहे

हैं, कम से कम शवयात्रा में जाकर गंगा के उस पार रामझूला के पास माताश्री एवं अन्य लोगों से मिल लो।'

इस तरह पूज्य स्वामीजी अपनी माँ से कई वर्षों बाद मिले। लोग यह जानकर कि मृतक पूज्य स्वामीजी के पिता थे, काफी लोग वहाँ आ गए थे- उस महान आत्मा से आशीर्वाद लेने जो ऐसे भव्य व्यक्तित्व का पिता था। उनकी कार रुकते ही माताश्री रोते हुए उनकी बाँहों में आ गिरीं। जल्दी ही देखनेवालों की भीड़ लग गयी- जो बद्रीनाथ से आ रहे थे और जो ऋषिकेश में जुटे थे। माताश्री ने पूज्य स्वामीजी के कंधों से सिर उठाया और सीधा उनकी आँखों में देखकर कहा, ''रोना। तुम्हें रोना भी नहीं आ रहा है। तुम्हें इसका दुख भी नहीं कि तुम्हारे पिताश्री इस संसार से चले गए हैं" उन्होंने इस गंभीरता से उनको देखा कि लगा जैसे वह चुंबकीय तरीके से उनकी आँखों से आंसू निकाल लेंगी, पर वह नहीं हुआ।

"बस केंद्रित रहें। प्रतिक्रिया न दें। एक साक्षी मात्र रहें और फिर आप इसका जादू देखेंगे।"

पूज्य स्वामीजी ने कुछ देर बाद शांति से कहा, 'माँ, वह तुम थीं, जिसने पहली बार मुझे गीता पढ़ायी थी। तुम ही ही तो थीं, जिसने मेरे छोटे कानों में भगवान श्रीकृष्ण के शब्द कहे थे। तुम ही थीं, जिसने गीता का मतलब समझाया था कि आत्मा कभी जन्म नहीं लेती, कभी मरती नहीं, यह न तो काटी जा सकती है, न सूखती है, न जलती है, न घायल होती है। आत्मा तो सनातन, असीम और

अनंत है। यही समय है, तुम उसे याद करो। गीता केवल सत्संग या बच्चों को सिखाने या केवल पढ़ने के लिए नहीं है। बल्कि यह तो जीने के लिए है, जीने कि कला सिखाती है।'

माताजी ने अपना सिर झुकाया और वह समझ गयीं कि ईश्वर ने सचमुच उनका बेटा किसी दिव्य योजना हेतु स्वीकार कर लिया है। यदि कभी वह उनका बेटा रहा भी था तो भी वह अब उनका बेटा नहीं था। वह अपनी कार में बैठीं और शवयात्रा हरिद्वार कि ओर चल पड़ी।

वैराग्य का इस्तेमाल कई बार आध्यात्मिक पथ पर, खासकर हिंदू जीवन के संन्यास वाले अध्याय में होता है। यह आधारभूत तौर पर अ-संग के स्तर को दिखाता है, उसी तरह इस्तेमाल भी होता है। हालाँ कि, वैराग्य का अर्थ अनदेखी करना या फर्क नहीं पड़ना जैसा नहीं होता है। वास्तव में यह स्व का उस दिव्य, अनंत, नित्य से पुनर्मिलन है, फिर से जुडना है। वह फिर से जुड़ना...पुनर्मिलन... सन्यास से पहले या बाद में संसार की अनित्यता, प्रलोभन एवं समस्त सांसारिक वस्तुओं से वैराग्यके रूप में होता है। भारतीय दर्शन के अनुसार शरीर एवं शरीर के सुख-दु:ख, राग-द्वेष, और भाव-भावनाओं के साथ हमारी एकता जितनी सहज है उतनी ही अज्ञानमूलक है... और यही अज्ञान जीवन में क्लेश का कारण है।

पूज्य स्वामीजी अक्सर अपने अनुयायियों को एक बॉलपेन दिखा कर कहते हैं, 'तुम यह कलम (पैन) नहीं हो'। वे हँसते हैं! यह तो बहुत साफ है कि हम यह कलम नहीं हैं। यह समझना तो बहुत आसान और स्पष्ट है....फिर पूज्य स्वामीजी काफी गंभीर होकर कहते हैं, 'एक समय आएगा, तब यह भी इतनी ही निरर्थक बात लगेगी, यदि मैं आपको कहूँगा कि आप यह शरीर नहीं हैं। आज

तुम अच्छे से समझते हो कि आप कलम नहीं हैं.... लेकिन फिर भी आपको लगता है कि आप अपनी कामना, भय, भूख और प्यास हैं...आप इनसे अलग नहीं हैं....। किसी दिन आप समझेंगे कि आप अपनी वासनाएँ, इच्छाएँ या भावनाएँ भी नहीं हैं, ठीक उसी तरह जिस तरह आप कलम नहीं हैं। आप इन सबसे अलग हो।”

तो, वैराग्य यह पहचानने का नाम है जो भगवद्गीता में लिखा गया है–जिसे चाकू काट नहीं सकता, आग जला नहीं सकती, हवा सुखा नहीं सकती या पानी भिगा नहीं सकता। यह उस तत्व से एकत्व है, जो अनित्य, अनंत स्व है, जो कुछ देर के लिए शरीर के वाहन पर सवार होता है। जैसे, कोई भी अपनी कार से इस तरह नहीं जुड़ सकता कि वह कह दे--मुझे नया पेंट करवाना है...वह जानता है...यह कार है जिसे पेंटिंग की ज़रूरत है... तो यह कहना भी गलत है कि मैं बहुत दुखी हूँ या मैं बहुत थका हूँ... यह तो केवल शरीर और मन की बात है, न कि स्वयं की, न कि आत्मा की।

जब पूज्य स्वामीजी माताश्री और शवयात्रा से मिले, तो वे पिताश्री के जाने या माताश्री के दर्द से अंजान या अछूते नहीं थे। इसके विपरीत, वह आत्मा की सनातन प्रकृति से इतने एकात्म थे कि वह रामकृष्ण परमहंस के शब्दों को प्रत्यक्ष देख सकते थे कि उनके पिताश्री बस एक कमरे से दूसरे कमरे में चले गए। वे जानते थे कि उनकी माताश्री का पिताश्री से संबंध शारीरिक बंधनों को पार कर गया था- दशकों से उनके बीच वैवाहिक संबंध नहीं बल्कि आध्यात्मिक सम्बन्ध थे- और वे उसी अनंत तत्व पर उनका ध्यान केंद्रित करवाना चाहते थे, ...अस्थायी शरीर की हानि पर एवं उससे होनेवाले दुख में माताश्री को डूबने नहीं देना चाहते थे...

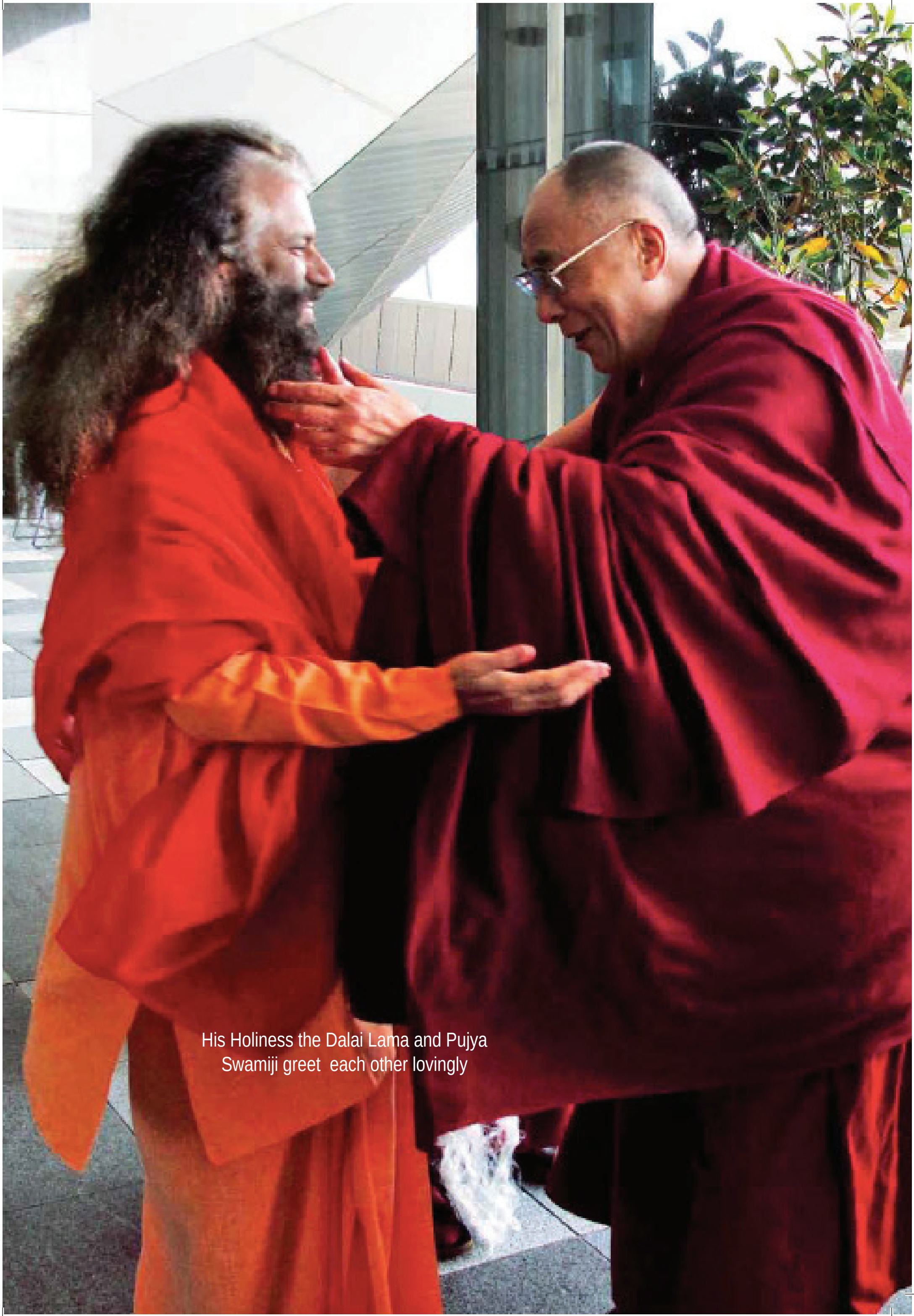

His Holiness the Dalai Lama and Pujya
Swamiji greet each other lovingly

Pujya Swamiji is awarded the Mahatma Gandhi lifetime award by the Honourable President of India and Harijan Sewak Sangh

Pujya Swamiji and Honourable Prime Minister Shri Narendra Modiji greet each other lovingly in New York

Pujya Swamiji and Mananiya Shri Mohan Bhagwatji discuss ideas and new green technologies for a clean, green, sustainable India

Presenting a tree sapling to former President of India Shri APJ Abdul Kalam

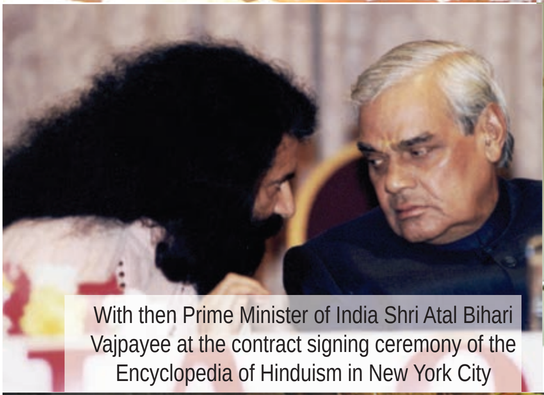

With then Prime Minister of India Shri Atal Bihari Vajpayee at the contract signing ceremony of the Encyclopedia of Hinduism in New York City

Pujya Swamiji, Pujya Swami Ramdevji and Hon'ble Shri Yogi Adityanathji plant trees in the Himalayan regions

Prince Charles and Duchess Camilla perform sacred Ganga Aarti at Parmarth Niketan

With Minister of External Affairs, Government of India, Smt. Sushma Swaraj

With former United States President Bill Clinton at the World Economic Forum

Giving a Rudraksh Sapling to Hon'ble Shri Venkaiah Naiduji, Vice President of India, at his residence

Presenting a sacred rudraksh sapling to Shri Amit Shah, Minister of Home Affairs

A beautiful moment of sharing with former President of Israel Shimon Peres

Beautiful meeting with Hon'ble Minister of Forests and Climate Change, Shri Bhupendra Yadav and Shri Sarvanand Sonval, Minister of AYUSH during International Yoga Day

Giving a rudraksh sapling to Hon'ble Chief Minister Uttarakhand Shri Pushkar Dhamiji

With Hamad Bin Khalifa Al Thami, Emir of Qatar, at the World Economic Forum.

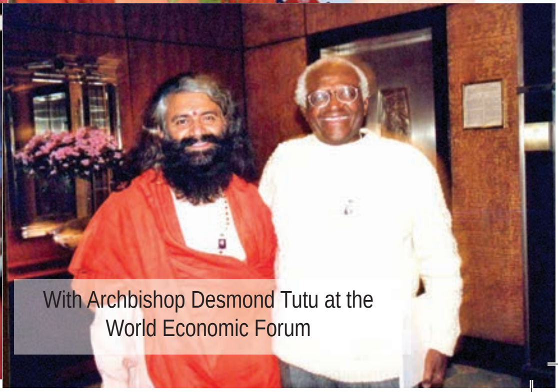
With Archbishop Desmond Tutu at the World Economic Forum

Leaders of all faiths converge at a Summit for Interfaith Harmony, co-hosted by Global Interfaith WASH Alliance and the American Jewish Committee

Pujya Swamiji leads interfaith leaders and Bollywood celebrities in a pledge to BE the solution to pollution at Parmarth Niketan

Pujya Swamiji leads interfaith leaders in a pledge of oneness, peace and environmental protection at the Jamiat Ulema E Hind Assembly in New Delhi

International religious leaders come together for peace and protection of the world's water in Assisi, Italy

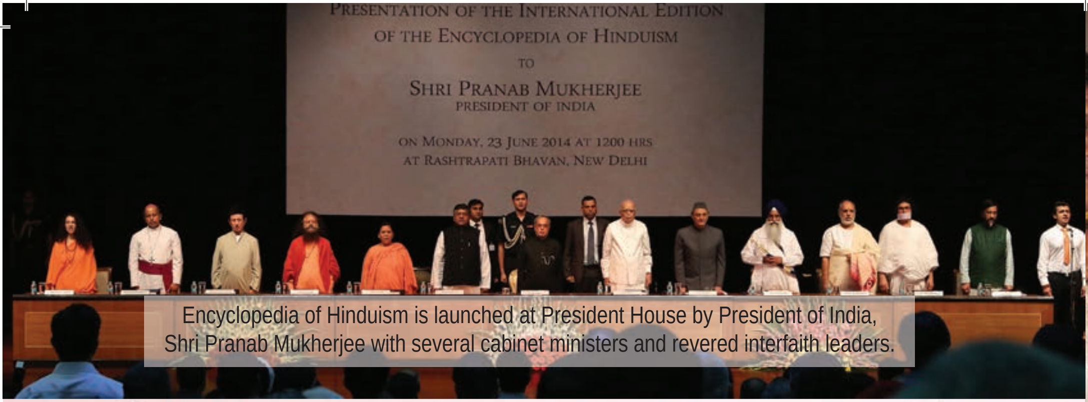

Encyclopedia of Hinduism is launched at President House by President of India, Shri Pranab Mukherjee with several cabinet ministers and revered interfaith leaders.

Encyclopedia of Hinduism is launched by Chief of RSS Dr. Mohan Bhagwatji, Hon'ble Vice President of India M. Hamid Ansari and renowned faith leaders

Encyclopedia of Hinduism is launched by Prime Minister of Great Britain, Mr. David Cameron at the Queen Elizabeth Centre in London

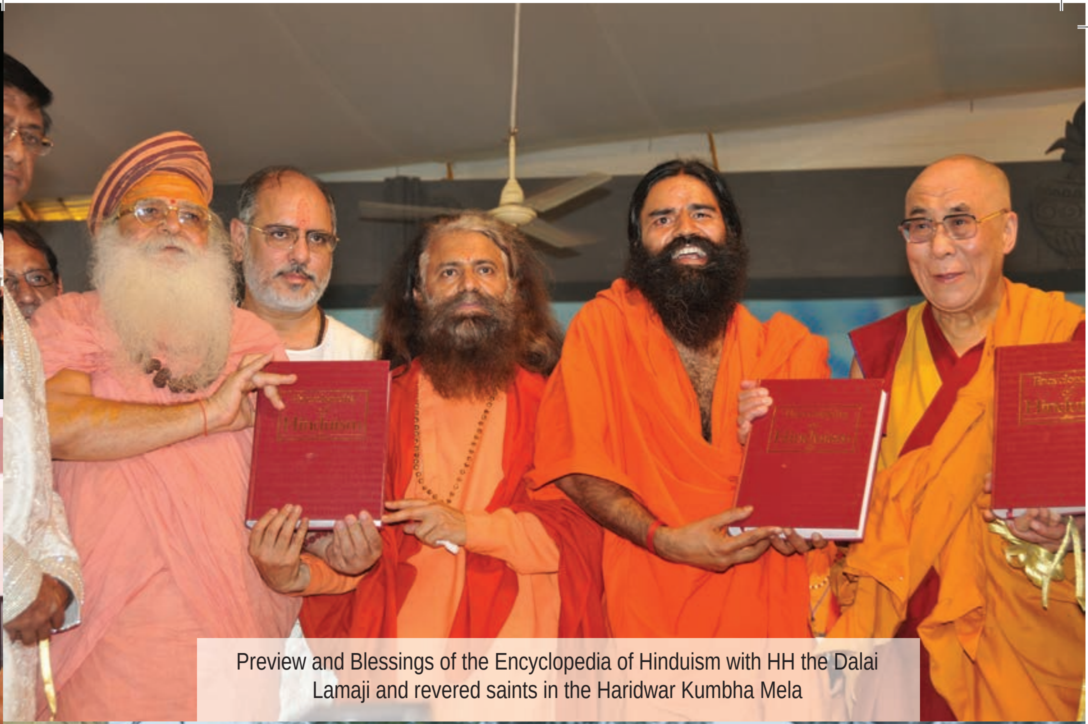

Preview and Blessings of the Encyclopedia of Hinduism with HH the Dalai Lamaji and revered saints in the Haridwar Kumbha Mela

Amitabh Bachchan and other Bollywood stars perform aarti at Parmarth Niketan during the filming of the Goodbye movie

अध्याय छह

परमार्थ निकेतन का खिलना

क्रिया में प्रार्थना

पूज्य स्वामीजी की ऋषिकेश में दिनचर्या निर्धारित होती थी। सुबह के 4 बजे वे जग जाते थे, अक्सर घड़ी का अलार्म बजने से कुछ सेकंड पहले... यह कभी-कभार ही होता था कि अलार्म उनको जगाता था। सवा चार बजे वे गंगा के तट पर होते थे। एक भक्त उस समय का अनुभव साझा करते हुये कहतीं हैं...

मैं उनको गंगा तट पर सुबह सुबह अकेले देखकर चकित रह गई। क्यों कि इस से पहले जब भी मैं आश्रम में उनको देखती थी तो वे हमेशा लोगों से घिरे होते थे- भक्तों से, सेवकों से। हमेशा उनके इर्द-गिर्द कोई न कोई होता था। और आज यहाँ, ... वे जैसे पानी पर प्रवाहित होकर नीचे उतर रहे थे। पहली बार तो मैंने उनको पहचाना ही नहीं, क्योंकि वे बिल्कुल अकेले थे। आँखें नीचीं,

ताकि माँ गंगा के अलावा कुछ भी उनके रास्ते में न आए... वे घाट के संगमरमर पर लेट गए। पैरे बिल्कुल तने हुए पीछे, हाथ आगे, लगभग गंगा जी के समांतर। जब कि, घाट पर सीढ़ियों की वजह से पर्याप्त जगह नहीं थी गंगा जी को बिल्कुल सीधा देखने की... उन्होंने अपने हाथों के बीच सिर को छुपाया और वहाँ कई पलों तक लेटे रहे। वैसे तो वे कई इंच दूर थे जल से, लेकिन सूर्योदय से पहले वाली रोशनी में यह एक अद्‌भुत दृश्य सा लग रहा था... जैसे कोई माँ सुबह-सुबह उसके बिस्तर में घुसनेवाले अपने बेटे को कंबल में लपेट लेती है....यह लगा जैसे वे जल में लेटे हों, न कि उसके तट पर... फिर, जब वे उठे तो लगा कि पानी का स्तर फिर से अपनी जगह चला गया है, कई इंच की दूरी पर ...जहाँ यह पहले था। उनके बाल और कपड़े सूखे थे, तो पानी सचमुच उन्हें छूने या फिर उन्हें ढँकने के लिए ऊपर नहीं आया था। वैसे मेरी आँखें धोखा नहीं खातीं...मैं उन में से नहीं हूँ जिन्हें आभास होते रहते हैं...जो अपनी कल्पना से देखते हैं... जिन क्षणों तक वे माँ को प्रणाम करने के लिए लेटे थे, पानी जरूर ही उनको ढँक रहा था।

उठने के बाद वे धार में उतरे और चलते गए, आराम से, स्थिरतापूर्वक.... जैसे, लहरों का कुछ भी असर उनपर नहीं पड़ रहा था... वे पानी में कई फीट गए, लेकिन उसका स्तर नीचा ही रहा, उनके टखनों तक। उगते सूर्य को जगह देने के लिए जैसे चंद्रमा ने

हिमालय के पीछे छुपना शुरू किया, पूज्य स्वामीजी ने अपनी आँखें बंद कीं, हाथ जोड़कर अपने सीने पर प्रार्थना की मुद्रा में ले आए... उस समय वहाँ कोई चाँद नहीं था, कोई गंगा नहीं थी, कोई स्वामीजी नहीं थे, कोई तट नहीं था...। वहाँ केवल एक वात्सल्यमूर्ति माँ और केवल उसका प्यारा बेटा था! वे घर आए थे, सुबह-सुबह

अपनी माँ से मिलने, संसार की सुबह शुरू होने से पहले... दोनों इस तरह एकरूप हो गए थे कि यह कल्पना भी मुश्किल थी कि... कुछ देर पहले वे जल और मानव थे। उनकी धोती उनके पीछे गंगा जी के प्रवाह ने पकड़ी थी, मैं कह सकती थी कि उनके पैर नहीं थे, वे खड़े नहीं थे, तैर रहे थे- गंगा में एकाकार... पूर्ण विलीन होकर।

अचानक, मुझे ताकाझाँकी जैसे अपराध बोध का भाव जगा। मैं, एक दिव्य चित्रपट देख रही थी ...वह मूल्यवान क्षण जब स्वामीजी अपनी माँ से मिल रहे थे... धीरे-धीरे सहमी सहमी मैं छाया में विलीन हो गयी... उनकी आँखें अभी भी बंद ही थीं.....

अपनी सुबह की प्रार्थना और ध्यान के बाद, वे आश्रम के दरवाजे से अंदर आये और पाँच बजे सुबह की प्रार्थना का संचालन किया। कई बार हारमोनियम बजाते, कभी खड़ताल और हमेशा गाते थे... वे आश्रम के रहनेवालों, अतिथियों और तीर्थयात्रियों को प्रार्थना में ईश्वर के दर्शन कराते थे– 'सीताराम, सीताराम, सीताराम कहिए, जाही विधि राखे राम, ताही विधि रहिए'। - चाहे वे महल में हों या झोंपडी में, बस में या मर्सिडीज में हों, सफलता में हो या असफलता में, हमेशा संतुष्ट रहें और उनका पवित्र नाम जपते रहें।

इन पंक्तियों से ही पूज्य स्वामीजी आजतक अपने भक्तों को संदेश देते रहते हैं।

आज हमारे पास सबकुछ सेट है- टी.वी. सेट, सोफा सेट, एंट-रटेनमेंट सेट, सब सेट पर हम अप-सेट हैं। हमें समझना होगा कि हमारी खुशी कहीं बाहरी स्त्रोतों से नहीं आती, न आ सकती है। यह केवल प्रभु के साथ दिव्य संवाद के साथ ही आती है। इसीलिए, वह जो कुछ भी देता है, वह उसकी कृपा है...उसका प्रसाद है... ध्यान रखें कि जीवन की सफलता हमारे बैंक अकाउंट या टाइटल या डिग्री

से नहीं नापी जा सकती। यह तो हमारे आध्यात्मिक आश्रय पर निर्भर करता है। यह हमारी जागरूकता, हमारी चेतना पर निर्भर करता है। यह स्थिति तब आती है, जब हम यह महसूस करते हैं कि हमें जो कुछ भी मिला है, वह उसके नज़दीक ले जाने को पर्याप्त है... दिव्यता के पथ पर एक कदम और चलने के लिए काफ़ी है। वह दिव्य जागरूकता तब आती है, जब हम समझते हैं ...कि सफलता कोई पुरस्कार नहीं और असफलता कोई दंड नहीं है। धन अच्छा नहीं है, गरीबी बुरी नहीं है। ये उन सबका फल है, जो हमने बोया है और जो हम आज काट रहे हैं। सच्चा दिव्य आनंद, जागरूकता और शांति तभी आती हैं, जब हम और अधिक के लिए रोना बंद कर देते हैं, या फिर खुद से यह पूछते हैं कि हम ईश्वर से नज़दीकी का अगला कदम कैसे उठा सकते हैं। दिव्य जीवन तब आता है, जब हम यह पूछना बंद कर देते हैं, 'हम ही क्यों?' और ईश्वर से कहते हैं- 'मैं तुम्हारा हूँ, मुझे अपना लो...मुझे स्वीकार करो...।'

एक और पंक्ति जो सुबह की सत्संग हॉल की प्रार्थना से, सात सागरों के पार तक जाकर उन्हों ने बाँटी है, वह है–'मुख में हो राम नाम, राम सेवा हाथ में, तू अकेला नहीं प्यारे राम तेरे साथ में...'।

पूज्य स्वामीजी के मुताबिक आध्यात्मिकता फल केवल व्यक्तिगत शांति नहीं है। वे बताते हैं कि हाँ, आंतरिक शांति महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके बिना बाह्य शांति नहीं आ सकती, और फिर, "अगर आप शांति में हैं, तो आप शांति वितरित करेंगे, साझा करेंगे, लेकिन आप अगर टुकड़ों में जीते हों, अशांति में जीते हों तो आप क्या साझा करेंगे? केवल टुकड़े ही तो...अशांति ही तो?...।" फिर भी, आंतरिक शांति पहला कदम ही है। वह साधन है, साध्य नहीं। जब हम अंदर से शांति में होते हैं, तो हमारा अहंकार और इच्छाएँ शांत

होनी शुरू होती हैं। मस्तिष्क का लगातार उबलना कम हो जाता है और हमें वह क्षण मिलते हैं, जब हम दूसरों के लिए कुछ सोच सकते हैं कुछ और कर सकते हैं। वे कहते हैं, '...तब हम ईश्वर के काम के लिए दिव्य माध्यम बन जाते हैं। जब हम पूरी तरह उनसे एक हो जाते हैं, पूरी मानवता के साथ और सभी प्राणियों के साथ। उनका दर्द हमारा होता है। उनकी भूख हमारी भूख होती है, उनकी बीमारी हमारी बीमारी होती है।' इसीलिए, हमारे होठों पर ईश्वर के नाम के साथ हम पूरी तरह उसकी बनायी मानवता की सेवा में लगते हैं। केवल हमारा काम ही लक्ष्य नहीं है, बल्कि दूसरों के लिए किया गया काम तो दिव्यता के साथ एकत्व का सहज परिणाम है। पूज्य स्वामीजी कहते हैं, 'क्या किसी को प्यार करना उसके लिए एक कप चाय बनाने से अलग है? क्या बुखार में उसका सिर पोंछ देने से अलग है? कतई नहीं। यह तय करना संभव नहीं है कि प्यार कहाँ खत्म होता है और सेवा कहाँ शुरू होती है। जब प्यार सच्चा और पवित्र होता है, तो सेवा ही सबसे सुंदर और स्वाभाविक परिणाम होता है उसे प्रकट करने का!" पूज्य स्वामीजी की शिक्षाएँ, शाब्दिक और उदाहरण के तौर पर भी दिव्य एकात्म की प्राप्ति, स्व के दिव्य स्वरूप की जागरूकता और ईश्वर की रचना की सेवा के बीच के योग-संयोग पर जोर देती हैं।

"क्षमा करो, भूल जाओ...जाने दो और आगे बढ़ो। यही एकमात्र रास्ता है। केवल क्षमा करना और भूलना काफ़ी नहीं। आगे बढ़ना भी जरूरी है।"

सुबह की प्रार्थना के बाद पूज्य स्वामीजी जंगल में सैर पर जाते। आश्रम के पिछले दरवाज़े से पगडंडियों के रास्ते, बरसों पहले जब उन्होंने दुनिया को छोड़ जंगलों की राह ली थी, उसके बाद फिर पत्ते, फूल, पेड़ और मिट्टी से एकरूप हुए थे। 'मैं हमेशा समझ जाता था, वे क्या कह रहे थे... मैं हमेशा उनकी चहचहाहट में शब्दों को सुन सकता था।' वे मौन होकर चलते, मंत्र जपते... , फिर से एक किशोर बन गए, जो जंगलों में अकेला है, इस बार बस उसे भूतों का डर नहीं है। एक घंटे बाद वे वापस लौटते हैं और आश्रम की दिनचर्या मे रत होते हैं... सूक्ष्म से लेकर महान कार्यस्तर तक।

एक बार, अपनी सैर के दौरान अचानक ही झाड़ियों से एक आदमी निकला और पूज्य स्वामीजी के आगे आ गया। उसके हाथ में एक रिवॉल्वर थी, सीधी स्वामीजी पर तनी हुई। उसने धमकी भरे शब्दों में कहा, 'इस कागज़ पर हस्ताक्षर करो, वरना मैं तुम्हें मार दूँगा।' वह कागज़ कुछ ज़मीन के टुकड़े को उस आदमी के नाम पर हस्तांतरित करने का आधिकारिक कागज़ था। पूज्य स्वामीजी ने कहा- मैं नहीं कर सकता। आदमी ने तब उनको रिश्वत देने की भी कोशिश की। पूज्य स्वामीजी ने प्रेमपूर्वक कहा, -"तुमने ग़लत नंबर डायल किया है; मैं ग़लत काम नहीं कर सकता"... और वह अपनी सैर पर आगे बढने लगे।

ड्रग्स के नशे में या शायद गुस्सेकी अधिकता में ही, उस आदमी ने अपनी पिस्तौल को पुन: साधा और गोली मारने को तैयार हुआ।

पूज्य स्वामीजी ने कहा, 'एक मिनट। मुझे मारने से पहले ज़रा मेरा रूमाल हाथ से ले लो।' उस शंकालु आदमी ने दाहिने हाथ से पिस्तौल पकड़े हुए बड़ी सावधानी से स्वामी जी पर नज़र रखते

हुए उनके हाथ से रूमाल ले लिया- 'यह तुम मुझे क्यों दे रहे हो'- उसने पूछा।

पूज्य स्वामीजी ने इतने सहज स्वर से कहा, जैसे किसी हलवाई को खाने का ऑर्डर समझा रहे हों...बोले, "देखो तुम्हारे ऐसे गोली मारने से मैं तो मर जाऊँगा। परंतु पूरी दुनिया के मेरे परिचित भक्त न्याय माँगेंगे, और वे तुमको छोड़ेंगे नहीं और तब तक चैन नहीं लेंगे, जब तक तुमको सज़ा न हो जाए। वे गन भी खोज लेंगे और तुम्हारी उँगलियों के निशान भी...। तब तुम पूरी ज़िंदगी के लिए जेल चले जाओगे। तुम्हारे बच्चे बेसहारा हो जाएँगे। तुम्हारी पत्नी के पास परिवार चलाने का कोई रास्ता नहीं होगा और वह तिरस्कृत हो जाएगी समाज में... कोई भी तुम्हारे बेटों को जल्दी नौकरी नहीं देगा या बेटी से विवाह नहीं करेगा। पर इन सब से कुछ भी मुझे तो वापस नहीं ला पाएगा... लेकिन तुम्हारे परिवार का जीवन ज़रूर बर्बाद हो जाएगा, बिना उनकी किसी ग़लती के। बच्चों और बीवी ने क्या क़सूर किया है...वे क्यों तुम्हारे अपराध कि सज़ा भोगे? इसलिए मैं चाहता हूँ कि रूमाल से तुम अपनी उँगलियों के निशान पिस्तौल से मिटा दो और मुझे मारकर फिर पिस्तौल मेरे हाथ में रख दो। मारकर तुम भाग जाओ..., तुम्हारी उँगलियों के निशान कहीं नहीं मिलेंगे, और फिर तुम और तुम्हारा परिवार चैन से रहेगा। मैं तो किसी भी तरह मरने ही वाला हूँ, पर कृपया मेरे साथ अपने परिवार की जिंदगी का भी अंत मत करो।'

उस आदमी की आँखों से आँसू निकल पड़े, गाल से होते हुए पगडंडी तक गिरने लगे। पिस्तौल उसके हाथ में कांपने लगी। आखिर, उसने वह फेंक दी। और पूज्य स्वामीजी के पाँवों को कसकर पकड़ लिया, 'कृपया मुझे माफ़ कर दीजिए। मैंने घोर पाप

किया है। मुझे माफ़ कीजिए।' उनकी क्षमाशीलता से व्यक्ति का जीवन बदल गया।

दुनिया परमार्थ में अपने घर आती है

साल जैसे दशकों में बदले, पूज्य स्वामी जी का प्रभाव और सामर्थ्य परमार्थ और आसपास के क्षेत्रों में भी बढ़ता गया। यह स्पष्ट था कि उनकी दृष्टि और उस दृष्टि को वास्तविकता में बदलने की उनकी ताकत, दोनों ही अद्‌भुत थे। परमार्थ क़द में बढ़ता गया और उसकी सुरभि फैलती गयी....। आकार और गहराई... दोनों से ही...। पहले जहाँ वार्षिक कार्यक्रम साधना सप्ताह और परमार्थ निकेतन की संत-परंपरा के प्रतिनिधि संतों के जन्मदिन और मृत्यु-दिवस तक सीमित थे, पहली बार प्रति माह और फिर प्रति सप्ताह एक बड़ा कार्यक्रम होने लगा। परमार्थ सभी संस्कृतियों, देशों और जीवन के सभी व्यवसायों और सभी वर्गों के लोगों का आध्यात्मिक गति-विधियों का केंद्र बन गया।

हिंदुओं के विविध संप्रदायों के आध्यात्मिक नेता और दुनिया के अन्य सभी धर्मों के नेता भी परमार्थ में आने लगे- कुछ घंटों या दिन या हफ्तों के लिए, ताकि पूज्य स्वामीजी का सान्निध्य पा सकें। संयुक्त राष्ट्र या विदेशों में स्वामी जी से मिलकर ये धार्मिक नेता पूज्य स्वामीजी की शिक्षा से बहुत प्रभावित होते, 'यदि आप यहूदी हैं, तो एक बेहतर यहूदी बनें। यदि मुस्लिम हैं, तो बेहतर मुस्लिम बनें। यदि आप एक ईसाई हैं तो बेहतर ईसाई बनें।' वे अपने भक्तों को कहते हैं। उनके मुँह से निकले आधारभूत हिंदू सिद्‌धांत और उनकी सार्वभौम व्यावहारिकता स्वीकृति पाते हैं...

‘हमारे ग्रंथों की शिक्षा हमे केवल अच्छा हिंदू नहीं बनाती,’ पूज्य स्वामी जी बलपूर्वक कहते हैं, ‘वह हमें अच्छा मानव बनाती हैं।’

बॉलीवुड से लेकर हॉलीवुड तक, अनेकों प्रतिष्ठित, विख्यात कलाकार भी परमार्थ में खींचे चले आते हैं। अपने व्यवसाय के लिए ओढ़े हुए चेहरे, मेक-अप और किरदार से मुक्त होकर माँ गंगा के जल में नहाते हैं। शायद पहली बार, वे अपने जीवन में अनुभव करते हैं कि उनके सामने बैठने वाला उनके शरीर, चेहरे, बाल या आवाज़ को नहीं देखता, न ही उनकी प्रेम कहानियों की गुत्थियों को, बल्कि वह उनकी आत्मा को देखता है। परमार्थ में कई अंतरराष्ट्रीय राजनीतिक और सामाजिक नेता भी आते हैं, जो इस पवित्र वाता-वरण में मौन में कुछ समय गुज़ारने आते हैं, वह ऐसे किसी की सहायता और मार्गदर्शन या आदेश लेने आते हैं, जिसके न तो कोई पूर्वाग्रह हैं, न ही कोई पक्ष... न तो कोई व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा है, न ही कोई व्यक्तिगत लक्ष्य।

मुक्त टी.वी. और इंटरनेट के प्रचार-प्रसार माध्यम ने पूज्य स्वामीजी की अंतरराष्ट्रीय ख्याति और उपलब्धियों को ऋषिकेश तक ला दिया। अचानक ही, जिस अथक भाव से वे घूमते, पढ़ाते और लोगों के जीवन को छूते हैं, वह ऋषिकेश में बिल्कुल साफ़ दिखनेवाला दृश्य हो गया। इस प्रकार पूज्य स्वामीजी की भूमिका प्रस्थापित हो गयी, न केवल एक क्रांतिकारी युवा साधु के रूप में जिसने शौचालय और कूड़ेदान के उपयोग पर ज़ोर दिया, बल्कि एक अंतरराष्ट्रीय आध्यात्मिक नेता, समन्वयक, शांतिरक्षक और आध्यात्मिक गुरु के रूप में भी वे निखरकर सामने आए...

पूज्य स्वामीजी के सशक्त निर्देशन में और उनके संदेश की

आकर्षण शक्ति और आग्रह की वजह से परमार्थ में कई सम्मेलन, सभाएँ, परिषद, शिविर और समारोह भी आयोजित होते हैं, जो शांति और सर्व-धर्म-सद्भाव से लेकर प्राकृतिक चिकित्सा और योग तक सभी विषयों को पुरस्कृत करते हैं, बल देते हैं...।

विश्वप्रसिद्ध गंगा आरती

परमार्थ निकेतन, ऋषिकेश में शाम की गंगा आरती पूरी दुनिया में प्रसिद्ध हो गयी है। लोनली प्लैनेट, वैनिटी फेयर, टाइम मैगज़ीन, बीबीसी, सी एन एन और डिस्कवरी चैनल तक एवं अन्य अनेकों देशी-विदेशी चैनलों तक ने इस आरती को शूट किया है, इसके प्रभाव और अद्भुतता की भावुक होकर भूरि-भूरि प्रशंसा की है। ईसाई, यहूदी, सिख, जैन, मुस्लिम, अनीश्वरवादी और यहाँ तक कि नास्तिक भी यहाँ साथ आते हैं, प्रतिभाग करते हैं... जिसे स्वामीजी “हैप्पी आवर” का नाम देते हैं। यह ऐसा समय है, जब तनाव और दुविधा रोज़ मर्रा के जीवन से उसी तरह खिसक जाते हैं, जैसे कंधों से शाल..., जब व्यक्ति झूमता है और उस दिव्य ऊर्जा की प्रार्थना करता है, वैदिक मंत्र, ध्यान और मंत्रोच्चारण की ध्वनियान पूरे दृश्य को एक दैनंदिन और सायंकालीन, अलौकिक अनुष्ठान बना देती हैं।

गंगा आरती ऋषिकेश के कई सारे होटलों और रिसॉर्ट्स के लिए सांस्कृतिक कार्यक्रम का आकर्षण बन जाता है। पूज्य स्वामीजी बताते हैं- “यह बिना हैंगओवर वाला ‘हैप्पी आवर’ है। यह प्रसन्नता 60 मिनट से अधिक समय तक रहती है। एक और बात भी है...

पूरे दिन वह परमात्मा हम पर जीवन की ऊर्जा, आशीर्वाद का प्रसाद और दिव्यता का प्रकाश बरसाता है... आरती में, हम अपने धन्यवाद का छोटा-सा दिया उसे अर्पित करते हैं, हमारी भक्ति और कृतज्ञ-ता को आरती के दिये से व्यक्त करते हैं...। आरती का एक अर्थ दर्द-निवारक भी होता है, इसीलिए, हमारे जीवन से दर्द भगाने और मिटाने वाली उस दिव्य शक्ति को भी हम कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद करते हैं।'

पर, यह शुरू कैसे हुआ? आरती हिंदू संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। यह अधिकांश मंदिरों में कई बार की जाती है। पूज्य स्वामीजी ने गंगा के तट पर गंगा आरती करने का विचार कैसे किया? गंगा आरती का प्रारम्भ हमें, गंगा या गंगा आरती के साथ साथ पूज्य स्वामीजी के बारे में भी बताता है.... दरअसल, पहली बार जब वे गंगा जी के तट पर आए थे तब ही गंगा के तट को शौचालय की तरह इस्तेमाल होता देख उन्हें बहुत कष्ट हुआ था। यद्यपि जब वे परमार्थ आए थे उस समय जनसंख्या बहुत कम थी... सौंदर्य और पर्यावरण पर पड़नेवाला दुष्प्रभाव भी बहुत कम था। लेकिन अगले कुछ वर्षो में जनसंख्या भी बहुत बढ़ी...। दुर्भाग्य से, बढ़ती आबादी के साथ ही किसी तरह की नागरिक योजना या पर्यावरण के प्रति जागरूकता या चेतना विकसित नहीं हुई। गंगा के तट शौचालय के रूप में भी प्रयोग होते रहे हैं। अब तो स्थानिक और पर्यटक, दोनों तरह के लोगों के लिए... हर सुबह, जब हिमालय के ऊपर सूर्य चढ़ने लगता था, तो गंगा के तट पर लोग आते, बैठते, और जब तक सूरज सिर पर नहीं आ जाता, मलविसर्जन, वह भी गंगा जी के तट पर कई बार देखने को मिलता था... । जो भक्तहृदय लोग नदी में भाव भक्ति से भरकर नहाते होते, एक

के बाद एक चुल्लू में भर कर पानी सिर पर डालते, वह पूरी तरह बेख़बर होते कि शायद उसी समय, या फिर पहले और बाद में भी कोई सुबह शौच से भी निवृत्त होता है...उसी पवित्र तटपर और उसी जल के आस पास...।

गंगा को...गंगा तटों को शौचालय शौचालय कि तरह प्रयोग करना केवल एक सौंदर्य सिद्धांत का वाद-विषय नहीं था... यह नदी एक तिहाई से भी अधिक भारतीयों को खिलानेवाले खेतों को सींचती है... तो ज़ाहिर है कि ऋषिकेश में इसके पानी में जानेवाला कोई भी प्रदूषण, कोई भी विष, कोई भी मल, कोलकाता तक पहुँच जाएगा और २500 कि॰मी॰ तक के इसके तट पर बसे लोग भी प्रभावित होंगे। प्रारम्भ में पूज्य स्वामीजी ने कई बार लोगों को गंगा के तटों पर शौच से रोकने की कोशिशें की ....जागरण अभियान चलाये...। विवाद करना, चिल्लाना, नारेबाज़ी करना या शिकायत करना उनके स्वभाव में ही नहीं था। “आंदोलन से ऊपर क्रिया (होनी चाहिए) ” (एक्शन एबव एजीटेशन) ही उनका मंत्र रहा है। इसीलिए, आक्रामक तौर पर बंदी लागू करने की जगह उन्होंने एक विकल्प चुना। वैसे भी सबसे अधार्मिक हिंदू भी मंदिर में जूते पहनकर नहीं जाएगा, मंदिर को गंदा करने की बात तो कभी सोचेगा भी नहीं... इसीलिए, पूज्य स्वामीजी को एहसास हुआ कि गंगा के घाटों-तटों को ही मंदिर में परिवर्तित किया जाए, तो लोग खुद ही उसी भूमि पर शौच करना बंद कर देंगे, जहाँ उन्होंने शाम को पूजा-प्रार्थना की है। और आगे भी, समस्त हिंदुओं के जनमानस में स्थित सार्वका-लिक श्रद्धा-भक्ति के अलावा यदि वे गंगा के लिए खास, गहरा और विशिष्ट सम्मान लोगों के मनपर प्रभाव डालने में सफल हो

गए- तो उन्हें विश्वास था कि वह गंगा नदी क्षेत्र और वहाँ के लोग अपने व्यक्तिगत और घरेलू कचरा या अपशिष्ट वहाँ नहीं छोड़ेंगे...।

पूज्य स्वामीजी ने गंगा तटों के सौंदर्यीकरण की योजना बनाकर गंगा आरती प्रारम्भ करने की योजना बनाई और उसे शीघ्र ही क्रियान्वित भी किया...सुंदर घाट बने और दिव्य गंगा आरती शुरू भी हुई। जैसे ही गंगा के बालू और पत्थर के तट संगमरमर के घाट में परिवर्तित हो गए, तो विश्व-प्रसिद्ध गंगा-आरती की छवि ही लोगों के मानसपटल पर विराजमान हुई... सुबह के समय तट पर शौच करते लोगों की तस्वीर एक धुंधली-सी याद मात्र रह गयी! लोग प्रात:काल स्नान एवं ध्यान के लिए एकत्रित होने लगे। समूचा दृश्य ही एकदम बादल गया...गंगा आरती के इस दिव्य अभियान की शुरुआत पूज्य स्वामीजी ने भारत के अनेकों तीर्थस्थानों पर की और धीरे धीरे विश्व के कई देशों में भी इस दिव्य कार्यक्रम से जोड़ते हुए इसे स्वच्छता अभियान से भी सफलतापूर्वक जोड़ दिया।

अध्याय सात

टुकड़ों में बिखरे जीवन से शांति की ओर

यह वर्ष 2002 था और बैंकॉक की वह उमस भरी गर्मी... जून में उस बड़े कांफ्रेंस रूम में जारी गहमागहमी से और बढ़ रही थी। पूरी तरह सक्षम एयर कंडीशनर भी बढ़ते तापमान को नियंत्रित करने में कम ही काम आते थे... और उस कांफ्रेंस की अध्यक्षता कर रहे महासचिव ने अपनी भौहों पर टपका पसीना पोंछा। न्यूयॉर्क में सहस्राब्दी शांति समारोह (धार्मिक और आध्यात्मिक नेताओं का) के बाद एक फॉलो-अप बैठक बैंकॉक में संयुक्त राष्ट्र कार्यालय में थी। इस बैठक में गोलमेज़ सम्मलेन के जरिए एक सर्वसम्मत घोषणापत्र जारी किया जाना था, लेकिन, वार्ता में अवरोध आ गया। एक विख्यात धार्मिक नेता और कानूनी विशेषज्ञ घोषणापत्र के कुछ आयामों से सहमत नहीं थे। वह बैठक को आगे बढ़ाने की हरेक कोशिश का आलोचनात्मक या व्यंग्यात्मक टिप्पणी से जवाब दे रहे थे। यद्यपि, उनके तर्क जायज थे, लेकिन

उनके व्यवहार ने समझौते की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी थी। उनका पूरा संदेश स्पष्ट था–मेरा रास्ता या फिर कोई रास्ता नहीं। या तो जो मैं कह रहा हूँ सो हो या कोई समाधान नहीं।

महासचिव ने सम्मेलन में एक विराम की घोषणा की और निजी तौर पर पूज्य स्वामीजी से इस मसले को निपटाने का उपाय पूछा। एक ज़िद्दी प्रतिभागी सर्वसम्मत घोषणापत्र के रास्ते में आड़े आ रहा था और पूरी कांफ्रेंस को ही पटरी से उतारने पर उतारू था। पूज्य स्वामीजी ने आश्वासन दिया, 'चिंता न करें, मैं इसका ध्यान रखने का प्रयास करूँगा।' उन्होंने उस धार्मिक नेता को अपने साथ बैठने को आमंत्रित किया और सहायकों को चाय लाने के लिए कहा। पूज्य स्वामीजी ने उन से कहा, 'मैं आपके चिंतन की स्पष्टता से बहुत प्रभावित हूँ। कल, मैं चाहूँगा कि मुख्य एसेंब्ली हॉल में आप मेरा सत्र लें। मुख्य हॉल में पूरी उपस्थित भीड़ के सामने बोलने का समय मिलना एक अनूठा सम्मान था, जो बहुत ही कम सम्मानित आध्यात्मिक नेताओं को मिलता था। हालाँकि पूज्य स्वामीजी इस सम्मान या आकर्षण में रुचि नहीं रखते थे...वे सम्मान में नहीं समाधान में रुचि रखते थे...वे केवल घोषणापत्र में रुचि रखते थे जो अंत में हस्ताक्षरित होकर महासचिव द्वारा विश्व के सामने प्रस्तुत किया जा सके...बोलने के एक मौके को छोड़ देना तो बहुत छोटा मूल्य होता।"मेरा रास्ता या फिर कोई रास्ता नहीं", "या तो मेरी चले या किसी की नहीं..."

वह नेता हैरान थे, पर उस विचार से प्रसन्न हो गए। 'जरूर। मैं सम्मानित अनुभव करता हूँ। धन्यवाद!... यह मौका उपलब्ध कराने के लिए।'

जल्द ही चाय आयी और उसके साथ ही पूज्य स्वामीजी ने

इस नए मित्रा के लिए कुछ बिस्किट भी मँगवाए। उनको बिस्किट और चाय के साथ ही चर्चा के दौरान पूज्य स्वामीजी ने उनके बीच सहमति के तार खींच लिए और उन्होंने मीटिंग सत्र के दरम्यान उस अल्पविराम का इस्तेमाल दूसरे नेताओं के साथ मिलकर सहमति और आपसी समझौते के बिंदु खोजने में किया। जब सत्र शुरू होने का समय आया, तो पूज्य स्वामीजी ने एक अतिरिक्त कुर्सी लगवायी उस नेता के लिए और साथ में खुद बैठे। मूल तौर पर, वह नेता कहीं पीछे बैठे थे, और उनको एक सीट देने के साधारण से काम ने उनको तुरन्त मधुर और मृदु बना लिया। जैसे-जैसे बहस पूर्णाहुति की तरफ बढ़ी, जैसे ही वह व्यक्ति आलोचना या दूसरे वक्ता के प्रस्ताव की निंदा के लिए उठते थे, घोषणापत्र को रोकना चाहता था, तभी पूज्य स्वामीजी धीरे से टेबल के नीचे से प्यार से उनका घुटना दबा देते। पूज्य स्वामीजी का मुदु स्पर्श और उनका दिया संकेत उस व्यक्ति को बाधा पहुँचाने से रोकता रहा और घो-षणापत्र लगभग हस्ताक्षरित हो गया।

असहमति के केवल कुछ ही बिंदु रह गए थे और महासचिव ने बाद में होटल के कमरे में एक बैठक बुलायी। पूज्य स्वामीजी ने फिर से उन नेता को प्यार और निनम्रता से अपनी बगल में बैठाया और पुन: जब भी तनाव पैदा हुआ, उसके हाथ और बाँहें बहुत मृदुता से सहलायी और पूज्य स्वामीजी ने कहा, 'एक काम किया जाए। जिनसे आप असहमत हैं, ऐसे बिन्दुओं पर बात करने के बजाय हम उनकी सूची बनाएँ, जिन पर हम सहमत हैं। फिर हम मतभेद के मुद्दों पर वापस आ सकते हैं।' पूज्य स्वामीजी ने जब एक के बाद एक सहमति के बिंदु पढ़ने शुरू किए तो कमरे में फैली अशांति कम होने लगी। हर बार जहाँ कोई भी असहमति

का बिंदु आता, पूज्य स्वामीजी कहते- कोई बात नहीं, इसे अलग रखते हैं। बाद में देखेंगे। आखिरकार, अंत तक केवल एक या दो बिंदु ही बचे, जो मिलजुल कर सुलझा लिए गए। अगले दिन, एक सर्वसम्मत घोषणापत्र ज्ञापित किया गया!

चाहे वह एक मृदु, सौम्य स्पर्श किसी तनावग्रस्त व्यक्ति को देना हो, व्यक्तिगत तौर पर अपना बोलने का समय देना हो या अगली सीट का त्याग हो, या फिर सौहार्द्र का अंतिम लक्ष्य पाने की धुन हो- किसी भी व्यक्तिगत कार्यसूची से ऊपर- लड़ते-झगड़ते अंतरराष्ट्रीय ख्याति के नेताओं के मतों के बीच की दरारें भरने, और समन्वय लाने में पूज्य स्वामीजी सफल रहे हैं, और तलाक पर आमादा लोगों के बीच भी फिर से सामंजस्य प्रस्थापित करते रहे हैं।

वे दुनिया की सबसे मशहूर अंतरराष्ट्रीय कांफ्रेंस और सम्मलेन में भी वक्ता और प्रतिनिधि रहे हैं, जिसमें संयुक्त राष्ट्र, वैश्विक धर्मों की संसद, विश्व आर्थिक मंच और शांति के लिए धर्मों की वैश्विक कांफ्रेंस भी शामिल हैं। वे कई अंतरराष्ट्रीय युवा संगठनों के सलाहकार भी रहे हैं, जिसमें संयुक्त राष्ट्र वैश्विक शांति सम्मेलन और टोनी ब्लेयर फेथ फाउंडेशन यूथ फेलोज ट्रेनिंग आदि भी शामिल है।

“यदि हम शांति के ध्वजवाहक होना चाहते हैं, तो पहले हमें प्रेम की नदी बनना होगा, हमारी सहानुभूति और शांति के जल में सभी तरह के मतभेदों की ज्वालाओं को बुझाना होगा।”

प्रेम की भाषा

जब वर्ष 1990 में राष्ट्रपति गोर्बाचेव ने सोवियत संघ को विघटित करने का निर्णय ले लिया तो पूज्य स्वामीजी उन धार्मिक नेताओं में एक थे, जिनको क्रेमलिन में पर्यावरण और विकास पर हो रहे वैश्विक सम्मेलन में प्रतिभाग के लिए एक हफ्ते के लिए बुलाया गया था। कांफ्रेंस में अपने प्रेरक शब्दों के अलावा पूज्य स्वामीजी ने राष्ट्रपति गोर्बाचेव एवं उनकी धर्मपत्नी को पवित्र रुद्राक्ष माला भी भारतीय संस्कृति के उपहार के रूप में दी, उनकी रक्षा और ज्ञान व शांति-प्राप्ति के लिए। साथ ही, पूज्य स्वामीजी ने रूसी भाषा में 'मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ'- कहना भी सीखा, क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय भाषा 'प्रेम' उनकी पसंदीदा भाषा है। जब उन्होंने राष्ट्रपति और उनकी पत्नी के गले में माला पहनाई और दोनों की आँखों में आँखें डालते हुए कहा, 'ये तेब्या लूब्लू..'। एक सेकंड तक यह सोचने के बाद कि आखिर यह हिंदू संन्यासी कह क्या रहे हैं, गोर्बाचेव दंपत्ति के चेहरे पर अनायास ही खिलखिलाती मुस्कान फूट पड़ी।

प्रेम भी गुरुत्वाकर्षण की तरह ही प्रभावशाली और मूलभूत बल है। जिस तरह गुरुत्वाकर्षण हमें पृथ्वी की ओर खींचता है, उसी तह प्रेम भी हमें एक-दूसरे की ओर खींचता है। यदि गुरुत्वाकर्षण नहीं होता तो हम सभी लुढ़कते, लोटते, गिरते रहते, वातावरण में बिना किसी ज़मीन के, अलग-थलग, बेसहारा, बिखरकर तैरते रहते। गुरुत्वाकर्षण हमें केंद्रित करता है, नीचे खींचता है और धरती पर स्थिरता देता है। प्रेम भी यही करता है, लेकिन एक भावनात्मक और आध्यात्मिक स्तर पर। जो प्रेम नहीं करते, वे बिखरे और अस्थिर

हैं। वे भौतिक तौर पर जीवित हैं, शायद तार्किक और सांसारिक तौर पर सफल भी हों, लेकिन भावनात्मक और आध्यात्मिक स्तर पर वे निरंतर भटक रहे हैं, जुड़ नहीं पा रहे हैं.... गुरुत्वाकर्षण वस्तुओं को धरती की ओर केवल खींचता नहीं, बल्कि इन वस्तुओं की प्रकृति भी बदल देता है। यदि कोई भौतिकी विशेषज्ञ है और जानता है कि कहाँ देखना है- गुरुत्वाकर्षण से प्रभावित वस्तु, जिस पर गुरुत्वाकर्षण काम नहीं कर रहा है ऐसी वस्तु से अलग होती है । इसी तरह, प्रेम न केवल और अपने अस्तित्व मूल को नज़दीक खींचता है, बल्कि हमारी मूल प्रकृति भी बदल देता है। प्रेममय व्यक्ति कीमियाई ढंग से उस व्यक्ति से अलग है, जो प्रेम में नहीं है। ज़ाहिर है कि प्रेम का केंद्र किसी का पति, पत्नी, अभिभावक या कोई पेड़ ही है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जब तक प्रेम गहरा और पवित्र है- वासना से मुक्त- प्रेमी की प्रकृति बदल कर रहेगी। एक बार किसी ने प्रेम का सच्चा स्वाद चख लिया, वह प्रेम बन जाता है और अपने प्रेम को साथ लेकर चलता है..।जहाँ भी जाता है, उसके प्रेम के साथ ही जाता है..., प्रेम की तरलता, एकता और शांति से प्रभावित स्वभाव भी साथ होता है।

"यदि आप पृथ्वी पर प्रेम से भरे नहीं महसूस करते, तो यह उम्मीद न रखें कि स्वर्ग में आलिंगन आपका इन्तज़ार कर रहे हैं. यहीं शुद्ध आलिंगन देना सीखें, लोगों को गले लगाना सीखें। फिर यह पृथ्वी ही स्वर्ग बन जाएगी।"

हम आज कई चीज़ों को प्रेम की संज्ञा देते हैं। सुपरमार्केट में हमें गाजर पर छूट देनेवाली उस महिला से भी हम कहते हैं, 'मैं आपसे प्रेम करता हूँ'! भरी हुई एयरलाइन में हमारे लिए कोई सीट का इंतजाम कर देता है तब हम एयरलाइन के उस एजेंट को भी कहते हैं, 'मैं आपसे प्रेम करता हूँ"। हम मित्रों और पहचान वालों से आम तौर पर आते-जाते जब भी वह कोई काम कर देते हैं या हम फोन बंद करने से पहले "धन्यवाद', 'मैं आपसे प्रेम करता हूँ" कहते रहते हैं। हालाँ कि, 'धन्यवाद', 'मैं इसकी कदर करता हूँ', या 'गुड-बाय, 'बात करके अच्छा लगा' और 'मैं तुमसे प्यार करता हूँ' अलग-अलग विचार हैं, जिनका उपयोग लोग एक-दूसरे के लिए बड़ी सहजता से करते रहते हैं।

हम अपनी वासना को भी प्रेम कहते हैं। वासना और प्रेम वास्तव में विरुद्ध हैं। जहाँ प्रेम उन्मुक्त और व्यापक है, वासना उतनी ही अनुचित, संकीर्ण और निकृष्ट है। प्रेम मिलने और पिघलने का नाम है, वासना हमारी कभी न मिटनेवाली हवस का। प्रेम हमारे प्रेमी के बारे में है; वासना लालच के बारे में...। प्रेम के साथ हमारा परिप्रेक्ष्य या नज़रिया - न केवल आँखों का, बल्कि हृदय और आत्मा तक का - इस प्रकार विस्तृत हो जाता है। वासना के साथ हमारी दृष्टि संकीर्ण और संकुचित हो जाती है।

ईशावास्यमिदं सर्वम्, यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा, मा गृध: कस्यस्विद्धनम्।।

तो, सच्चा प्रेम कैसे विकसित करें? कैसे इसे रोपें और इसका संगोपन करें, जिससे यह हमारे भीतर बढ़े और खिले?

ईशावास्योपनिषद की पहली पंक्ति कहती हैः-

।.. इसका अर्थ यह है कि पृथ्वी का सब कुछ, इस ब्रह्मांड का सर्वस्व, दिव्यता से व्याप्त है। इसलिए, सच्चे प्रेम का पहला कदम तो उस दिव्यता के लिए प्रेम को विकसित करना है। यह मायने नहीं रखता कि आप उस दिव्यता को कैसे देखते हैं, किस नाम से या स्वरूप से उससे परिचित हैं? यह सचमुच मायने नहीं रखता है। महत्वपूर्ण यह है कि हम दिव्यता से जुड़ें। एक बार हम दिव्यता के लिए प्रेम विकसित कर लें, फिर उपनिषदों की यह दिव्य पंक्ति देख लें तो अनुभव होता है कि यदि हम ईश्वर से जुड़े हैं और वह पृथ्वी की हर चीज़ में व्याप्त है, तो जो कुछ भी हम देखते हैं, वह भी तो ईश्वर का ही एक स्वरूप है। उदाहरण के लिए, मैं अपने मंदिर में कृष्ण की पूजा करता हूँ या माँ गायत्री की उपासना करता हूँ और मैं - भक्ति, प्रार्थना और ध्यान के अभ्यास से- उनके लिए सच्चा प्रेम विकसित कर लेता हूँ, तो जहाँ भी मैं जाता हूँ, जिनसे भी मिलता हूँ, मुझे उन सब में भगवान कृष्ण ही दिखने चाहिए, या माँ ही दिखनी चाहिए। इसीलिए, वही अतिशय प्रेम जो मेरे मंदिर में मेरे हृदय को भरता है, वह हमेशा ही मेरे हृदय में होना चाहिए।

यह शिक्षा जीवन में उतारने में चाहे जितनी मुश्किल लगे, पूज्य स्वामी जी ने इस पर सदैव चलने का प्रयास किया है। उनका हृदय स्वाभाविक तौर पर सबके लिए पिघलता है, उनके शब्दों, क्रिया और उनकी आँखों की चमक से वह प्रेम बरसता है, टपकता है, जहाँ भी वे जाएँ। क्योटो, जापान में एक अंतरधार्मिक कांफ्रेंस में निबंधन के प्रपत्रों में 'भाषाएँ जो जानते हैं' का भी कॉलम था। लगभग एक

दर्जन अंतरराष्ट्रीय भाषाओं के साथ ही एक और बॉक्स था, जिसमें 'अन्य' लिखा था। उन्होंने हिंदी और अंग्रेजी में सही का चिह्न लगाने के साथ अन्य का बॉक्स में भी सही का निशान लगाया और उसमें दिए खाली स्थान में- "प्रेम की भाषा"- लिख दिया!

और संयुक्त राष्ट्र हुआ शाकाहारी...

संयुक्त राष्ट्र के सहस्राब्दी सम्मेलन (धार्मिक और आध्यात्मिक नेताओं का) में वे हिंदू प्रतिनिधिमंडल के नेताओं में एक ऊर्जावान नेता थे। यह सबसे बड़ा प्रतिनिधिमंडल था, जिसमें भारत से 108 धार्मिक नेता थे, जिनमें से अधिकांश भारत से बाहर नहीं गए थे और कई तो अंग्रेज़ी भाषा का एक शब्द तक नहीं बोलते थे। कई बार उनको, युक्ति से समझा देना जरूरी हो जाता था, 'आप अपना लंगोट आदि धोकर वाल्डॉर्फ एस्टोरिया के गलियारे या खिड़कियों पर न सुखाएँ' के सूचना-पट्ट लगे हुये है...।' वे कई सीधे सादे साधु सहयोगियों को बताते, 'अमरीका में, लोग इसके आदी नहीं है। वे इसे अच्छा नहीं मानेंगे।'

हमेशा ही शांति और अहिंसा का संदेश फैलाने को उद्यत और आलोचना से बेपरवाह पूज्य स्वामी जी और डॉक्टर एल एम सिंघवी- ब्रिटेन में भारत के पूर्व उच्चायुक्त और सम्मेलन के वरिष्ठ सलाहकारों में से एक- बाबा जैन ने महासचिव को सलाह दी कि क्यों न पूरे सम्मेलन को शाकाहारी घोषित किया जाए?

'पर, क्या यह संभव है?' महासचिव ने शंका व्यक्त की, 'का-न्फ्रेंस में माँसाहारी लोग भी होंगे, चूंकि सब अलग अलग धर्म और

संस्कृति वाले भी हैं, वे क्या सोचेंगे? मुझे यह विचार पसंद है, लेकिन क्या यह व्यावहारिक है?'

पूज्य स्वामीजी तर्कशील थे। डा। सिंघवी एवं श्री बाबा जैन आदि मिलकर महासचिव की चिंताओंके निवारण के लिए तत्पर थे.., 'यह शांति-सम्मेलन है, खान-पान उत्सव नहीं। हम आखिर हॉल में शांति की बात करने के बाद हिंसा करके बना खाना कैसे खा सकते हैं? जो खाना हम दे रहे हैं, उससे सम्मलेन की भावना भी झलकनी चाहिए।' इस तरह, इतिहास में पहली बार, संयुक्त राष्ट्र तीन दिनों के लिए शाकाहारी रहा, जहाँ दुनिया के सर्वोच्च धार्मिक, आध्यात्मिक और सामाजिक नेता शामिल थे।

"मैं शांति चाहता हूँ... मैं शांति चाहता हूँ.... हर कोई कहता है। सीधा सा समाधान है... इस वाक्य में तीन शब्द हैं। "मैं, शांति, चाहता हूँ" इससे 'मैं' और 'चाहता हूँ' हटा दीजिए और आपको 'शांति' अपने आप ही प्राप्त हो जाएगी। शांति कोई खोजनेवाली चीज नहीं है। यह तो मैं (हमारा अहंकार) और चाहता हूँ अर्थात् (हमारी इच्छाएं) ही हैं, जो शांति की राह में बाधाएँ बनती हैं।"

"हमें शोर के बीच शांत होना सीखना होगा।"

शाकाहार क्यों? पूज्य स्वामीजी के शाकाहार के प्रति समर्पण का स्वाद से कोई लेना-देना नहीं है। बल्कि यह तो अहिंसा, पर्याव-रणीय सुरक्षा और मानवता की सेवा के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का उदाहरण है। संयुक्त राष्ट्र ने ग्लोबल वार्मिंग में सबसे बड़ा योगदान देनेवाले कारक के तौर पर मांसाहार-उद्योग को चिह्नित किया है। आँकड़े चीख़ चीख़ बताते हैं कि माँस-उत्पादन का सीधा और घातक प्रभाव पर्यावरण के साथ ही दुनिया की भूख और भुखमरी की समस्या पर भी पड़ता है... पूज्य स्वामीजी समझाते हैं...

अगर हमें ज़रूरी विटामिन, खनिज या कैलोरी अपने जीवन के लिए केवल माँस से मिलते तो बात अलग थी, लेकिन ऐसा नहीं है। फल, सब्जियाँ, अनाज, दालें और मेवा आदि तो हमारी ऐसी सभी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए सक्षम हैं। इसीलिए, घोर यातनाओं के बाद लाखों प्राणियों को मारना तो निरर्थक हिंसा है। यह हिंसा सीधे तौर पर हमारे इंद्रिय-सुख के लिए है, सब्जी और चावल से अधिक हैमबर्गर की पसंद की वजह से है।

माँस उद्योग हमारे लाखों भूखे भाइयों-बहनों को उनके मूलभूत जीवनाधार से और यहाँ तक कि कभी कभी जीवन से भी वंचित करता है। भुखमरी से लाखों बच्चों का मरना हम अपने सहानुभूति-पूर्ण निर्णयों से टाल सकते हैं। उनकी मौतें हमारी लिप्सा के कारण ही होती हैं, हमारे चुनाव से, हमारे गैरज़िम्मेदार निर्णयों से होती है।

दुर्भाग्य से पृथ्वी ग्रह पर जो खाद्य आपूर्ति है, वह सीमित है। खाद्यान्न की कमी और अकाल तो ज़ोरों पर है और पूरी दुनिया में व्याप्त है। भुखमरी से बिलखते बच्चों के मुँह से हर भोजन का निवाला छीन लेने का खतरा क्या हम मोल ले सकते हैं? हर व्यक्ति को खिलाने से अधिक अनाज धरती पर पैदा होता है। किसी को भूखा रहने की जरूरत नहीं, भुखमरी से मरने की बात तो जाने दीजिए। फिर भी यह अनाज मानवों को खिलाने में उपयोग नहीं होता। इसका बड़ा भाग गायों, सूअरों और मुर्गियों को खिलाने में चला जाता है, जो हमारे नाश्ते के सॉसेज, लंच के टर्की सैंडविच या हैमबर्गर और रात्रि-भोजन के रोस्टेड चिकेन या स्टेक बनाने में इस्तेमाल किए जाते हैं।

"विकासशील' दुनिया के लाखों किसान उनके उजड़े खेतों के कारण टूट रहे हैं। उनके सूखे खेतों या फ़सलों के लिए पानी नहीं

है। कई तो आत्महत्या कर लेते हैं, जो खुद को या परिवार को पालने लायक नहीं रहते। कई और बीमार हो जाते हैं, मर जाते हैं। दूसरे अपने पुरखों का खेत छोड़कर पहले से अत्यधिक आबादी वाले शहरों में चले जाते हैं, किसी झुग्गी-झोंपड़ी में रहकर गुजारा करते हैं ताकि किसी तरह ज़िंदा रह सकें। एक आम परिवार दरअसल एक हैमबर्गर का आस्वाद लेने में वास्तव में 2600 गैलन पानी नष्ट कर रहा होता है!

21 वीं सदी की दुनिया इन तथ्यों से बेख़बर नहीं रह सकती। हमें क्वांटम फिजिक्स का जानकार नहीं होना है, यह जानने के लिए कि हमारे व्यक्तिगत फैसले और क्रियाएँ ही सीधे तौर पर इस ग्रह को प्रभावित करते हैं। यदि परिवार में किसी अपने निकटस्थ को कभी ऑपरेशन की आवश्यकता होती है, तो हम सभी तुरन्त ही इस के लिए सबकुछ करने के लिए तत्पर रहते हैं... हम वित्तीय योगदान भी कर देते हैं, ताकि वह जरूरी इलाज करा सके। हम अपने सामान्य जीवन के आनंद, चाहे वह फिल्म हो, मसाज हो या बढ़िया शराब हो...सब का त्याग कर देंगे। ये त्याग भी हमें त्याग नहीं लगेगा और इसके लिए खुद हम खुद को बलिदानी तो कतई नहीं कहेंगे। हम तो सीधे तौर पर अपनी प्राथमिकता और मूल्यों के आधार पर फैसले कर रहे होते हैं- हमारे प्यारे व्यक्ति को जीवित रखना स्पष्ट रूप से किसी मसाज या फिल्म या शराब से अधिक जरूरी है।

दुनिया का हर धर्म हमें बताता है कि दुनिया को एक परिवार की तरह देखें। क्या हम माँस का त्याग कर सकते हैं ताकि हमारे भूखे भाई-बहन खा सकें और किसानों की ज़मीन का सिंचन हो, अमेज़न के जंगलों में या कहीं भी पेड़ न काटें, बल्कि उगाते रहें,

ताकि ग्लोबल वार्मिंग और पर्यावरणीय प्रलय को रोका जा सके? ....ताकि माँ पथ्वी अपनी उपजाऊ ज़मीन पर हमें अन्न की आपूर्ति करती रहे? क्या हम सचमुच उस एकत्व को महसूस कर सकते हैं जो परिवार के लिए होता है...जो हम में नहीं है?, जो एक छत के नीचे नहीं रहते, हमारे आप्त जन नहीं हैं फिर भी क्या उनके लिए भी हम वैसा ही ऐक्य महसूस करते हैं? हम सब को यह समझना होगा कि धरती पर हर प्राणी हमारा परिवार है।

आज दुनिया अनाज की कमी से उतना नहीं जूझ रही जितना चेतना या संवेदना की कमी से पीड़ित है... आज गरीबी, भूख और पर्यावरणीय क्षरण की शोचनीय स्थिति की ज़रूरत यह नहीं है कि हम फेसबुक या ट्विटर पर जुडें या फिर हम अपनी वैश्विक उप-स्थिति फ्रेंड्स या फॉलोअर्स की सूची में देखें, बल्कि आवश्यकता तो यह है कि हम सचमुच विश्व को अपने हृदय में कितना रखते हैं, कितना अपना मानते हैं, यह जानने की है और ... यह आसान भी नहीं है। वेदना अपार और देखने में अंतहीन मालूम पड़ती है। हम सचमुच असहाय और दु:खी महसूस करते हैं। हम स्वयं को ही बंद कर लेते हैं और अपना क्षेत्र ही छोटा कर लेते हैं, ताकि हमें इस वैश्विक वेदना का सामना न करना पड़े। हम और आगे ऐसे नहीं जी सकते हैं। राजनीतिक तौर पर, पर्यावरणीय, सामाजिक तौर पर हम सब को दुनिया की उन चीजों के बारे में भी जानने और आमने-सामने होने की ज़रूरत है, जो हमारी शक्ति से परे और नियंत्रण से बाहर दीखती हैं। हम देख सकते हैं कि हमारे पास बदलाव की उससे कहीं ज़्यादा ताकत है, जिससे हम बिलकुल अनजान हैं...। शायद हम पूरे उद्योग या सरकारी व्यवस्था को न

बदल सकें, लेकिन हम अपनी शॉपिंग, तथा पहनने, खरीदने और खाने के जो भी फैसले करते हैं, उनका एक बड़ा प्रभाव भूखे बच्चों पर, किशोर कन्याएँ एवं कुमारों पर, चौबीसों घंटे जो हानिकारक वातवरण में, कीटनाशकों से लदे कपास के खेतों में काम कर रहे हैं, उन मजदूरों पर पड़ता है... प्रभाव तो खुदकुशी की सोच रहे किसान पर भी पड़ता है और पृथ्वीमाता पर भी पड़ता है।

आप ही हैं राजदूत

वर्ष 2006 में, संयुक्त राष्ट्र के विश्व युवा शांति संवाद में सभी सदस्य देश से प्रतिनिधि उपस्थित थे। नीतिगत तौर पर, कोई धार्मिक या राजनीतिक नेता आमंत्रित नहीं था, क्योंकि सम्मेलन पूरी तरह युवाओं पर केंद्रित था- कल के नेताओं और सच्ची शांति की एकमात्र संभावना के तौर पर। धार्मिक नेता के तौर पर ही सही, इसमें पूज्य स्वामीजी को भी युवाओं के लिए एक आध्यात्मिक गुरु के तौर पर आमंत्रित किया गया था। उन्होंने कहा, 'आप अगली पीढ़ी नहीं हैं, आप नयी पीढ़ी हैं, वर्तमान की पीढ़ी हैं...।' तीन दिनों के सम्मेलन के दौरान उन्होंने युवा प्रतिनिधियों को प्रश्नोत्तर सत्र में और घंटों बाद अनौपचारिक बैठक में मार्गदर्शन किया।

सम्मेलन से दो दिन पहले न्यूयॉर्क के जंगलों में एक शांत एकांत स्थान पर ग्लोबल पीस इनिशिएटिव फॉर विमेन ने एक रिट्रीट का आयोजन किया था। यहाँ वे कई अति सक्रिय और प्रभावी युवा नेताओं से मिले, उनको विचारों पर केंद्रित रहने में सहायता की, आगामी सम्मेलन पर ध्यान केंद्रित रखने में सहायता

की। इनमें से एक युवा महिला ने, जो अफ्रीका से थी, हर सत्र की शुरुआत ताली बजाकर प्रतिक्रिया देने वाले सत्र से की। वह पहले एक आदिवासी संगीत की तरह की आवाज निकालती जिसके बाद एक, दो या तीन बार ताली बजाकर सब को जवाब देना होता। पहले दिन के रिट्रीट के बाद सभी युवा तेज़ी से यह सीख गए थे- हर कॉल पर अलग तरह से ताली बजती- और हर सत्र के पहले, पारंपरिक अफ्रीकन ताली और आवाज़ से वह सत्र गूँज उठता।

दो दिन के बाद न्यूयॉर्क के उस रिट्रीट की सुरक्षा और पहचान से अब संयुक्त राष्ट्र के आधिकारिक हॉल में युवाओं का उत्साह स्वयंपूर्ण हो गया था। जहाँ पहले उनके कदमों में चपलता थी, अब वे संभलकर चलते। बारबरा, जिस युवा महिला ने वह ताली और आवाज़ वाला काम किया था, प्रेजेंटेशन देनेवाले दो या तीन युवाओं में उसका भी नाम था... उन्हें जनरल असेम्बली के मुख्य मंच पर प्रस्तुति देनी थी, जहाँ न केवल महासचिव उपस्थित थे, बल्कि दर्जनों देशों के राजदूत भी मंचस्थ थे।

अपने नाम के इन्तज़ार में बारबरा अपना लिखित भाषण बार बार देख रही थी तो उसके हाथ ज़ोर-ज़ोर से काँपते दिख रहे थे। वह स्वामीजी की सीट तक गयी और घुटनों पर बैठकर उनके हाथ को पकड़कर बोली- मेरे लिए प्रार्थना करें, मैं बहुत नर्वस हूँ।

पूज्य स्वामीजी ने उसके काँपते हाथों को पकड़ा और कहा, - पहले तुम्हें उसी ताली और आवाज़ में शुरू करना चाहिए। उसके बाद भाषण देना...’

उसके काँपते सांसों की आवाज काफ़ी दूर से भी सुनी जा सकती थी- “क्या?... नहीं... मुझे नहीं लगता कि यह उचित जगह और मंच है। मेरे अपने राजदूत मंच पर सामने बैठे हैं।“

पूज्य स्वामीजी झुके और सीधा उसकी आँखों में देखा- 'मेरी प्यारी बच्ची। इस समय स्वयं तुम भी राजदूत से कम नहीं हो अभी! यह हॉल और दुनिया तुम्हारी ऊर्जा चाहती है, न कि कोई एक और टाइप किया हुआ भाषण। तुमको उसी उत्साह से शुरू करना चाहिए, सबको प्रभावित करना चाहिए। यह सम्मेलन उसी विषय में है। बस, कर डालो, भर डालो युवाओं में ऊर्जा!'

उसने अपना सिर झुकाया, कुछ आंतरिक बल इकट्ठा किया और कुछ देर बाद अपना सिर उठाया। उसका हाथ अब भी उनके हाथों में था। 'ठीक है, मैं ऐसा करूँगी। लेकिन, आपको प्रार्थना करनी होगी कि मैं खुद को शर्मिंदा न करूँ, अपने देश, अपने राजदूत को शर्मिंदा न करूँ।' स्वामीजी ने अपना हाथ उसके सिर पर रखा, और इतने में उसका नाम पुकारा गया।

वह शिष्टाचार पूर्वक उठी, सीढ़ियों पर चढ़कर मंच तक पहुँची.... उस जगह, जहाँ से आमतौर पर संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव संबोधित करते हैं। वह और राजदूत निचले स्थानों पर थे। उसने अपनी आँखें बंद कीं और जब खोलीं तो सीधा पूज्य स्वामीजी पर ध्यान केंद्रित किया, जिन्होंने मृदु मुस्कराहट से सहमति में अपना सिर हिलाया.... अपनी बंद मुट्ठी उठाकर मानो छिपा इशारा किया- "जाओ, आगे बढ़ो!"। उसकी पहली कॉल मृदु और सहमी हुई थी, लेकिन माइक्रोफोन ताकतवर थे और आवाज़ स्पष्ट सुनाई दी। तुरन्त ही रिट्रीट में शामिल युवाओं ने तालियों से अपनी सहमति दी। वह उत्साहित हुई, अगली कॉल तेज़ थी और अधिक युवाओं ने तेज़ी से साथ प्रतिसाद दिया। तीसरी और अंतिम कॉल संयुक्त राष्ट्र के जनरल असेंबली हॉल में चारों तरफ गूँज पड़ी। दुनिया के

युवा राजदूत पूरे उत्साह और जोश से साथ दे रहे थे। ....और पूज्य स्वामीजी ने चुपचाप अपने आँसू पोंछ लिए....

बाद में बारबरा, उन के पास उत्तेजित होकर भागती हुई आयी, बोली... 'मेरे राजदूत मेरे साथ एक तस्वीर चाहते थे...।' कैसा अद्‌भुत परिवर्तन!...

स्वयं की पूरी जानकारी और उससे जुड़े रहना ही कुंजी है। वह आत्मा जो दिव्यता के साथ एकाकार है तो पूरी दुनिया के साथ एकरूप है। वह आत्मा अपने खास बल और प्रतिभा के पूरे पैकेज के साथ अनूठी भी है... उसका धर्म उसे पूरा करना है- स्वयं की यही पहचान और स्वीकृति ही पूज्य स्वामीजी सिखाते और बताते हैं- 'यदि तुम गुलाब हो, तो वह सर्वश्रेष्ठ गुलाब बनो, मोगरा बनने की कोशिश मत करो।, अपनी पंखुड़ियों की विशालता या उनकी लालिमा से दुखी मत रहो..., अपनी टहनी के काँटों का दुख मत करो, दुनिया को अपनी गंध से सुगंधित करने और अपनी सुंदरता का आनंद बांटने के लिए पृथ्वी पर तुम्हें गुलाब बनाकर भेजा गया है...और यदि तुम मोगरा बनकर आयी हो तो गुलाब की मखमली पंखुड़ियों की आशा न रखो...न ही उसकी आकर्षक लालिमा की ईर्ष्या करो...दुनिया को अपनी स्वयं की सुरभि से सुगंधित करो...' इसी तरह, जब वे युवाओं से मिलते हैं, बात करते हैं या दुनिया के नेताओं को संबोधित करते हैं, तो विभिन्न मत-मतांतर को भी सम्मानपूर्वक सादर स्वीकार करने का आग्रह रखते हैं...। प्रत्येक धर्म, संस्कृति, आस्था और परंपरा के सभी नेताओं के पास दुनिया से सांझा करने के लिए अनूठे उपहार हैं, जो दुनिया को बेहतर बनाने में नेतृत्व कर सकते हैं। लक्ष्य गुलाब को मोगरा बनाने या मोगरे को गुलाब बनाने का नहीं होना चाहिए, या किसी को स्वयं

को प्रभु द्वारा नियुक्त बगीचे का माली बताना नहीं है...जो यह तय करे कि किस को कहाँ रोपित करना है...एक शांतिपूर्ण भविष्य की कूंजी सभी के गुण, बल, विद्या, शिक्षण, अनुभव और विशेषज्ञता के सदुपयोग में है।

मैं शांति चाहता हूँ...

आज का मंत्र लगता है- मैं शांति चाहता हूँ... मैं शांति चाहता हूँ... हर दिन लोग मुझ से यही कहते हैं, 'स्वामीजी, मैं शांति चाहता हूँ, मुझे बताइए, इसे कैसे पाएँ'?

सच तो यह है कि समस्या और समाधान दोनों ही इस वाक्य में ही निहित हैं। सुनिएः मैं शांति चाहता हूँ। मैं शांति चाहता हूँ । हम इस वाक्य में क्या सुनते हैं? एक 'मैं', एक 'चाहता' और एक 'शांति'। यदि आप 'मैं' और 'चाहता हूँ' हटा दें, तो क्या बचता है? शांति! आपको शांति के लिए कहीं देखना नहीं है, शांति खोजनी या बनानी नहीं है। आपको बस 'मैं' को और 'चाहता हूँ' को हटा देना है। इस पर चिंतन और मनन करना है...शांति तब बिना किसी अवरोध से उपस्थित हो जाती है। यह तो, "मैं और चाहता हूँ" हैं, जो उस खजाने को हमारी आँखों से छुपाते हैं और हमें अपनी प्राकृतिक शांति की सच्चाई के आनंदोत्सव से वंचित रखते हैं।

"चमत्कारों का इन्तज़ार मत करो, तुम स्वयं चमत्कार हो। अपने चमत्कार को कभी न भूलो।"

तो, आंतरिक शांति की कुंजी बाहर खोजने में नहीं है, न ही खरीदने में या बनाने में है, बल्कि चुपचाप, शांति से भक्तिपूर्वक 'मैं और चाहता हूँ' को हटाने में है, ताकि शांति को खोजा जा सके, निकाला जा सके, कहीं बाहर से नहीं, बल्कि स्वयं के भीतर से..।

एक वृद्ध महिला की बड़ी ख़ूबसूरत कहानी है, जो बाहर सड़क पर शाम के समय कुछ खोज रही थी, वहाँ एक बत्ती भी जल रही थी। एक सज्जन व्यक्ति वहाँ से गुजर रहा था। उसने पूछा- 'माँ, क्या मैं तुम्हारी मदद कर सकता हूँ? क्या खोज रही हो'?

बूढ़ी महिला ने कहा- 'मेरी चाबी गुम गयी है, उसे ही खोज रही हूँ'। यह सुनकर वह व्यक्ति भी झुककर उसे खोजने लगा। कई मिनट खोजने के बाद उसने पूछा, 'माँ, क्या तुम्हें याद है कि चाबी तुमने कहाँ खोयी थी'?

उसने जवाब दिया– 'हाँ, बिल्कुल। वह तो घर में कहीं खोई थी...'।

'तो, फिर तुम उसे बाहर सड़क पर क्यों खोज रही हो'?

बूढ़ी महिला ने उसे देखा और जवाब दिया- "क्योंकि, मेरे घर में अंधेरा है। वहाँ प्रकाश नहीं है। यहाँ तो उजाला है। इसीलिए, मैं इस प्रकाश में उसे खोज रही हूँ"। उस सज्जन व्यक्ति ने कहा- "माँ, मैं तुम्हें कुछ राय दे रहा हूँ। बस अंदर जाओ। भले ही वहाँ अंधेरा हो सकता है, लेकिन तुम्हें कुंजी वहीं मिलेगी। अगर तुम्हारे पास सेना भी हो, खोजने के लिए, तो भी चाबी यहाँ नहीं मिलेगी, क्योंकि- प्रकाश चाहे जितना भी हो- कुंजी यहाँ है ही नहीं"।

इस बूढ़ी महिला के लिए वह चाबी शायद किसी तिजोरी, दरवाजे या सन्दूक की होगी। हमारे लिए यह चाबी शांति की है। हम उसे बाहर खोजते ही रहते हैं... जबकि हम उसे भीतर खो चुके हैं। हम शॉपिंग मॉल, रिट्रीट, कोर्सेस, संपत्ति, दूसरे लोगों में उसे खोजते

हैं, जबकि चाबी तो हमारे अंदर है। जवाब बस इतना है कि हमें धीरे धीरे अपने “मैं और चाहता हूँ” को हटाना है, जो शांति को छिपाए रखते हैं।

‘मैं’ को हटाना

यह ‘मैं’ सबसे बड़ी समस्या है, शांति को पाने में। यह हमारा अहंकार है, हमारा कर्ता-भाव है। हमारा अहंकार सोचता है- वाह, मैं अपने काम में कितना सफल हूँ। मैं कितना अच्छा हूँ। मेरे जैसा काम और कोई नहीं कर सकता...’ हालाँ कि, सच तो यही है कि हम केवल काम पर जाते हैं, काम ईश्वर करता है! हम उनकी कृपा प्रसाद के बिना कुछ भी नहीं कर सकते। एक मिनट में हम अपने डेस्क पर दुनिया के राजा की तरह होते हैं, दूसरे मिनट, एक नस... बस एक छोटी-सी नस अगर तड़क गयी या दब गई, तो हम बोलने, लिखने या खुद को खिलाने के लायक भी नहीं रहेंगे।

इसीलिए, एक सच जो हम सबको मानना चाहिए कि हम प्रभु के हाथों में केवल एक यंत्र मात्र हैं। हम उस दिव्य शिल्पकार के हाथों की मिट्टी है। जब तक प्रभु चाहेंगे हमें यश मिलेगा... उनके चाहने से ही मिलता रहेगा... जब तक वह हमारे हृदयों को धड़काना चाहेगा, तब तक ही वह धड़केगा।

हम तो केवल उपकरण, एक माध्यम मात्र हैं...

हाँ, केवल यह महसूस करना ही हमें फुर्ती से, कर्मठता से कार्य करने में छूट नहीं देता... हमारी जिम्मेदारियाँ समाप्त नहीं होतीं...। हमें अपने कर्तव्य को भी पूरी क्षमता से निभाना होगा। हमें अपने हर काम में सावधान रहना होगा। हालाँ कि, जिस सावधानी और गंभीरता से हम अपना काम, अपनी साधना करते हैं, उस श्रम का फल भी तो उसके ही हाथ में है।

जब हम सचमुच अपना जीवन, अपने कर्म और अपनी सारी क्रियाएँ ईश्वर को सौंप देते हैं, तो हमारा छोटा, व्यक्तिगत मैं उस बड़े मैं, सार्वभौमिक मैं, "दिव्य मैं" में मिल जाता है। हमारी जिंदगी उस पानी की बूंद की तरह हो जाती है, जो दिव्य महासागर में मिल जाती है। तनाव, थकान, घमंड और अलगाव गल जाते हैं और हम शांति के उस महासागर में मिल जाते हैं।

'मैं' को झुकाना...

अंग्रेज़ी के मैं यानी आइ अक्षर को देखो। जब यह रैखिक (वर्टिकल) तौर पर खड़ा होता है, तो यह एक बाधा है, लेकिन इसे आड़ा (हॉ-रिजॉन्टल) कर दो, तो यह एक पुल बना जाता है- हमारे परिवारों, समुदाय, और हमारे देशों के बीच।

मैं को झुकाने का मतलब क्या है? इसका अर्थ है विनयशील-ता... इसका अर्थ है त्याग। एक बड़ी प्यारी कहावत हैः-

झुकता तो वो है जिसमें जान होती है... अकड़ तो मुर्दे की पहचान होती है!

इसका मतलब है कि आप यह देखकर कि यदि वह झुक सकता है तो हम कह सकते हैं कि व्यक्ति जिंदा है। चूँकिलाश अकड़ी होती

है। जिंदा आदमी लचीला होता है। लेकिन, कहावत के मायने कुछ गहरे और गंभीर हैं। इसका मतलब है कि अगर हम सचमुच जिंदा रहना चाहते हैं, तो हमें लचीला होना चाहिये। हमें विनयशील होकर झुकना चाहिए, वरना हम मुर्दों से बदतर हैं।

'चाहत' को हटाना

'चाहत का मतलब क्या है?... चाहत हमारी जरूरतों, इच्छाओं, वासनाओं, अधिक और अधिक की अतृप्त कामनाओं का प्रतीक हैं। सभी विज्ञापन, सभी पत्रिकाएँ, सभी टीवी शो, सारी विज्ञापन संस्कृति असीम सुख और गहरे से गहरे आनंद का हमसे वादा करती हैं, सबसे सार्थक अनुभव का दावा करती हैं, हमें लगता है कि निश्चित शांति तो सही एवं बड़ी और बढ़िया कार के मालिक बनने में हैं, सही जींस पहनने में है, शहर के सबसे सही इलाकें में बड़ा-सा घर लेने में है या कहीं महंगे रिज़ोर्ट में छुट्टी मनाने में है।

इस तथ्यीकरण में जो प्रपंच है, वह यह है कि यह न केवल ग़लत है, बल्कि विरोधाभासी भी है। संपत्तियाँ शांति और आनंद तो देती ही नहीं हैं, बल्कि अधिक और अधिक का लगातार संघर्ष हमें तनाव, बेचैनी, क्रोध और खीझ की राह पर धकेलता है।

संपत्ति खुद ही में नाखुशी या बेचैनी पैदा नहीं करती है। पूँजीपति होने या विलासी चीजों के रखने में तत्वत: कुछ ग़लत नहीं है। लेकिन, वह अनियंत्रित और अतृप्त प्यास–'और, अधिक, और अधिक' की है, जो हमारी शांति को चुराती है... हमें हमारे दिव्यत्व से दूर कर देती है। हमारे पास जो है, उससे असंतुष्टता

और जो नहीं है, उसकी प्यास ही वास्तव में हमारे आत्यंतिक और कभी खत्म न होनेवाले असंतोष का जनक है। ये मन माँगे मोर कभी तृप्त नहीं होता...

इन दिनों अधिकांश लोग 'घोषित बहुतायत' या 'प्रबुद्ध बहु-तायत' की बात करते हैं। मैं उनको हमेशा याद दिलाता हूँ कि बहुतायत हमारे पास नहीं है। हमारे पास जो है उस के बारे में हम कैसे सोचते हैं...उसको हम कैसे देखते हैं, उसके बारे में है। यदि हम सोचते हैं कि हमारा कप पूरा भर कर छलक रहा है और हमारी आंतरिक संवेदना बाँटने और साझा करने की है, तो हम धनी हैं... यदि हम महसूस करते हैं कि सड़क की दूसरी ओर घास हरी है और हमारा कप आधा खाली है, और हमारी आंतरिक संवेदना पकड़ने और संचय करने की है, तो हम गरीब हैं। यथार्थ प्रबुद्धता, यथार्थ आध्यात्मिक जागरण, दिव्यता की सही अभिव्यक्ति, धन का पहाड़ खड़ा करने में नहीं है। दरअसल, भौतिक समृद्धि को जमा करने में हम जितनी अधिक रुचि रखते हैं उतनी ही हमारी आध्यात्मिक शक्ति कम होती है... आध्यात्मिक जागरण का सही लक्षण तो 'धन्यवाद प्रभु' में है, 'कृपा हो, प्रभु' में नहीं है, 'और मिले और मिले प्रभु'...इस में नहीं है। जितने जाग्रत हम होंगे, उतनी कम हमारी जरूरतें होंगीं और उतना ही अधिक हम बाँटना चाहेंगे।

हमारे पास आजकल सुविधा की सारी चीजें होतीं हैं। हमारे पास टीवी सेट है, सोफा सेट है, वीडियो सेट है, स्मार्ट फोन आदि आदि सब सैट...लेकिन हम खुद अप-सेट हैं! क्यों? क्योंकि कोई भी टीवी या सोफा या स्मार्ट फोन भौतिक सामान हमें स्थायी खुशी नहीं दे सकता है। हमारी आंतरिक शांति से कोई सरोकार न रखनेवाले सब सामान इकठ्ठा करने में हम खुद को जुटाते हैं, उतना ही कम

समय, ऊर्जा और ध्यान हम वास्तविक आध्यात्मिक अनुष्ठान को दे पाते हैं। इसीलिए, हम और अधिक अप-सेट बने रहते हैं। सब सैट पर माइंड अपसैट।

मैं हमेशा कहता हूँ, - “अपेक्षा ही कुंठा की जननी है और स्वीकृति शांति और आनंद की माँ है”। यदि हम अपेक्षा नहीं रखते..., तो हम सदैव शांति में रहते हैं। शांति में रहने की चाबी, किसीसे कोई भी उम्मीद न रखने में है... ईश्वर के अलावा कुछ भी और लालसा न होने में है। जब तक हमारी आशा-आकांक्षाएँ भौतिक सुखों और उपलब्धियों पर निर्भर है, हम सदैव दीन-दुखी ही रहेंगे। प्रभु से जुड़ने पर ही हम सच्चे आनंद का अनुभव कर पाएँगे...।

अध्याय आठ

देना ही जीना है...

जगन्माता

पूज्य स्वामीजी के लिए दुनिया उनका घर और परिवार है। एक माँ की तरह ही- शायद बिना सोए, शायद कभी बिना खाए भी- वह अपने बच्चों की तरफ दौड़ती है, वैसे ही पूज्य स्वामी जी इस दुनिया की पुकार और क्रंदन की ओर दौड़ पड़ते हैं...। माँ ही केवल झट से और सहज-भाव से सोचती है कि उसके बच्चे की देखभाल कैसे हो? वह इसे आनंदपूर्वक करती है, उसका हृदय वात्सल्य, कोमलता, सहनशीलता, और ममता से भरा होता है। पूज्य स्वामीजी ने चूँकि संन्यास और ब्रह्मचर्य का जीवन सामान्य मनोवृत्तियों के उगने से पहले ही ले लिया था, वे रिश्ते-नाते से किसी के पिता नहीं हैं... लेकिन, वे हरेक भूखे बच्चे को अपने भूखे बच्चे की तरह देखते हैं... कोई भी लड़की जो परित्यक्ता हो, तिरस्कृत हो, उसे वह अपनी बेटी की तरह देखते हैं। प्रत्येक मरीज़, जो बीमार

है, इलाज कराने में लाचार हो, वे माँ की तरह सदैव चिंतन करते रहते हैं...कैसे उन्हें सुविधा मिले, कैसे इनकी पीड़ा व कष्ट कम हो....

'देना ही जीवन है। सीखते रहना ही जीवन है। सीखना ही जानना है। सही जानना ही विकास की ओर बढ़ना है, और फ़िर उसे बाँटते रहना ही जीवन है।' जीव-वैज्ञानिक जीवन-चक्र को विकास, मृत्यु और प्राणियों के जन्म की तरह देखते हैं। पतझड़ में पत्तियाँ झड़ जाती हैं और ठंड की बर्फ पिघल कर नयी और समृद्ध मिट्टी को जन्म देती है, जिसमें फूल और पौधे पनपते हैं। पत्तों का झड़ना और नियमित तौर पर जाड़े का पाला पिघलकर मिट्टी में मिलता है...तो मिट्टी उपजाऊ होती जिस में वसंत ऋतु के समय फूल और वृक्ष खिलते हैं...। सालाना पत्तों का सूखकर झड़ना और जंगलों को नियमित तौर पर झुलसानेवाली प्राकृतिक आग या दावानल एक नयी उपजाऊ मिट्टी को जन्म देती है... पूज्य स्वामीजी के लिए जीवन-चक्र जीव-विज्ञान से संबंधित नहीं है। उनका चक्र केवल 'देना ही जीवन है'। वे हमेशा ही भक्तों से कहते हैं, 'हमारे ग्रंथों में धनी होने या पैसा कमाने की कोई मनाही नहीं है। स्वामीजी स्पष्ट करते हैं, 'शास्त्रों में कहा है सैंकड़ों हाथों से कमाओ और उसे हज़ार हाथों से उदारतापूर्वक बांटो...यही जीवन में प्रसन्न रहने का मंत्र है...'

जहाँ भी पूज्य स्वामीजी जाते हैं, वे जो भी देखते हैं, वहाँ नि-रपवाद रूप से एक परियोजना आकार लेने का इन्तज़ार करती है। विद्यालय, व्यावसायिक प्रशिक्षण, अनाथालय, स्वास्थ्य सेवा केंद्र, ग्रामीण विकास परियोजनाएँ, पर्यावरण संरक्षण और पारिस्थिति से संबधित कार्यक्रम.... न तो उनकी कोई सीमा है... न विस्तार, क्षेत्र या संख्या में कोई प्रतिबंध है, वे सदैव सहयोग करने के लिए तत्पर रहते हैं। न ही कोई पूर्व नियोजन होता है। 'जो भी मेरी गोद में

प्रभु भेज देते हैं, यह उनका ही संकल्प होता है, वे ही उसे पूरा भी करते हैं...'- यही स्वामीजी की व्याख्या है, जो वे जरूरतमंद लोगों, नदियों के प्रदूषण, तीर्थस्थलों की दुर्दशा और सामान्य अभावों को अपनी सेवा का क्षेत्र बनाते वक्त देते हैं। जो उनके नज़दीक हैं, वे मुस्कुराते हैं और कहते हैं कि सामान्यत: लोग यात्रा पर, पूजा और दर्शन के लिए जाते हैं और घर लौटते हैं। पूज्य स्वामीजी यात्रा पर जाते हैं, पूजा करते हैं, दर्शन करते हैं और पूरे क्षेत्र को गोद लेते हैं... फिर घर लौटते हैं। वे बताते हैं कि स्वामीजी कभी भी किसी भी तीर्थस्थल से पूरे क्षेत्र में कुछ नया कैसे हो उसपर चिंतन करते हैं...फिर वापिस लौटते हैं...वे बताते हैं कि स्वामीजी कभी भी किसी भी तीर्थस्थल से कुछ न कुछ नया प्लान बनाए बिना नहीं आते हैं!

'और मुझे क्या करना चाहिए....मेरा जीवन आलसी की तरह बैठने को तो नहीं है।'–स्वामीजी किसी के पूछने पर जवाब देते हैं। वे कहते हैं, 'मेरा जीवन सेवा के लिए है। यदि तुमने एक बार सबमें ईश्वर को देख लिया, तो तुम महसूस करोगे कि मानवता की सेवा ही ईश्वर की सेवा है। यह केवल किसी आदमी या महिला या बच्चों की बात नहीं है, जिनकी हम सेवा कर रहे हैं। यह नदी या जंगल नहीं है, जिनकी हम रक्षा कर रहे हैं। यह तो इन लोगों या महिलाओं या बच्चों या नदी के रूप में हम प्रभु की ही पूजा कर रहे हैं, सेवा कर रहे हैं...। उस दिव्यता की संवेदना जो हम सब में है उसे अनुभव करने की क्षमता या दृष्टि हमें साधना के संबल से मिलती है... । यही कारण है कि सच्चा ज्ञान योग और सच्चा भक्ति योग सीधा निष्काम कर्म योग की ओर ले जाता है।'

चमत्कार, या शायद नहीं!... क्योंकि स्वामीजी तो इसे प्रभुकृपा

बताते हैं, जिस क्षण वे किसी परियोजना के लिए हाँ कहते हैं, उसे पूरा करने के साधन उसी क्षण से ही प्रभु कृपा से जुट जाते हैं ...

विध्वंस की लहरें और पुनर्वास की तरंगें

दिनांक 26 दिसंबर 2004 को एक त्रासद सुनामी ने दक्षिण भारत, इंडोनेशिया और थाइलैंड के तटीय इलाकों को तबाह कर दिया था। तीन दिनों बाद, जब ख़बर परमार्थ निकेतन पहुँची, उस वक्त एक बड़ा कार्यक्रम वहाँ हो रहा था, फिर भी पूज्य स्वामीजी ने तुरन्त ही दक्षिण भारत जाने का निर्णय कर लिया। पाँच ऋषिकुमार और साध्वी भगवती जी उनके साथ चेन्नाई आए, जहाँ विवेक ओबेरॉय (प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता) इन्तज़ार कर रहे थे। पूज्य स्वामीजी एवं विवेक ओबेरॉय, पूरी टीम के साथ ही तमिलनाडु के आपदाग्रस्त इलाकों की तरफ गए।

मूल तौर पर, उन्होंने 1 जनवरी को एक बड़ा, विशाल यज्ञ करवाने का विचार किया था, जो इस आपदा में मारे गए और उनके परिवारों में जो पीछे छूट गए... साथ ही सुनामी के अनाथ हो गए बच्चों को गोद लेने पर भी विचार किया। स्थानीय स्तर पर अनाथालय बनाने या उनको ऋषिकेश के गुरुकुल लाने की भी योजना थी, जो सरकार के रुख़ पर निर्भर थी। जब वे आए और पूरी तबाही और जानोमाल का नुकसान देखा तो पूज्य स्वामीजी ने महसूस किया कि एक यज्ञ और अनाथालय से आगे भी बहुत कुछ करने की ज़रूरत है। एक हैंडबैग और दो जोड़ी कपड़ों के साथ वे लगभग एक महीने तक वहीं रहे, सात सामुदायिक रसोईघरों का अस्थायी निर्माण किया गया जहाँ हज़ारों लोगों को रोज़ाना दो बार

गरम खाना मिलता था, चूँकि समुद्र तटीय, मल्लाह और मच्छीमारों का गाँव था और उनकी नौकाएँ टूट चुकीं थी, नौकाओं के निर्माण और प्रतिस्थापन का काम किया गया और हजारों जूते, कपड़े, खा-द्य-सामग्री और दूसरी ज़रूरत की चीज़ों को उनमें बाँटा, जो सब कुछ खो चुके थे।

पहले दिन उन्होंने देवनामपट्टनम् को चुना जो समुद्र तटीय गाँव था और जहाँ सुनामी का सबसे अधिक कुप्रभाव था। एक बड़े, सूखे खेत में खड़े होकर पूज्य स्वामीजी कड्डलूर के ज़िलाधीश और राहत आयुक्त के साथ चर्चा कर सुनामी से प्रभावित लोगों के लिए घर बनाने की बात कर रहे थे, जिसमें देवनामपट्टनम् गाँव भी आता है। तबाही को पाँच दिन बीत चुके थे और अधिकांश पीड़ित उस मलबे पर नि:स्तब्ध बेजान पत्थर की तरह पड़े थे, जो कभी उनका जीवन होता था, बिना पलक झपकाए वे लहरों को देख रहे थे, जो अब बिल्कुल शांत दिखाई पड़ती थी। एक भूमि, जिसने कभी पोस्ट-ट्रॉमैटिक स्ट्रेस डिजॉर्डर (disorder) के बारे में कभी सुना ही नहीं था, और अब सुनामी आपदा के कारण इसने किसी को छोड़ा ही नहीं था। पूज्य स्वामीजी ने कहा, 'हमें इनके लिए तुरन्त घर बनाकर देने चाहिए। इन औरतों को कपड़े बदलने की जगह चाहिए।' अधिकारियों ने कहा कि आधिकारिक तौर पर जमीन वितरण की नीति निश्चित नहीं हुई है और उसमें शायद अभी कई हफ्ते लगेंगे। 'तो फिर, कम से कम अस्थायी घर हमें बनाने दीजिये। वे झोंपड़ी में पहले भी रहे हैं। फिर से रह सकते हैं, जब तक जमीन उनके स्थायी निवास के लिए नहीं दे दी जाती है, उन्हें कुछ आसरा तो होना आवश्यक है...।'- स्वामीजी ने कहा।

सवाल तब उठा कि अस्थायी घर कहाँ बनाए जाएँ? स्वामीजी

ने बंजर, सूखी जमीन को दिखाते हुए कहा–यहाँ कैसा रहेगा? यह खेत सरकारी संपत्ति है। यह खाली है। यह चौरस है और हम शायद आसानी से यहाँ 100 घर खड़े कर सकते हैं। ज़िलाधीश ने अनुमति दे दी और एक स्थानीय ठेकेदार को स्वामीजी के पास मिलने भेजा ताकि पता चले कि आखिर वास्तव में बनाना क्या है?

कुछ घंटों के बाद, दक्षिण भारत की कड़ी धूप में पूज्य स्वामीजी अनुवादक के जरिए ठेकेदार को बता रहे थे, 'प्रथम चरण में हम कम से कम 100 घर चाहते हैं, अधिक से अधिक जितने भी हों। वे अच्छी गुणवत्ता के हों, क्योंकि कोई नहीं जानता कि स्थायी निर्माण कब होगा, इसीलिए उनको बढ़िया होना चाहिए, मैं अगले 36 से 48 घंटों में कम शुरू होना देखना चाहता हूँ। ये लोग पाँच दिनों से घर के बिना हैं। हमें तुरन्त घर बनाने की ज़रूरत है।' ठेकेदार इस शर्त पर राजी हो गया कि आधी रकम- उसे तुरन्त मिले और बाकी आधी निर्माण पूरा होने पर। पूज्य स्वामीजी ने हामी भर दी....

साध्वी भगवती ने ऋषिकेश के पाँच युवक ऋषिकुमारों की तरफ़ देख कर पूछा कि क्या उनके पास कुछ धन है? सब मिलाकर उनके पास पाँच हज़ार से कम रुपए थे। उन्होंने विवेक ओबेरॉय की तरफ़ देखा। उन्होंने कहा कि मुंबई से पर्याप्त नकद आने में कुछ तो दिन लगेंगे। कोष उपलब्ध था, पर तुंरत नहीं। उनके पास कोई एटीएम नहीं था, जिस से पैसा निकाल सकें। सुनामी अभी तबाही मचा कर गयी थी और आधारभूत सुविधाएँ गायब थीं। उन्होंने सोचा कि आखिर वे सूरज ढलने तक कहाँ से और कैसे इतनी धनराशि ला पाएँगे, ताकि सुबह में वह काम शुरू हो सके। वह चेक तो लेगा नहीं और मुबंई या ऋषिकेश से गया बैंक ड्राफ्ट तो कम से कम अगले दिन दोपहर बाद ही आ पाएगा।

कुछ घंटों बाद जब झुलसाती धूप का प्रकोप कम हुआ, तो उजड़े हुए इलाके से ही एक भाड़े की टैक्सी इन लोगों के पास आ कर रुकी। वह कार धुएँ के बादल उड़ाती ठीक उस शेड के पास आयी, जहाँ इन्होंने प्रोजेक्ट 'होप' का मुख्यालय बनाया हुआ था। पीछे के दरवाजे से पूज्य स्वामीजी के भक्त निकले, वे साध्वी भगवती जी और ऋषिकुमार को पहचानते थे... उन्होंने उनका स्वागत किया... वे चकित थे कि दिल्ली से इतनी दूर वह युगल क्या कर रहा है? उन्होंने बताया कि वे कल परमार्थ निकेतन गए थे क्योंकि नया साल वह पूज्य स्वामीजी के साथ गंगा के तट पर बिताना चाहते थे। आने पर उन्हें पता चला कि स्वामीजी तो चेन्नाई में हैं। परिस्थिति की गंभीरता जानकार वे वापस दिल्ली गए, वहाँ से चेन्नाई की उड़ान ली, एयर पोर्ट से टैक्सी किराए पर ली और पूछते पूछते यहाँ पहुँचे। एक पूज्य संत और विवेक ओबेरॉय जैसे सितारे की मौजूदगी छुपनेवाली नहीं थी..., खबर फैल गयी थी और उन्हें आसानी से जगह का पता मिल गया। जब तक वह नींबू पानी पी रहे थे, उस आदमी ने अपने हैंडबैग में से एक

"हमें ईश्वर के दिव्य बगीचे के माली की तरह जीवन बिताना चाहिए, हर फूल और हर पौधे का ध्यान रखते हुए, लेकिन कभी भी किसी से मोहग्रस्त नहीं होना चाहिए कि क्या खिलेगा, कब खिलेगा, कौन सा फल होगा और कौन मुरझा जाएगा.."

लिफ़ाफ़ा निकाल कर देते हुये कहा कि वह नववर्ष का दान था। 'हमने इसे पूज्य स्वामीजी को ऋषिकेश में देने का सोचा था, लेकिन जब हमने उनके यहाँ होने की खबर सुनी तो सोचा शायद यहाँ वह कुछ काम आ सके।' लिफ़ाफ़े की राशि ठीक उतनीही थी जितनी उस ठेकेदार को शाम ढले देनी थी... 50% जो उस ठेकेदार ने शर्त रखी थी।

पूज्य स्वामीजी आश्चर्यचकित नहीं हुए, कि उस युगल ने एक चमत्कार की तरह आकर ठेकेदार को देने वाले पैसों का भुगतान किया...। 'जब तुम ईश्वर का काम करते हो, वह हमेशा तुम्हारा ध्यान रखता है'- यही उनका जवाब था।

जय गंगे! यात्रा: गौमुख से गंगोत्री तक...

यात्रियों की सुबह अंधेरे में शुरू हुई थी, भोजवासा का जेनरेटर सुबह सात बजे ही बंद हुआ था, जब तक वे रास्ते के लिए निकल चुके थे। उनके हाथों में हल्के बैग थे, जिसमें नाश्ता, पीने का पानी और एक जोड़ी अतिरिक्त कपड़े थे। वे गौमुख की ओर जा रहे थे- माँ गंगा के उद्गम स्रोत की ओर। ग्लेशियर ऊपर खड़ा था और अरुणोदय हो रहा था... धीरे-धीरे छाया पहाड़ों से हटती गयी और जब वे पहुँचे तो सुबह की सुनहरी रोशनी में पूरा ग्लेशियर दिखा। अंतिम मोड़ बिना किसी रास्ते के था... केवल पत्थर थे, जो आसपास के पहाड़ों से गिरे थे और उनको ही एक के ऊपर एक जमा दिया था। पूज्य स्वामीजी चुस्त, चपल और जैसे ग्लेशियर उन्हें पुकार रहा हो ऐसे आत्मविसवास भरे पदन्यास में चल रहे थे...उन के पीछे सभी यात्री सावधानी पूर्वक चल रहे थे।

बर्फीला पानी ग्लेशियर के मुँह से निकल रहा था- सफ़ेद और झागदार, जब वे जमीन पर गिरे और पूछा, 'क्या आप सचमुच नहाने जा रहे हैं...यह तो जमानेवाली ठंड है।' समूह के अंदर फुसफुसाहटट होने लगी। यह सचमुच जमानेवाला बर्फ़ का जल था। उस धारा में कुछ देर तक हाथ रखने से ही वह सुन्न हो जा रहा था, लेकिन उस जमानेवाले पानी से कृपा की एक अलग धार ही आ रही थी। पहली धार में स्नान जरूरी था, दूसरी में असंभव। इसीलिए, एक के बाद एक और फिर समूह में सबने उस पिघलते, बर्फ होते, जलते अद्‌भुत कृपा जलधार में स्नान किया। वे खुद को- कुछ तो सकुचाते हुए, कुछ निरपेक्षता से- माँ की गोद में डाल रहे थे, उन की बाँहों में झूल रहे थे और दिव्य आनंद के सागर में हिलोरें भर रहे थे।

गंगा उनकी आँखों से निकल रही थी, वे नदी से निकले और पूज्य स्वामीजी के चरणोंपर झुके, उनके अंगूठे को अपने आँसुओं के जल से प्रक्षालित करते हुए... कुछ पलों का ध्यान दिनों की तरह लगा, क्योंकि उगते सूरज की किरणों में नहाते बड़े बड़े शिलाखंडों पर बैठे हुये यात्रियों का जत्था शांति के सागर में डूब गया था। 'इंद्रियों को समेटने' का निर्देश जरूरी नहीं था, क्योंकि इंद्रियाँ तो खुद ही उस ठंडी हवा और बहती धार में शांत हो गयी थीं।

"माँ गंगा का जल हमेशा पवित्र है, लेकिन हमें इसे स्वच्छ रखने की शपथ लेनी होगी, इसके लोए मिलकर काम करना होगा।"

सूर्य ऊपर आ गया था और उसने यात्रियों के भीगे हुए शरीरों को बड़े प्यार से छूकर स्वागत किया... तब उन्होंने कपड़े बदले और सुखाए और फिर गौमुख से गंगोत्री के 12 किलोमीटर के ट्रेक के लिए तैयार हुए। उन्होंने यह चढ़ाई मौन में ही की। वहाँ कोई शब्द नहीं थे, भाषा की जरूरत भी नहीं थी। इस अनुभव ने उनको भाषा की अभिव्यक्ति से परे जो दुनिया है उस से रूबरू किया!

वह मौन केवल एक किशोर ऋषिकुमार के बोलने से टूटा, 'महाराजजी, रुकिए। उसे मैं ले लूँगा।' दरअसल, पूज्य स्वामीजी रास्ते से तर कर उस तीखी ढलान पर उतर गए थे और एक खाली चिप्स का पैकेट उठा रहे थे। ऋषिकुमार जब उसे लेने उतरे, तो पूज्य स्वामीजी ने अचानक ही दूसरे कुमार का ध्यान एक खाली पानी की बोतल की तरफ आकर्षित किया, जो वैसे ही झाड़ियों में फेंका गया था। ऋषिकुमार समझ गया और वह अपनी धोती समेट कर बोतल उठाने चला गया।

अचानक ही सभी यात्री रास्ते में देखने लगे और जहाँ जहाँ भी कूड़ा बिखरा था उसे उठाने लगे। पूज्य स्वामीजी ने अपनी दूरदृष्टि से पहले ही संभावित आवश्यकताओं जान लिया था.... उन्हों ने अपने झोले से कई काले कूड़ा इकठ्ठा करनेवाले बैग निकाले और यात्रियों के बीच बाँट दिए। यह वैसा ही प्रसाद था, जो गुरु बाँटकर न केवल लेनेवालों की जिंदगी को मीठी करता है, बल्कि दुनिया को भी मीठा बनाता है।

कुलियों ने फटी आँखों से देखा कि कई पूज्य संत, विख्यात अंतरराष्ट्रीय डॉक्टर, हाई कोर्ट के न्यायाधीश, बेवरली हिल्स के करोड़पति, हॉलीवुड सितारे, और वेदपाठी ब्राह्मण छात्र झुक-झुककर पूरे रास्ते वह कूड़ा उठा रहे हैं, जो रास्ते पर बिखरा पड़ा है। जिस

समय तक समूह गंगोत्री पहुँचा, सूरज बहुत तेज़ी से ढल रहा था, फिर भी काले बैग में खाली तंबाकू के पैकेट, चिप्स पैकेट्स, पानी के बोतल, बिस्किट के खाली पैकेट्स, और कई सारे सामान भर चुके थे, जो हजारों यात्रियों द्वारा बरसों से फेंके गए थे...।

लोगों ने आश्चर्य से पूछा, 'आप गौमुख से गंगोत्री के बीच का कूड़ा बटोर लाए?'- 'क्या आप अपने घर का कूड़ा नहीं उठाते? मेरे लिए, माँ गंगा का उद्गम मेरा घर है। यह तो बिल्कुल स्वाभाविक है कि मैं उसे साफ रखूँ।- स्वामीजी का सरल-सा जवाब था।

उस यात्रा के बाद के वर्षों में, जब पूज्य स्वामीजी की परियोज-नाएँ माँ गंगा के जल को अविरल और निर्मल रखने के लिए शुरू हुईं और काफ़ी बढ गयीं, वे बार-बार लोगों को आवाहन करते- हमें न केवल अपने घर, बल्कि गली को भी साफ रखना है। जितना ध्यान हम अपने घर को साफ़ रखने में देते हैं, उतना ही ध्यान हमें गली को भी साफ़ रखने में देना चाहिए।

इसीलिए, बहुआयामी, बहुचरणीय पारिस्थितिकीय और पर्याव-रणीय परियोजनाओं के पीछे उन की जड़ में आध्यात्मिकता है, न कि विज्ञान। वह विज्ञान तो बाद में आया है, जब इंजीनियर और विशेषज्ञ हॉर्टीकल्चर, सॉलिड वेस्ट मैनेजमेंट या फिर वेस्ट वाटर मैनेजमेंट, सौर ऊर्जा या नदी की पारिस्थिति आदि के संदर्भ में पूज्य स्वामीजी के साथ आ जुडे और उनके गंगा एक्शन परिवार के साथ जुड़े। परियोजना की आधारशिला और जिस ऊर्जा के साथ वे काम करते हैं, उसकी जड़ें दुनिया को एक परिवार देखने में हैं। हम सभी सुनिश्चित करते हैं कि हमारे बिस्तर बने हों, बरतन धुले हों, फर्श बुहारा हो, बिस्तर के आवरण साफ़ हों और कूड़ा किसी अतिथि के आने से पहले बुहार कर फेंक दिया गया हो। बिना अतिथियों के

भी ये काम रोज़ाना के आधार पर किए जाते हैं। इसी तरह, कोई भी खुद समझ जाता है कि किसी के घर का फर्श कूड़े से नहीं सजा होना चाहिए। पूज्य स्वामीजी के अनुसार, समस्या यह है कि हम सोचते हैं कि हमारे घर की सीमा खत्म होते ही बाहरी दुनिया शुरू होती है। यदि वह सीमा ही हमारे रहने की भौतिक सीमा है, तो इसका मतलब हमारा आध्यात्मिक अभ्यास अभी कम है।

इसीलिए, उन्होंने कई सारी ऐसी परियोजनाएँ शुरू की हैं, जो पर्यावरणीय संरक्षण और सुरक्षा को समर्पित हैं। उन्होंने 2010 में गंगा एक्शन परिवार की स्थापना की। पूज्य स्वामीजी जिन्होंने कभी भी पारंपरिक तौर पर जिन्होंने कभी जीव-विज्ञान की कक्षा में बैठकर पढ़ाई नहीं की, अभी दिन भर विशेषज्ञों के साथ बैठकर उन एन्ज़ाइम तक पर मंथन करते हैं, जो नदी के पानी को साफ़ करता है। उन्होंने रसायन या भौतिकी शास्त्र में कभी कक्षा में बैठकर पढ़ाई नहीं की, लेकिन वे बिल्कुल विस्तार से चर्चा करते हैं कि किस तरह एक सौर बैटरी बिल्कुल कम लागत पर ऊर्जा मुहैया करा सकती है।

जब काम शुरू हुआ, विविध वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की तरफ से ई-मेल आने लगे, जो इस परियोजना से जुड़ना चाहते थे। इन मेल्स में आम तौर पर स्वामीजी की आदरात्मक प्रशंसा के साथ लेखक या लेखिका अपने इंजीनियरिंग और वैज्ञानिक रिसर्च के लम्बे पीडीएफ अटैचमेंट की तरह डाल देते थे। उनकी सचिव भोलेपन में केवल मेल के ही प्रिंट निकालती थी, यह सोचकर कि अटैचमेंट तो कागज की बर्बादी होगी, क्योंकि पूज्य स्वामीजी तो उसे देखेंगे नहीं। कुछ दिनों बाद उन्होंने उससे पूछा, ‘क्या इसके साथ कोई अटैचमेंट नहीं था।”

वह लड़खड़ायी- 'जी, महाराजजी, लेकिन मुझे लगा कि आपको जरूरत नहीं होगी। वैसे भी वे विस्तृत वैज्ञानिक शोध प्रबंध थे'।

उनका जवाब साधारण होता- 'उनका प्रिंट आऊट भी ले कर आओ'।

जल्द ही उनका टेबल और बैठक उन तकनीकों से संबंधित काग़ज़ों से भर जाता, जिसमें गंदे पानी को टॉयलेट से इकठ्ठा कर एक फ़िल्टर के मार्फत खेतों तक ले जाया जाता, मक्के के उत्पाद को पॉलीथीन के विकल्प की तरह अपनाने का प्रस्ताव होता या फिर उन पेड़ों की बात होती, जो भू-स्खलन को रोकते हैं।

जिस सहजता और तत्परता से वे इन कागजों को पढ़ते थे, समझते और उन पर बहस करते थे और उन विचारों को कई बार आगे भी बढ़ाते थे, पहले तो उनके आसपास के लोगों को चौंकाते थे, जब तक वे यह समझना शुरू न कर दें कि वे सीधे तौर पर ज्ञान के सार्वभौमिक भंडार तक पहुंच रहे हैं। अधिकांश लोग उसी ज्ञान तक रह जाते हैं, जो उन्होंने व्यक्तिगत तौर पर सीखा होता है, चाहे वह उनके अपने प्रत्यक्ष अनुभव से हो या फिर सुनने या दूसरों के अनुभव जानने से हो। वे तो दूसरों के ज्ञान तक भी उसी सहजता से पहुँच जाते थे, जैसे वह खुद का हो, भले ही उन्होंने व्यक्तिगत तौर पर उसे जाना या सुना नहीं है।

इस प्रकार, जो कार्य माँ गंगा के उद्गम पर गंदगी बुहारने से शुरू हुआ था, वह अब 2500 कि॰ मी॰ की परियोजना है, पाँच राज्यों से गुज़रती हुई, लगभग 45 से 50 करोड़ लोगों को प्रभावित करती हुई....

जब पूज्य स्वामीजी लंदन के भक्तों के घर में अपने 59 वें जन्मदिन पर बैठे थे, तो एक छोटा लड़का उनसे पूछता है कि वे

अपने जन्मदिन पर क्या चाहते हैं? वे जवाब देते हैं, 'कुछ भी नहीं मेरे बच्चे। प्रभुकृपा से मेरे पास सबकुछ है'।

पूज्य स्वामीजी कभी कोई उपहार स्वीकार नहीं करते। दरअसल, यदि कोई ग़लती से उनको कुछ दे भी देता है और यदि भाग्यवश उस पर टैग लगा है, यानी उसे लौटाया जा सकता है, तो पूज्य स्वामीजी तुरन्त ही उसे देनेवाले को लौटा देते हैं। यदि देनेवाले ने सारे टैग हटा दिए हैं और वह उपहार किसी तरह नहीं लौटाया जा सकता, तो वे कभी संयोगात् उसे स्वीकार कर लेते हैं, लेकिन एक शर्त लगाकर- आगे कोई उपहार नहीं? वे हर देनेवाले से यह वादा लेते हैं, इसलिए इस बच्चे को दिया जवाब चौंकानेवाला नहीं था।

लेकिन, कुछ देर बाद जब वह बच्चा थोड़ा उदास होकर वापस जा रहा था, तो पूज्य स्वामीजी ने ऊपर देखा और कहा, 'मैं जानता हूँ तुम मुझे क्या दे सकते हो'। अचानक ही रूम में थोड़ी सी उत्तेजना फैल गयी। हर तरह की बातचीत बंद हो गयी और वह बच्चा फ़िर से पूज्य स्वामीजी के पास पहुँचा, 'क्या सचमुच आप उपहार लेंगे?'

पूज्य स्वामीजी ने निर्णायक सुर में कहा, 'हाँ, ज़रूर! एक शौचालय... तुम एक शौचालय बना सकते हो।' बच्चे का उत्साह तुरन्त ही उसके चेहरे से निचुड़ गया। एक शौचालय गुरु को देने के लिए कोई आकर्षक उपहार तो नहीं ही है। लेकिन, स्वामीजी गंभीर थे। वे वयस्कों की तरफ़ मुड गए, 'भारत में शौचालय से अधिक टेलीफोन हैं। हर दिन लाखों महिलाएँ अंधेरे में शौच के लिए जाती हैं, क्योंकि दिन के उजाले में वह शर्म से ऐसा नहीं कर पाती। सोचिए, जरा सोचें कि गर्भवती या बीमार महिलाओं की क्या हालत होती होगी, जब आप ठंड से कांप रहे हों और आपको बाहर जाना

पड़े। कल्पना कीजिए कि आप रेल की पटरी के किनारे निपट रहे हैं और हर बार किसी ट्रेन के आने पर उछल रहे हैं। पूरे के पूरे स्कूल बिना बाथरूम के हैं। पूरे दिन बच्चे और बच्चियाँ बाहर दौड़ते रहते हैं। सोचिए, कि पूरे गाँव में कई सौ परिवारों को कम से कम दो बार दिन में बाथरूम जाना है। सोचिए कि कितने गाँव होंगे, 2500 किलोमीटर के इलाके में। पूरे गंगा के क्षेत्र में कितने लोग उसके तटों पर रोज यह काम करते होंगे। हमें शौचालय बनाने चाहिए, लोगों के लिए, गंगा के लिए।'

इस तरह थ्री टी कार्यक्रम जन्मा, जिसमें टॉयलेट, टैप (नल का जल) और ट्री यानी वृक्ष! नल का जल और वृक्ष गंगा के पूरे 2500 किलोमीटर के इलाके में यानी स्रोत से सागर तक व्यवस्थित करने की ठानी गयी। गंगा या उसकी सहायक नदियों के तट पर रहने के बावजूद, अधिकांश गांवों को इसके अलावा पानी नहीं मिलता, जिसे वे बाल्टी में ले जा सकें। सूखे के मौसम में नदी का पाट सूख जाता है। इसलिए, शौचालय के अलावा- जिसमें पूरा नाला शोधन और प्रबंधन हो-, थ्री टी कार्यक्रम में बोरिंग वेल और टैप का पानी पहुँचाना भी है। इसमें बड़े स्तर पर वृक्षारोपण भी शामिल है, जो फलों के ज़रिए आमदनी लाए, या ऐसे पेड़ जो मिट्टी के स्खलन को रोकें।

पूज्य स्वामीजी ने कहा, 'मैं अभी आपको थ्री टी देता हूँ, और अगले साल जब मैं साठ का हो जाऊँगा, तो मैं आपको दूसरे तीन और दूँगा, ताकि सिक्स्टी के लिए आपके पास सिक्स-टी हों।'

साठ का होने के पहले ही उन्होंने इन तीन टी में तीन जी जोड़ दिए थे- गौ, गंगा और गर्ल्स यानी गंगा, गाय और गौरी...। अब पूरा महाकाय गंगा कार्यक्रम इस दिव्य त्रिमूर्ति की केवल एक बाँह है।

गंगा को साफ़ करना, संरक्षित करना, और सुरक्षित करना (श्री टी के साथ), सभी तरह की आवारा और बदहाल गायों को सड़क से हटाकर उनको एक साफ़-सुथरी जगह देना और निर्दोष लड़कियों को भ्रूण-हत्या और मानव-तस्करी से बचाना ही उनका मिशन बन गया है।

किसी ने हाल ही में पूछा- 'क्या यह सचमुच संभव है?'

'हाँ, बिल्कुल। प्रभुकृपा से सब संभव है'...- पूज्य स्वामीजी कहते हैं।

तीन अनाथालय/ गुरुकुल, जिसमें पाँच सौ बच्चे पढ़ रहे हैं, अनेकों मुफ्त स्कूल और व्यवासायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम, मेडिकल क्लिनिक, मुफ्त स्वास्थ्य चिकित्सा शिविर अब दक्षिण भारत के समुद्रतट से लेकर ग्रामीण हिमालयी गांवों तक चल रहे हैं। कई लोग अचरज करते हैं कि पूज्य स्वामीजी किस तरह इतनी बहुआयामी योजनाओं को प्रेरित, योजित, निर्देशित और निरीक्षित कर पाते हैं। लेकिन उनके लिए, तो यह सरल तौर पर एक मानवता के विभिन्न आयाम हैं...

अध्याय नौ

ज्ञान मंदिर का निर्माणः हिन्दू धर्म विश्वकोश

वर्ष 1987 के अगस्त में हिंदू-जैन मंदिर में एक खास कर्मकांड...एक सहस्र शिवलिंगों का अभिषेक किया गया। भगवान शिव को समर्पित इस समारोह में पूज्य स्वामीजी ने पिट्सबर्ग समुदाय एवं पास के शहरों और राज्यों से भारी संख्या में आए हुए अन्य भक्तों का नेतृत्व किया। इस अवसर पर उपस्थित रहने के लिए कई पूज्य आध्यात्मिक नेताओं को अमरीका और यहाँ तक कि भारत से भी बुलाया गया था, जिसमें पूज्य स्वामी धर्मानंदजी, पूज्य सुशील मुनि जी और पूज्य स्वामी शिवाय सुब्र-ह्मण्यमस्वामी जी भी थे, जो हिंदुइज्म टुडे पत्रिका के संस्थापक थे।

अभिषेक के बाद, कई भक्त (केवल सुखद संयोग से... उनमें हिन्दू धर्म के कई विद्वान भी थे) पूज्य स्वामीजी के साथ मंदिर में बैठे, अमरीका में हिंदुत्व के हालात पर चर्चा होने लगी। उन्होंने स्कूलों, विश्वविद्यालयों और कॉलेज के जरिए पूरे पश्चिम में

हिंदुत्व के नाम पर परोसे जा रहे भ्रमित करनेवाले अध्यापन पर चर्चा की, और सच्चे हिंदुत्व पर किसी प्रामाणिक किताब की कमी को भी महसूस किया गया। पश्चिम में पैदा हुआ हिंदू युवा ग़लत जानकारी, भ्राँतियाँ और दुष्प्रचारों के रूबरू हो रहा था, जो हिंदुत्व के प्रति पूर्वाग्रह और दुराग्रह से प्रेरित थीं-। जब उनके अमरीकी मित्र हिंदुत्व के विभिन्न आयामों पर प्रश्न पूछते थे, तो कोई ऐसा तरीका नहीं था जहाँ सही और सटीक उत्तर मिलने की संभावना थी। तो सकुचे-सहमे ये युवा घर लौटते और अपनी खीझ अभिभावकों पर निकालते, कई बार, माँ-बाप के पास भी जवाब नहीं होते थे।

हिंदुत्व केवल एक धर्म या मजहब नहीं है जिस से हम ईसाई, यहूदी या मुस्लिम इत्यादि से जानते है...बल्कि हिन्दुत्व को सनातन धर्म से जाना जाता है और सनातन धर्म पूरे मानवमात्र का धर्म है... हिन्दुत्व जीने की राह है। यह सर्व-समन्वयवादी, बृहत् और असंख्य रूपों को पूजने की प्रेरणा देता है। उपनिषद वाक्य, “एकं सत् विप्राः बहुधा वदन्ति” का मार्गदर्शन देता है... इसीलिए, यह केवल धार्मिक कक्षाओं में नहीं बल्कि इसका दर्शन हमें दैनिक जीवन मेन हर पल होता है। जो भारतीय भारत में पैदा हुए, हिंदू संस्कृति में पले, उन्होंने हिंदू रीति-रिवाजों का पूरे दिन, जीवन भर आचरण किया... शायद ही उनका अर्थ उन्हों ने जानने की कोशिश की होगी...। वे रीति-रिवाज, कर्मकांड उनका रोज़ाना जीवन का हिस्सा हैं। हालाँ कि, जब वे भारतीय पश्चिम में जाते हैं और उनके बच्चे उनके धार्मिक तरीकों पर सवाल करते हैं, जो उनके दोस्तों से बिल्कुल ही अलग होते हैं, तो उनके अभिभावकों के पास अक्सर वहाँ कोई नहीं था जो हिन्दुत्व के बारे में सही जानकारी प्राप्त करा सके।

ये सारे मुद्दे, सवाल और चिंताएँ पिट्सबर्ग में उस गर्मी की

दोपहर में चर्चा का विषय बनीं। बात यहाँ तक पहुंची कि एक बड़ा ग्रंथ होना चाहिए, जिसमें हिंदुत्व के सारे विवरण हों। इस पर भी चिंतन किया गया कि हर बड़े धर्म का एक या अधिक विश्वकोश है, जिसमें सूचना और शोध के लिए जरूरी सारी सूचनाएँ दी जाती हैं। संदर्भ के लिए न्यू कैथोलिक एनसाइक्लोपीडिया और द इनसाइ-क्लोपीडिया ऑफ जूडिका देखी गयी। यह भी देखा गया कि श्रीलंका सरकार बौद्ध धर्म पर और तुर्की की सरकार इस्लाम के तुर्की प्रारूप पर विश्वकोश ला रही है। इंडोनेशिया की सरकार भी इस्लाम पर अपनी इनसाइक्लोपीडिया ला रही है। पटियाला की पंजाबी यूनिव-र्सिटी सिख धर्म पर विश्वकोश ला रही है।

वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने यह भी महसूस किया कि सबसे पुराने, बड़े और सबसे प्रभावी धर्म हिंदुत्व- जिसने हजारों साल का इतिहास व प्राक्-इतिहास है, उनके पास एक समग्र विश्व-कोश नहीं है।

पूज्य स्वामीजी ने तुरन्त कहा, 'हमें हिन्दू धर्म विश्वकोश को उपलब्ध कराना चाहिए। हमें बच्चों के लिए, बच्चों के बच्चों को और दुनिया के सभी बच्चों एवं आने वाली सभी पीढ़ियों के लिए एक प्रामाणिक, सूचनाप्रद, व्यावहारिक और प्रेरित करनेवाला संदर्भ ग्रंथ लाना चाहिए, जो हिंदुत्व पर केंद्रित हो।'

"स्वयं को धर्म की छाया में कर्मरत रखें और प्रभु का चिंतन करें...।"

पूज्य स्वामीजी तुरंत अपने विद्वान मित्रा डॉ. के॰ एल॰ शेषगिरी राव की तरफ मुड़े जो यूनिवर्सिटी ऑफ वर्जीनिया के सम्मानित प्रोफेसर थे और कहा कि डॉ. राव के साथ लेकर वे इस विशाल कार्य को पूरी दुनिया के लिए समर्थित करेंगे। डॉ. राव और दूसरों ने पूज्य स्वामीजी की तरफ प्रश्नभरी दृष्टि से आँखें फाड़ कर देखा। कई खंडों वाली इनसाइक्लोपीडिया- वह भी दुनिया के सर्वाधिक पुराने जीवंत धर्म के बारे में-एक हिमालयी स्तर का महान कार्य है, विशेषत: एक युवा भारतीय सन्यासी के लिए...। किसी ने पूज्य स्वामीजी से पूछा- 'क्या आप सचमुच सोचते हैं, ऐसा हो सकता है?'

उन्होंने अपनी आँखें बंद की, मानों ध्यानावस्था में हों और कुछ देर बाद आँखें खोलकर कहा, 'यह हो सकता है और इसे हम सब मिलकर हिन्दू धर्म कि सेवा समझकर इस प्रभु के कार्य को करेंगे। मैं ने प्रभु का संकेत पाने के लिए आँखें बंद की...उनका ध्यान किया...और ईश्वर ने हरी झंडी दी! बंद आँखों से प्रभु का संकेत मिला है। मुझे विश्वास हो गया कि यह सेवा कार्य अवश्य पूरा होगा और सफलतापूर्वक पूरा होगा।'

दिनांक 21 नवंबर 1987 को पूज्य स्वामीजी ने इंडिया हेरिटेज रिसर्च फाउंडेशन की स्थापना के लिए बैठक बुलायी, जो एक लाभ निरपेक्ष संगठन था और प्रारम्भ में हिंदुत्व पर कई खंडों का इन-साइक्लोपीडिया लानेवाला था। इंडिया हेरिटेज रिसर्च फाउंडेशन की गतिविधियाँ पिछले दशक में काफी फलीं-फूलीं। इसमें मानवता के लिए कई काम शुरू हुए, जिसमें मुफ्त स्कूल, अनाथालय, व्याव_ सायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम, महिलाओं की प्रगति के लिए कार्यक्रम, ग्रामीण विकास, राहत आपदा, पारिस्थितिकीय संरक्षण और अन्य कई तरह के कार्यक्रम शामिल हैं।

पूज्य स्वामीजी को इंडिया हेरिटेज रिसर्च फाउंडेशन के बोर्ड का चेयरमैन बनाया गया, ताकि उनके नेतृत्व, प्रेरणा और आशीर्वाद से ही इनसाइक्लोपीडिया अस्तित्व में आ सके। पूज्य स्वामीजी ने डॉ. राव से इनसाइक्लोपीडिया के मुख्य संपादक का दायित्व ग्रहण करने का आग्रह किया। डॉ. नवल कान्त एवं डा॰ नीला कान्त ने उदारतापूर्वक मंदिर के बगल का भवन खरीदकर दिया, ताकि इनसाइक्लोपीडिया का कार्यालय बन सके। डॉ. राव ने अमरीकी विश्वविद्यालय से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लेकर पिट्सबर्ग में निवास प्रारम्भ किया, ताकि पूर्णकालिक तौर पर उस पर काम कर सकें।

न्यासी मण्डल ने प्रस्तावित किया कि इनसाइक्लोपीडिया की भाषा प्रामाणिक और सुबोध हो, वह एक सामान्य शिक्षित व्यक्ति भी आराम से समझ सके, समृद्ध पौराणिक और पारंपरिक हिंदू परंपरा पर सूचनाप्रद हो, लेकिन आधुनिक औचित्य के साथ, गंभीर हो पर दुर्बोध और जटिल नहीं, हिंदू परंपरा के लिए संवेदनशील हो लेकिन संकीर्ण न हो और शिक्षाप्रद हो लेकिन परंपरा की आध्यात्मिक परंपरा को न खोए। यह सामान्य तौर पर मनुष्य जाति विज्ञान के छात्रों को लिए उपयोगी हो और खासकर धर्म के छात्रों और के शिक्षकों के लिए उपयोगी हो।

यह भी मान लिया गया कि हिंदू धर्म के हरेक संप्रदाय, मत और आंदोलन को उसके अपने हिसाब से जगह मिले। इसकी पद्धति सर्वांगीण, सर्वसमन्वयकारी, सौहार्दपूर्ण और आध्यात्मिक हो। हिन्दू धर्म विश्वकोष (इनसाइक्लोपीडिया) में जहाँ भी आवश्यकता हो ऐतिहासिक, आलोचनात्मक और विवरणात्मक तरीकों का उपयोग हो। सटीक आधार सामाग्री को विस्तृत चित्रों के साथ, ड्राइंग, और मानचित्र के साथ दिया जाए।

इनसाइक्लोपीडिया के लिए प्रत्ययात्मक कार्य, योजना और प्रारम्भिक कार्य- अकादमिक और कार्यालयीय- पिट्सबर्ग के खार्यालय में किए गए, जिसमें कई नेताओं और हिंदू-जैन मंदिर के स्वयंसेवकों का सहयोग मिला।

विद्वानों का चयन

पूज्य स्वामीजी ने 1987 से 1992 का समय दुनिया भर में डॉ. के एल शेषगिरी राव के साथ विश्व के अनेक देशों का भ्रमण करते हुए और विद्वानों और प्रोफेसरों का साक्षात्कार करते हुए बिताया, जो अंतरराष्ट्रीय स्तर के कॉलेज, यूनिवर्सिटी और शैक्षिक संस्थानों में काम कर रहे थे। उन्होंने इनसाइक्लोपीडिया के लिए वैसे विद्वानों का चयन किया जो विशेषज्ञ होने के साथ साथ उनका अनुभव केवल अपने विषय में डिग्री लेने भर से कहीं अधिक हो। पूज्य स्वामीजी सुनिश्चित करना चाहते थे कि इसमें लिखे आलेखों के लेखक शैक्षिक और विषयगत विशेषज्ञ होने के साथ ही विषय-प्रवेश से भली-भाँति परिचित भी होने चाहिए। विश्वकोश केवल पुस्तकीय अभ्यास मात्र नहीं होना था। हालाँ कि, पूज्य स्वामीजी की दृष्टि थी कि इनसाइक्लोपीडिया युवा हिंदुओं को उनके पुरातन और कालातीत परंपराओं के प्रति जानकारी और प्रेरणा दोनों से ही आप्लावित करे।

इस तरह के विशाल प्रकल्प के लिए अत्यधिक धन भी चाहिए, उसकी कमी थी। अत: इसे पूर्ण करने के लिए पूज्य स्वामीजी ने दर्जनों अंतरराष्ट्रीय यज्ञ, कथा और यात्राएँ अमरीका, कनाडा, अफ्रीका, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड और फिजी में आयोजित कराये। उन्होंने पूज्य संत श्री रमेशभाई ओझा जी से विस्तार से

चर्चा की तथा उन को रामायण और श्रीमद्भागवत की प्रेरणास्पद कथा कहने के लिए आमंत्रित किया, ताकि भारतीय अपनी आध्यात्मिक संस्कृति से और भी गहराई से परिचित हो सकें तथा इनसाइक्लोपीडिया की आवश्यकता से अवगत हों।

आखिर 1993 में काम पूरी तेज़ी से शुरू हुआ और अगले कुछ वर्षों में पूरी दुनिया में कार्यालय खुले- चेन्नई, बंगलोर, वाराणसी, पुणे और दिल्ली में भारत में... जब कि अमरीका पिट्सबर्ग के बाद कोलंबिया में साउथ कैरोलाईना में एक मुख्य कार्यालय खुला, जो यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ कैरोलिना के सौजन्य से खुला था।

शुरुआत में विद्वानों के उत्साह और दावों से इंडिया हेरिटेज रिसर्च फाउंडेशन ने यह घोषित किया कि नयी सहस्राब्दी के आने से पहले ही इनसाइक्लोपीडिया का काम पूरा हो जाएगा।

पूज्य स्वामीजी याद करते हैं---

हमें वास्तव में सचमुच पता नहीं था कि इस तरह का विशाल कार्य कितना समय लेगा? विद्वान गण ही विशेष रूप से उनके विद्वत्ता क्षेत्र में विशेषज्ञ थे, लेकिन उससे यह तय नहीं हो पाया था, कि वह साथ मिलकर इस कार्य को कितना जल्दी कर सकेंगे। वे दिन ई-मेल के पहले के थे, और विद्वानों में से अधिकतर कंप्यूटर का इस्तेमाल नहीं करते थे। इसीलिए, अधिकांश लेख हाथ से लिखे जाते थे और वह भी कई भाषाओं में- तेलुगु, कन्नड़, बंगाली, तमिल आदि में। तब, इन लेखों को कोई अनुवाद करता जो न केवल भाषाओं का विशेषज्ञ होता, बल्कि विषय-वस्तु से भी सुपरिचित होता, ताकि विशेष शब्दों और विचारों को जैसे के तैसा उतार सके। इसके बाद कई दौर का संपादन होता। मज़े की बात है कि कभी भी किसी विद्वान ने किसी एक आलेख को भी देखकर यह नहीं

कहा, - वाह, यह शानदार है, बिल्कुल ठीक। वह यही कहते, -ओह, मुझे इसे और अधिक संपादित करना होगा, और कई महीने फिर बीत जाते। हम चाहते थे कि सभी आलेख कथ्य और भाषा दोनों ही विशेषज्ञों द्वारा ही प्रमाणित हों। हर आलेख कम से कम छह से आठ बार इस तरह संपादित होता था, तब वह इनसाइक्लोपीडिया में जाने लायक बनता था।

ई-मेल चूँ कि उतने लोकप्रिय नहीं हुए थे, उस वक्त तक तो हमें बिल्कुल शाब्दिक तौर पर अपने लोगों को विद्वानों के घर भेजना पड़ता था, विश्वविद्यालयों में भेजना पड़ता था, ताकि वे आलेख को पूर्ण रूप से देख लें। मोबाइल फोन भी भारत में उतने आसानी से उपलब्ध तब तक नहीं हुए थे और कईयों के पास तो घरों में भी टेलीफोन नहीं था।

इसीलिए, काम खत्म होने में अपेक्षित समय से पूरे एक दशक का अधिक समय लगा। एक तो यह स्वाभाविक ही था...इसमें समय लगना ही था। दूसरे, कई तरह की चुनौतियाँ और अवरोध भी आते गए, जिसे पूज्य स्वामीजी साधना समझकर स्वीकार करते और मुस्कुराते हुए कहते हैं, 'हम तो एक और विश्वकोश केवल उस पत्राचार से बना सकते हैं, जो हमने इस दौरान किया!' अर्थात् इतना ज़्यादा कार्य हुआ।

पूज्य स्वामीजी को प्रभु से विश्वसनीय हरी झंडी वर्ष 1987 में मिली थी, जब उन्होंने नेत्र मूंदकर इस विशालकाय प्रकल्प के दायित्व के लिए वह दिव्य निर्देश मांगा था। तो, इसे पूरा तो होना ही था। 2010 में पहला खंड महाकुंभ मेला, हरिद्वार में लोकार्पित हुआ था। पूज्य स्वामीजी के पहले कुंभ 1977 से अब तक मेले का विस्तार तेज़ी से बढकर असीमित हो चुका था। 2010 में 8 करोड़

से अधिक ही लोगों ने गंगा में स्नान किया... और कुम्भ क्षेत्र का विस्तार 20 मील से भी कम था। परम पावन श्री दलाई लामा जी, पूज्य स्वामी रामदेवजी, पूज्य स्वामी गुरुशरणानन्द जी, पूज्य स्वामी अवधेशानंदजी, पूज्य संत श्री मोरारी बापू और पूज्य संत श्री रमेशभाई ओझा उन दर्जनों संतों में थे, जिन्होंने पूज्य स्वामीजी के साथ हिन्दू धर्म विश्वकोश की प्रथम प्रति लोकार्पित की। भारत के पूर्व उप-प्रधानमंत्री, श्री लालकृष्ण आडवाणी, बॉलीवुड अभिनेता विवेक ओबेराय और राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय कई सितारे, आध्यात्मिक गुरु, राजनेता और सामाजिक नेता भी कुम्भ के अवसर पर इस विशाल समारोह में लिए उपस्थित थे।

"शांति में रहो, टुकड़ों में नहीं। यदि आप शांति में हैं, तो आप शांति निःसृत करेंगे, शांति देखेंगे और शांति फैलाएंगे। यदि आप टुकड़ों में जी रहे हैं, तो आप सब जगह टुकड़े ही देखेंगे, वही फैलाएंगे।"

अध्याय दस

दुनिया भर में अमृत की बूंदें

अराजकता के बीच शांति

यह जुलाई के एक रविवार की सुहानी सी दोपहर थी। न्यू-यॉर्क और न्यूजर्सी के एयरपोर्ट किसी भी तीसरी दुनिया के देशों के भीड़ भरे रेलवे स्टेशन से टक्कर ले रहे थे... बीच-बीच में फ्लाइट की अंग्रेजी घोषणाओं को यदि अनसुना कर दें तो...। यह चार जुलाई की छुट्टी का अंत था। चूँ कि वह दिन गुरुवार का था, तो अधिकांश अमरीका निवासी चार दिन का सप्ता-हाँत ये छुट्टियाँ कहीं बाहर जाकर मनाते हैं। कहीं भी सूट या टाई के दर्शन नहीं हो रहे थे। यात्रियों की भीड़ में अधिकांश ने शॉर्ट्स, टी-शर्ट औ बेसबॉल कैप धारण कर रखा था, साथ में किसी न किसी टीम का लोगो, स्लोगन और मुलायम, भरे हुए प्राणी (सॉफ्ट टोईज़) तो थे ही। हाथों में सोडा के कैन या ग्लास लिए थके-हारे यात्री अपनी प्यास बुझा रहे थे। सभी उपलब्ध कुर्सियाँ भर चुकी थीं।

अब यात्री हॉल की दरियों पर पसर रहे थे, ताकि कहीं भी अपनी पीठ टेक सकें।

जिस तरह एक के बाद एक स्थगित या देर से आ रही उड़ानों की घोषणा लगातार हो रही थी, वैसे ही हॉल का तनाव और तापमान भी बढ़ता जा रहा था। अभिभावक अपने बच्चों को सीट में ही बैठने को लगातार निर्देशित कर रहे थे और बार-बार गेट एजेंट के पास जाकर पूछ रहे थे, 'क्या मतलब कि हमारी फ्लाइट फिर से लेट हो गयी है? हम घर कैसे जाएँगे...यदि यह उड़ान अगले 20 मिनट में नहीं उड़ी तो फिर मुझे शिकागो से भी फ्लाइट नहीं मिलेगी और मैं घर नहीं जा सकूँगा....आप उसके बारे में क्या सोच रही हैं, मैम?' गेट एजेंट और टिकट एजेंट अपने माथे का पसीना बार-बार पोंछ रहे थे, यात्रियों को शांत करने की कोशिश कर रहे थे और मौसम की दुहाई दे रहे थे। वे बार-बार यात्रियों को भरोसा दिला रहे थे कि जैसे ही उन्हें मौका मिलेगा, वे उनको भेजने की कोशिश करेंगे। काले बादलों का, दिन को ही रात में बदलना- जैसे अधूरा था, लगातार अब बिजली भी कड़कने लगी, लेकिन बारिश की बूंदें निर्गमन हॉल के तनाव को नहीं धो सकीं। एक के बाद एक, जैसे ही यात्रियों को मौका मिलता था, वह अपना गुस्सा एयरपोर्ट एजेंट पर निकाल लेते थे, 'मैं नहीं जानता कि आपको क्या करना है, लेकिन मेरी उड़ान जानी चाहिए..।मुझे अगले तीन घंटों में डेनवर जाना है। क्या आप नहीं समझते कि मेरे बच्चे को कल सुबह स्कूल में होना है? यह आपकी ज़िम्मेदारी है कि हमें घर पहुँचाएँ।'

गेट एजेंट धैर्यपूर्वक काम कर रहे थे और यात्रियों को उनकी सीट पर वापस जाने का अनुरोध कर रहे थे। यात्री अपनी बाकी

भड़ास परिवारजनों पर ही उतार रहे थे, 'मैंने तुम्हें कहा था न कि एक दिन के लिए बहुत सोडा हो चुका है ?... वह बेवकूफी भरा वीडियो गेम खेलना बंद करो..इसका शोर मुझे सिरदर्द दे रहा है। ....हेडफोन लगाओ या इसे बंद करो। हमें इस बेकार ट्रिप पर आना ही नहीं चाहिए था... यह सब तुम्हारी जिद की वजह से हुआ है।' आदि आदि...

इन सब के बीच स्वामीजी स्थिर बैठे थे। उनकी भी उड़ान ज़ाहिर तौर पर विलंबित हो चुकी थी और उनकी भी अगली फ्लाइट छूटने के आसार थे...हमेशा की तरह वे शोर के बीच शांति का महासागर थे। पागलपन की ऊर्जा के बीच स्थिरता; और अराजकता के बीच शांति। वे जब एक के बाद एक यात्रियों को गेट एजेंट पर चीखते, परिवारों पर गुस्सा उतारते, अपने बाल नोचते और अपनी बेचैनी के चलते एक के बाद एक चॉकलेट खाते देख रहे थे,... तो वे अपने अमरीकी सेवक की ओर मुड़े और पूछा, 'मुझे एक बात समझ नहीं आ रही...। तुम कह रहे हो कि ये लोग पिछला सप्ताह छुट्टियों पर बिताकर आए हैं?' इतनी जल्दी कहाँ गया वह आनंद और कहाँ खो आयी वह शांति?

"समस्या यह नहीं कि आपके बच्चे जींस पहनना चाहते हैं, बस यह याद रखें कि वे अपना 'जीन (वांशिक मूल) एवं मूल्य न भूलें...।"

शिक्षाएँ और भावस्पर्श

पूज्य स्वामीजी अमरीका में अब तक 100 बार से अधिक जा चुके हैं। वह अधिकांश अंतरराष्ट्रीय राजनीतिज्ञों से अधिक बार वीज़ा और एंट्री/एक्ज़िट स्टैम्प लगवा चुके हैं। उन्हों ने 30 हज़ार फीट ऊपर आसमान में किसी भी एक जगह से अधिक समय बिताया है... ऋषिकेश को छोड़कर...। जहाँ अधिकतर लोग इस पंक्ति में यकीन रखते हैं, ‘जब रोम में रहो, तो रोमन की तरह रहो’ वहीं पूज्य स्वामीजी इस मंत्र को मानते हैं कि, ‘एक सच्चा रोमन जहाँ जाता है, वही स्थान रोम बन जाता है।’ जहाँ भी वे जाते हैं, न केवल भारत का संदेश और शिक्षा ले जाते हैं, बल्कि हिमालय की स्थिरता और माँ गंगा की शीतलता भी ले जाते हैं और भारत बन जाता है। फ्लाइट अटेंडेंट अपने ब्रेक का समय उनके चरणों में बैठ कर, उनका निर्देश लेकर बिताते हैं। लंडन और लॉस एंजेल्स के अजनबी कई बार अपनी संपत्ति उनको देने को उद्‍यत होते हैं। सैन फ्रांसिस्को की जेल के तपे-तपाए कैदी रो-रो कर कहते हैं कि वे उनके बच्चों की तस्वीरों को आशीष दें। भारत से, हिंदुत्व से या फिर पूर्व के किसी दर्शन से भी जिनका नाता नहीं है, वे भी अबोध भाव से पूज्य स्वामीजी के प्रति आकर्षण महसूस करते हैं, उनसे झुकाव महसूस करते हैं। वे महसूस करते हैं कि एक शाम में उनकी जिंदगी बदल गयी है और बरसों का अकाल खत्म हो गया है। या हफ्तों से हो रही बारिश रुक गयी है, जब वे लंडन में जाते हैं कि मौसम खुशनुमा हो गया है। जो मरीज व्हील चेयर में आते हैं, वह

न केवल अपने विश्वास को वापस पाते हैं, बल्कि अपने शरीर को भी स्वस्थ ले जाते हैं।

यह एक चमत्कार है- लोग कहते हैं, जब वे अनुभव करते हैं या इस तरह की घटनाओं के बारे में सुनते हैं, गवाह बनते हैं। ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के मुताबिक मिरैकल (चमत्कार) का अर्थ होता है, 'अति-असाधारण घटनाएँ, जिनकी प्राकृतिक या वैज्ञानिक नियमों से व्याख्या नहीं हो सकती, जिन्हें दैवीय ताकतों का योगदान कह दिया जाता है'। लेकिन, दैवी कार्य भी प्राकृतिक और वैज्ञानिक नियमों से ही होते हैं। चमत्कार इसीलिए विज्ञान और प्रकृति के नियमों के बीच ही किए गए असाधारण क्षमता के साधारण कार्य हैं, एक परिणाम हैं, स्रोत से जुड़ाव का। हाथ रगड़कर गर्माहट पैदा करना बच्चों का खेल है। स्कूलों में, कार्यालय और अस्पतालों में तनाव को कम करने की शिक्षा का पहला पाठ है, अस्वैच्छिक स्वायत्त स्नायु तंत्र को सचेतन तौर पर प्रभावित कर किसी के रक्तचाप को कम करना या गहरी साँस के अभ्यास से नब्ज धीमी करना। हाइड्रोजन के एक अणु को हाइड्रोजन पैरोक्साइड में मिलाकर इसे पानी बना देना तो हर रसायन शास्त्र की कक्षा में सिखाया जाता है। अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालयों और प्रयोगशालाओं में असंख्य प्रयोगों ने यह दिखाया है कि अप्रशिक्षित ऊर्जा भी उबरने के दर पर प्रभाव डालती है। अगर हाई स्कूल के बच्चे हाइड्रोजन पैरोक्साइड को पानी में बदल सकते हैं, हमारी साँस लेने की गति को बदलने मात्र से हम बहुत कुछ बदल सकते हैं, यदि नए-नए आध्यात्मिक सलाहकर्ता घाव के भरने की गति बढ़ा सकते हैं, तो जो इस अगाध ऊर्जा से गहराई से जुड़ा है, वह तो दुनिया को प्रभावित करेगा ही, जैसे-जैसे और जहाँ भी वह चलेगा।

पूज्य स्वामीजी कई बार कई महीने भारत से बाहर बिताते हैं। वे लगभग सभी धर्म, सभी पंथ, जाति, भाषा और उम्र के लोगों में जादुई परिवर्तन लाते हैं। उनकी शिक्षाएँ सार्वभौम हैं। वे न तो माँग करती हैं और न ही किसी धर्म परिवर्तन के लिए आवाहन करतीं हैं। वे सादगी एवं सरलता से अपने अनुभव, अपनी सदिच्छाएँ, अपने पवित्र, शुद्ध, बिना किसी शर्त वाले प्यार को बाँटते हैं। हममें से अधिकांश लोग जीवन में भक्त, बुद्धिजीवी, डॉक्टर, नर्स, शिक्षक या इंजीनियर की या ऐसी ही कोई भूमिका निभाते हैं। लेकिन, हममें से अधिकांश जिन भूमिकाओं को निभाते हैं और जो व्यक्तित्व अपनाते हैं, उसमें अयोग्य, अशुद्ध और अज्ञान व अंधकार से भरे होने का भाव होता है। दुनिया वह नहीं देखती है, क्योंकि ईश्वर की कृपा है जिससे हम खुद की अंतरात्मा को दुनिया को देखने से बचा लेते हैं। पूज्य स्वामीजी की उपस्थिति में लोग तुरन्त ही जान जाते हैं, कि वह परदा उनके लिए तो पारदर्शी है, वे ग़लतियाँ देख सकते हैं और अज्ञान, अपवित्रता और अयोग्यता भी जान जाते हैं...। इसके बाद भी, उनकी आँखों से प्रेम का सागर बहता है। यह प्रकट तौर पर असंभव दिखता है कि किसी के भीतर के गहरे अंधेरे कोने देखने के बावजूद कोई बिना किसी शर्त के उनको प्यार कर सके। पूज्य स्वामीजी की उपस्थिति की तरह जब पूर्ण ज्ञान और पूर्ण प्रेम आता है, तो वह दर्द और भय को नष्ट कर देता है। दुनिया के असंख्य लोगों ने इस अनुभव को साझा किया है कि पूज्य स्वामीजी की सन्निधि में उनके अंदर कुछ खुल जाता है, कुछ खिल जाता है और कुछ चूर चूर होता है।

वे कई बार बिना शब्दों के ही शिक्षा देते हैं। कई बार यह प्रत्यक्ष, मौखिक या मौन शिक्षाएँ होती हैं, जो वे प्रवचन, सत्संग,

प्रश्नोत्तरी या फिर किसी भक्त के घर दर्शन के दौरान देते हैं। कई बार शिक्षाएँ न तो मौखिक, न ही मौन होती हैं। वे सीधे तरीके से उदाहरण द्वारा दी जाती हैं। कोई भी उस घर को पहचान सकते हैं, जिसमें वे टिके हैं, क्योंकि एक ही कमरे में प्रकाश होगा। 'यदि सभी इसी कमरे में साथ बैठे हुए हैं, तो दूसरे कमरों की बत्ती क्यों बर्बाद करनी?' वे दूसरे लोगों के घरों में भी लाइट के स्विच ऑफ करते रहते हैं, भले ही वे सबसे पहले निकलने वाले हैं।

पूज्य स्वामीजी दुनिया भर में जहाँ भी जाते हैं, जब उनके लिए भोजन बनता है,तो वे लोगों से कहते हैं, "एक चीज़, बस एक चीज़ ही भोजन में बनाएँ"। भारतीय परंपरा में अतिथि देवो भव... मेहमान तो भगवान है। यह आधारभूत बात है। यह नियम उन पर भी लागू होता है, जो आमंत्रित मित्र हैं, या अचानक आए हुए अनजान, उनको एक ही नजर से देखा जाता है और स्वागत किया जाता है और दैवीय सत्कार मिलता है। और फिर जब वह अतिथि गुरु हो, तो कई भारतीय श्रद्धा से भरकर दर्जनों तरह के पकवान बनाने लगते हैं। पूज्य स्वामीजी हरेक जगह एक ही बात कहते हैं, एक चीज़, बस एक ही वस्तु। जहाँ अधिकांश लोग ललचाएँगे - वहीं स्वामीजी कहते हैं कि वे इतने सारे व्यंजनों के साथ अपने खाने का आनंद ही नहीं ले पाएँगे।

"फेसबुक बहुत बढ़िया है, लेकिन आपको कभी अपनी जीवन किताब को भी देखना चाहिए। वह भी आपके लिए बेहतर अनुभव होगा"

एक वस्तु- बस, इतना ही मैं चाहता हूँ। कुछ हल्का, ताज़ा और रसायन-रहित- स्वामीजी की केवल खाने की आदतें ही साधारण नहीं है, जैसा कि कोई भी उम्मीद करेगा कि बचपन जंगल में गुज़ारने-वाला शायद खाने के मामले में ऐसा हो। वे पूरी दुनिया में ही लोगों को सादगी का आदर्श देना चाहते हैं- वे कहते हैं कि, आनंद को इंद्रिय सुखों में नहीं तलाशा जा सकता है। एक पकौड़ा या समोसा या गुलाब जामुन जीवन में संतोष और मुक्ति की जादुई कुंजी नहीं है। वे कहते हैं- हमें जिंदा रहने के लिए खाना चाहिए, न कि खाने के लिए जीना चाहिए। जब हम जिंदा रहने के लिए खाते हैं, तो हम जीवन को बढ़ाने वाली चीजें खाते हैं- सुपाच्य, स्वास्थ्यवर्द्धक, साधारण, रसायनविहीन भोजन। जब हम खाने के लिए जीते हैं, तो वह चीजें खाते हैं, जो हमारे हिसाब से हमें आनंद दें, लेकिन तब हमें खाते रहना पड़ता है, क्योंकि वह आनंद तो क्षणिक है। जल्दी ही हम मोटे हो जाते हैं, मधुमेह ग्रस्त और फिर भी पूरी खाने के लिए भागते रहते हैं....

उनका सादगी से रहने के जीवनक्रम ने...वे कैसे खाते हैं, कैसे सफर करते हैं, कितनी कम उनकी जरूरतें हैं- हर उस व्यक्ति को बदला है, जिनके साथ वे रहे हैं। वे अपने पीछे एक कड़ी छोड़ जाते हैं, उन लोगों की, जो शाकाहारी हो गए, तला-भुना या बर्फ का खाना छोड़ दिया, या फिर चालीस और पचास की उम्र में सलाद खाना शुरू किया, वेजीटेबल सूप और खिचड़ी खाना शुरू किया, क्योंकि वह स्वामीजी खाते है।

उनकी सरलता एवं सादगी की शिक्षाएँ, खाने से कहीं आगे निकल जाती हैं।

एक आदमी, एक फूल, एक कार

शुरुआती दिनों में दुनिया के कोनों से लोग उनको मिलने आते, गुलदस्ते उनकी ओर प्रेम से उछाले जाते, जैसे ही वे कस्टम्स से बाहर निकलते। वे सभी को जल्दी से मिलकर कार में चले जाते, सिर झुकाए हुए। आखिरकार, 1990 के मध्य में लंदन के एक प्रवचन में उन्होंने घोषणा की---

आप में से शायद सभी को एयरपोर्ट आने के लिए एक घंटा लगता होगा। तो कुल आने जाने में यह दो घंटे का समय हुआ। साथ ही, आप एयरपोर्ट पर जल्दी भी आते हैं, ताकि मुझसे पहले वहाँ रहें, तो कुल मिलाकर हुए तीन घंटे। आप अपनी कार पार्क करते हैं, पाँच या दस पाऊँड देते हैं। उसके बाद आप कई पाऊँडस् के फूल खरीदते हैं, और फिर एयरपोर्ट पर उतरते ही हमारे पास सबके साथ बिताने का समय भी नहीं होता। मैं प्लेन से उतरकर सीधा कार में जाता हूँ। और वैसे भी हम उसी दिन सायंकाल या दूसरे दिन प्रवचन और सत्संग के कार्यक्रमों में होते ही हैं। यदि पचास लोग भी औसतन एयरपोर्ट पर लेने आए तो लगभग 150 मानवीय घंटे और सैकड़ों पाऊँड की बर्बादी हुई, पर्यावरण को हुए नुकसान का तो खैर अभी हमने हिसाब नहीं लगाया है। उन घंटों को बचाइए, उन पाऊँडस् को बचाइए। पूज्य स्वामीजी का एक सरल-सीधा सा संदेश सबके लिए एक ही होता है कि आप सब इस समय का मानवता के बड़े कामों के उपयोग के लिए लगाइए। अत: आज से एयरपोर्ट पर एक कार में केवल एक आदमी एयरपोर्ट पर रहेगा। वह कार भी पार्किंग में नहीं होगी, बल्कि आगमन के बाहर इन्तज़ार करेगी, वहाँ तक मैं पैदल आऊँगा। वह व्यक्ति बस एक सर्वसाधारण फूल

लाएगा, ताकि परम्परा भी बचे और पर्यावरण भी तथा साथ ही धन भी बचे और समय भी!

वे इस नियम को दुनिया के दूसरे शहरों में भी ले गए। केवल एक हल्का-सा प्रावधान 9/11 के बाद हुआ, जब देर तक कार को पार्किंग के अलावा कहीं खड़ा करने से रोका जाने लगा। इसीलिए, उन्होंने एक कार और दो आदमियों की अनुज्ञा दी। एक तो अंदर आगमन के पास इन्तज़ार करता, जबकि दूसरा कहीं मुफ्त की जगह (या सड़क किनारे) गाड़ी में रहता। जब फोन आता कि पूज्य स्वामीजी आ गए है, तब ही वह कार को दरवाज़े के पास लाता।

केवल भक्त ही नहीं हैं, जिनके जीवन को स्वामीजी ने छुआ है...असंख्य लोगों ने कई बार फ्लाइट पर सीट पायी है, क्यों कि वे कई बार अपनी ही सीट देने को तैयार रहते हैं। मैं ने स्वयं देखा है, इससे पहले कि वैमानिक स्टाफ घोषणा करनी शुरू करे, यदि बोर्डिंग एरिया में उन्होंने खासी भीड़ देखी है, तो वे गेट एजेंट को सूचित करते हैं कि यदि वॉलंटियर की जरूरत है, तो वे तैयार हैं। उन्होंने ताज़ा रोटियाँ और थेपला न जाने कितने यात्रियों और फ्लाइट अटेंडेंट को खिलायी हैं। चूँ कि पूज्य स्वामीजी घर के बने खाने के अलावा कुछ नहीं खाते, तो हरेक जगह उनके जाननेवाले परिवार खाने को पैक कर उन्हें देना नहीं भूलते। वे अतिरिक्त रखना भी जानते हैं, क्योंकि वे अपने आसपास के लोगों को खिलाए बिना, या पूछे बिना नहीं खा सकते। दरअसल, कई पश्चिमी लोगों के लिए भारतीय खाने से परिचय ही उस खाने के जरिए हुआ है, जो उन्होंने हवाई जहाज में खाया है। कई बार टिकट एजेंट, गेट एजेंट और कस्टम अधिकारी ज़रूर मुस्कुराते हैं, जब वे उनका काऊंटर छोड़ते हैं। एक बार, शायद पहली बार... ऑस्ट्रेलिया के दौरे पर जब

कस्टम अधिकारियों ने उनसे पूछा (ऐसे ही, क्योंकि ज़ाहिर था...वे अभी हवाई जहाज से उतरे ही थे), 'क्या आप यहाँ आज आए हैं?' तो, उसके विशिष्ट आस्ट्रेलियाई भारी उच्चारण की वजह से उन्होंने 'टुडे' को 'टू डाइ' सुन लिया और उस समय के युवा सन्यासी ने मतलब निकाला, 'क्या आप यहाँ मरने आए हैं'? पूज्य स्वामीजी ने अचंभित होकर कहा, 'ओह्ह नहीं श्रीमन्....। मैं तो यहाँ जीने आया हूँ'!।

ॐ क्राइस्ट!

पूज्य स्वामीजी का प्रभाव और उनके भक्तों में उनकी लोकप्रियता भारतीय हिंदुओं और यहाँ तक कि पश्चिमी हिंदुओं या बने हुए हिंदुओं के पार जब चली गयी, तो एक सवाल उठता है कि गैर-हिंदू लोगों को हिंदू शिक्षा कैसे देंगे? पूज्य स्वामीजी ज़ोर देकर कहते हैं कि शिक्षाएँ सार्वभौमिक हैं, और यह उन पर भी लागू है, जो ईश्वर को ईसा या अडोनाइ के स्वरूप मे पूजते हैं, जिस तरह लोग शिव और कृष्ण को पूजते हैं। गैर-हिंदुओं kii मान्यता होती है कि पूज्य स्वामीजी की शिक्षाओं से पूर्ण लाभ लेने के लिए, उन्हें अपना धर्म बदलने की ज़रूरत है। इसीलिए, कई बार ईसाई और यहूदी एक धर्मांतरण समारोह या फिर ऐसी किसी प्रक्रिया का अनुरोध करते, उम्मीद भी रखते हैं, जिससे वे अपने बचपन के धर्म को त्याग सकें, ताकि वयस्कावस्था की घोर निराशा से बच सकें। 'मैं वह सब कुछ मानूँगा, जो आप कहेंगे कि मुझे मानने की ज़रूरत है। मैं उसी को पूजूँगा, जिसे आप कहेंगे कि मुझे पूजने की जरूरत है, बस मुझे शांति चाहिए।'- वे प्रार्थना करते हैं। पूज्य स्वामीजी उनको

प्रेमपूर्वक उसी तरह पूजा करने को कहते हैं, जैसे वे करते आ रहे हैं, उनके ही धर्म में उनकी आस्था दृढ़ करने को कहते हैं और चर्च या सिनेगॉग लगातार जाने को कहते हैं। वे उन्हें शांति और आनंद का आश्वासन देते हैं। कहते हैं कि ये किसी भी धर्म में एक समान मात्रा में ही उपलब्ध हैं। यदि कोई आवश्यकता है, तो वह केवल आस्था और दृढ़ता की।

आमतौर पर गैर-हिंदू उनके आश्वासन के लिए धन्यवाद देते हैं और एक नयी ऊर्जा के साथ उनकी शिक्षाओं को अपने धर्म के साथ पालन करते हैं। लेकिन कई बार कुछ श्रद्धालु अड़ियल भी होते हैं, या फिर उनकी समस्या बहुत गहरी होती है जो केवल- 'चर्च जाओ' कहने मात्र से सुलझाने जितनी आसान नहीं होती...

कई साल पहले एक महिला पूज्य स्वामीजी से मिलने शिकागो आयी थी। वह एक अमरीकी ईसाई थी और उनके यजमान परिवार की अच्छी मित्र। उनका जीवन बहुत कष्टप्रद था और वह जवाबों के लिए परेशान थीं- 'क्या तुम्हारे गुरु मेरी मदद कर सकते हैं'?– 'बिल्कुल!'– परिवार ने उनको भरोसा दिया था–'वे कुछ भी कर सकते हैं'। जब उन्होंने उनसे मिलने की हिम्मत जुटा ली, तो वह आयीं। उससे पहले उन्होंने हिंदू धर्म, मंत्रों और चमत्कारों के बारे में थोड़ा शोध भी कर लिया था। स्वामीजी से मिलने तक उन्होंने पूर्ण तय कर लिया था, कि 'मुझे एक हिंदू मंत्र चाहिए। यही मेरी समस्याएँ खत्म कर देगा।' पूज्य स्वामीजी ने उन्हें समझाने की पूरी कोशिश की। कहा कि हिंदू मंत्र की कोई ज़रूरत नहीं है, कोई भी ईमानदार, पवित्र और सच्ची प्रार्थना का ईश्वर से उत्तर अवश्य मिलता है। उन्होंने उस महिला को ईसा मसीह से प्रार्थना करने और जीवन के प्रति सकारात्मक रुख अपनाने को कहा। लेकिन वह

ज़िद पर अड़ गईं..., 'ना। मुझे तो हिंदू मंत्र चाहिए। मैंने सुना है कि उनमें बहुत अधिक शक्ति होती है और मुझे भी एक चाहिए। मैं ईसाई धर्म को त्याग दूँगी। मैं आधिकारिक हिंदू बन जाऊँगी। मैं कुछ भी करूँगी। मुझे तो बस एक हिंदू मंत्र चाहिए।'

पूज्य स्वामीजी समझ गए कि वह ज़िद्दी भक्त है और कोई समझ या वार्तालाप उसके मन को स्वीकार नहीं होगा। इसीलिए, उन्होंने उसे अगली सुबह चार बजे उठने को कहा और कुछ नियम बताए, जिसमें जगने, चलने, नहाने और उपवास से संबंधित नियम थे। उसके बाद कुछ फूल और जड़ि-बूटियाँ लाने को कहा। जब कि वास्तव में, मंत्र दीक्षा के लिए सामान्यतः वे कोई इतनी लंबी-चौड़ी तैयारी करने को नहीं कहते। उसमें तो बस एक नहाए शरीर, पवित्र हृदय और उच्च भक्ति से अधिक कुछ आवश्यकता नहीं होती है। वैसे, पूज्य स्वामीजी ने देख लिया था कि यह महिला किसी बड़े समारोह की कल्पना कर चुकी है, जिसका अंत उस जादू वाले मंत्र में होगा। इसे प्रभावी बनाने के लिए उन्होंने इसे काफी जटिल और रहस्यात्मक बना दिया।

उसने ध्यानपूर्वक सुना और सारे चरणों को नोट्स में लिख लिया। वह जाते वक्त आँखों में आँसू भरकर स्वामीजी के चरणों में झुकीं और बोली, 'धन्यवाद। वर्षों में पहली बार मुझे भरोसा हुआ है कि प्रभु की सहायता आसपास ही है। मैं जानती हूँ कि यह मंत्र मेरा जीवन बदल देगा, बना देगा।'

अगली सुबह, जब पूज्य स्वामीजी प्राता: 10 बजे मौन खुलता, उससे आधे घंटे पहले ही वह आयी, उसने सारे निर्देश उसी तरह माने थे और खास फूल और पत्तियाँ भी लायी थीं। पूज्य स्वामीजी

उसे मंदिर में ले गए और अपने सामने बिठाया। उन्होंने सारे फूल एक-एक कर विविध देवी-देवताओं पर चढ़वा दिए। साथ में लम्बे मंत्रों का गान भी चलता रहा। उन्होंने जरूरत से अधिक ही मंत्रों का जाप किया और सामान्य से अधिक दीर्घ, कर्मकांड वाली पूजा भी की। वह उसे यकीन दिलाना चाहते थे कि कोई भी चरण छोड़ा नहीं गया है। कोई भी कर्मकांड अधूरा नहीं रखा गया है और मंत्र का देना तो बस एक अतिरिक्त कार्य है।

अंत में, जब पूजा हो गयी तो यह समय वास्तविक मंत्र के देने का था। पूज्य स्वामीजी ने मंदिर में लगे देवता की मूर्ति को छुआ और फिर उनका हाथ महिला के सिर पर रखा। उनकी हथेली उसके ललाट पर थी। उन्होंने अपनी आँखें बंद कर महिला को भी चित्त को एकाग्र और स्थिर करने के लिए निर्देश दिए...

"क्या तुम तैयार हो"- उन्होंने पूछा।

"हाँ, हाँ, मैं तैयार हूँ"- महिला ने फुसफुसाकर कहा।

"ठीक है, मेरे पीछे दोहराओ", उन्होंने निर्देश दिया ।

"ॐ"-

'ॐ'। उसने दोहराया...

"क्राइस्ट"- पूज्य स्वामीजी.....

"क्या ?" उसकी आँखें खुल गयीं और वह उछल गयीं।

"मोक्ष यहीं है- हरेक पल, हरेक क्षण। जब हम वासनाओं से मुक्त होते हैं, हमारे अहंकार, ईर्ष्या, क्रोध और मोह से मुक्त होते हैं, तो हम मोक्ष में रहते हैं।"

‘क्या..क्या कहा? ॐ क्राइस्ट? यह तो हिंदू मंत्र नहीं है। आपने मुझे हिंदू मंत्र देने का वादा किया था।’ उसकी काँपती आवाज तेज़ी में कम नहीं थी। उसका चेहरा लाल था और आँसू उसकी आँखों से लगातार बह रहे थे।

“बैठ जाओ और भावपूर्वक मंत्र का जप करो।” पूज्य स्वामीजी स्थिर बैठे रहे और अर्धोन्मीलित आँखों से उन्हों ने कहा।

यह जानकर कि पूज्य स्वामीजी पूरे गंभीर हैं और मज़ाक नहीं कर रहे हैं और वह एक संस्कार विधि के बीच अपनी मूढ़ता में उसे बाधित कर चुकी है... वह चुपचाप बैठ गयी और “ॐ क्राइस्ट” का मंत्र पूरे रीति-रिवाज़ से पाया। पूज्य स्वामीजी ने उसे 108 मनकों वाली रुद्राक्ष की माला दी, जिससे उसे वह मंत्र-जप करना था।

पूज्य स्वामीजी के लिए, सारे नाम और ईश्वर के स्वरूप दिव्य हैं। वे कहते हैं, ‘यदि ईश्वर को केवल एक तरह से पूज सकते हैं, तो वह ईश्वर नहीं है।’ ईश्वर को कृष्ण या ईसा या अदोनाइ या अल्लाह कहें, वे तो एक ही दिव्य, अनंत, सर्वत्र मौजूद परमात्मा का नाम हैं। ॐ कृष्णा में ॐ क्राइस्ट से अधिक अंतर्निहित वस्तुनिष्ठ महत्तर शक्ति नहीं है। वे कहते हैं, ‘यदि आपके पाँच बच्चे हैं और एक आपको मॉम कहता है, दूसरा ममा, तीसरा माँ, चौथा मम्मी और पाँचवाँ अभी बोलता ही नहीं, तो क्या आप एक को दूसरे से अधिक प्यार करेंगी? क्या आप माँ को मम्मी से अधिक महत्व देंगी या मॉम को एक दंतविहीन नवजात के अर्थहीन ए-ए को? नहीं न? इसीलिए, यदि एक साधारण माँ सारे नामों को समत्व से देख सकती है, तो ईश्वर क्यो नहीं?’

पूज्य स्वामीजी उसे और सभी को दिखाना चाहते थे कि दिव्य शांति और आनंद को पाना धर्म परिवर्तन से नहीं जुड़ा है। यह किसी मंत्र या धर्म की किसी व्यवस्था से नहीं जुड़ा है, बल्कि स्वधर्म से जुड़ा है। यह तो समर्पण की बात है- पूर्ण, संपूर्ण, भक्तिमय समर्पण-ईश्वर से उसी रूप और स्वरूप में जिसे वह बेहतर ढंग से जानता है। ईमानदारी, भक्ति और अभ्यास वह हवा है जो दिव्यता लाती है। उस नाव की डिजाइन और मॉडल महत्व नहीं रखता, जिसमें बैठकर आपको भवसागर को तरना है...हवा की दिशा और शक्ति महत्वपूर्ण होती है उस नाव को सागर पार कराने के लिए...। उसी कारण से, वह उस महिला को उसके धर्म से अतिरिक्त, एक अज्ञात मंत्र में नहीं दीक्षित करना चाहते थे। इसीलिए, उन्होंने उसे क्राइस्ट के साथ ॐ का मंत्र दिया, यह जानते हुए कि यदि उसने इसे पूरी ईमानदारी से पढ़ा और जपा तो वह अपना लक्ष्य पा जाएगी।

"प्रभु के पास जाओ। जिस भी नाम, जिस भी स्वरूप से तुम उसे पूजते हो, उस में समस्या नहीं है। बस, उसके पास जाओ। वह सभी नामों और स्वरूपों को स्वीकार करते हैं। यदि प्रभु केवल एक स्वरूप में पूजा जा सकता है, तो वह प्रभु ही नहीं है।"

पूज्य स्वामीजी उसके बाद की बात बताते हैं, 'मैं कुछ महीनों बाद शिकागो लौटा और वह मुझसे मिलने आयी, झूमती हुई।' उसने कहा- "आपका मंत्र सचमुच जादू है, इसने मेरा जीवन ही बदल दिया"। धीरे धीरे वह हिन्दू धर्म के मूल्यों को जीवन में जीने लगी।

तो... प्रभु का नाम या स्वरूप मायने नहीं रखता। सभी नाम और स्वरूप एक ही हैं। यह तो चाहनेवाले की भक्ति और ईमानदारी पर निर्भर है।

अध्याय ग्यारह

पवित्र यात्राएँ - बाह्य और आंतरिक

शिव-धाम की यात्रा

दसों दिशाओं से उठते धूल के बादलों ने उस बंजर ज़मीन का दृश्य धुन्धला बना दिया था। पचास जीपें पूरे मैदान में बिखरी पड़ी थीं, अदृश्य पथों से निकलकर हर किसी दूसरे से आगे निकल जा रही थीं- अंधा करनेवाली धूल के बादलों के बीच में से... कौन किसका पीछा कर रहा था? वहाँ कोई भी दिशा निर्देश देता हुआ नहीं लग रहा था, क्योंकि हर गाड़ी की गति और स्थिति दिन बीतने के साथ बदलती जा रही थी। कारें थोड़ी-थोड़ी देर के लिए रुकती थीं, ताकि उसके यात्री लघुशंका वगैरह से निवृत्त सकें, या फिर कोई अनुभवी फोटोग्राफर अनावश्यक ही एक कैमरे से चारों ओर खुले आसमान के नीचे वाले शानदार दृश्य को कैद करने की कोशिश करता... ड्राइवर रास्ता कैसे खोज रहे थे? ... कोई साइनबोर्ड नहीं, कोई संकेत नहीं, कोई सड़क नहीं, कोई भी पहाड़

एक दूसरे से अलग नहीं... एक यात्रा जो कहीं नहीं के लिए थी, और हर जगह के लिए थी!

... कभी-कभार यह कारवाँ बंजारों का शहर बनाता था- जी-र्ण-शीर्ण कपडे के टेंट, जो शायद तेज़ हवा का झोंका भी न सह सकें, या फिर काटनेवाली ठंड से बचा सके, जिसने पूरी दृश्यावली को घेर रखा है। बच्चे... जिनके चेहरे शायद कभी सिवाय उनके आँसुओं और किसी चीज़ से नहीं धोए गए हैं... जो हर गुज़रती कार को हाथ हिलाकर हाय और बाय कह रहे थे!

पहाड़ ईमानदारी से एक के बाद एक खड़े थे, बिना किसी शुरुआत, बिना किसी अंत के। कारें चली आ रही थीं, उस बेराह राह पर जो हर कार के आगे और पीछे धूल का गुबार खड़ा कर देतीं थीं... पूज्य स्वामीजी ने निर्देश दिए थे, 'कम बात, अधिक जप'। उन्होंने यात्रियों से कहा था कि वे अपने दिमाग़ में शांति भरें। यह निर्देश वैसे अनावश्यक था... मानसरोवर और कैलाश की यात्रा भाषा की मानो अवहेलना करती है!...भाषा को सम्पूर्ण निरुपयोगी साबित करती है! वहाँ कोई शब्द नहीं होते। वह ऊँचाई, काटनेवाली ठंड, फिर रेगिस्तानी गर्मी, फिर से वही बर्फीली ठंड, जो सूरज और बादलों के स्थान-परिवर्तन से बदलती रहती हैं, न जाने कितनी धूल मुँह से लेकर नाक तक भर जाती है...और यह सब यात्रियों को मुँह बंद रखने को मजबूर ही करती हैं! वहाँ कोई विकल्प नहीं है, सिवाय आंतरिक संवाद और सफ़र के!

अचानक ही कार का मौन टूटा, जब ड्राइवर ने आश्चर्य से कहा–"येस्... येस्...। शायद वह अंग्रेजी में यही एक शब्द जानता था... 'येस् येस्' कहते हुए उसने दूसरी दिशा से आते हुए कारों के एक समूह को दिखाया। आनेवाली कार ने हॉर्न बजाने के साथ

ड्राइवर को रुकने का इशारा दिया। जब उसने अपनी खिड़की के शीशे को नीचा किया, तो सामनेवाले ने भी वैसा ही कर तिब्बती में एक-दूसरे का अभिवादन किया। खिड़कियों पर धूल की मोटी परत जमी हुई थी और इसी वजह से पीछे बैठे यात्रियों के चेहरे देखना मुश्किल था। पीछे के दरवाजे खुले और तीन भारतीय तीर्थयात्री जो स्की जैकेट और ऊनी टोपी से लैस थे, उस हवादार दिन, पूज्य स्वामीजी की कार की तरफ़ बढ़े।

उन्होंने अपनी खिड़की खोली और फिर अपना दरवाजा ताकि वे वहाँ तक आसानी से आकर बात कर सकें। तब उनके पैरों पर गिरकर एक महिला सुबक-सुबक कर रोने लगी। उनके पास जो सज्जन खड़े थे, उन्होंने बताया कि वे लंडन से आए हैं और पूज्य स्वामीजी को अच्छे से जानते हैं, लेकिन पूज्य स्वामी जी शायद उन्हें नहीं जानते हैं। वे लंडन में उनके कई सत्संगों में रहे हैं, लेकिन कभी सोचा नहीं था कि उनके इतने करीब से दर्शन होंगे... खासकर, इस पवित्र स्थान पर! महिला ने अपना आंसुओं से भरा चेहरा उठाया.... और वह सज्जन बोलता रहा, -'वे इंग्लैंड से एक बड़े समूह के साथ यात्रा में आए थे। हर चीज़ बढ़िया और व्यवस्थित थी। ट्रेवल एजेंट अनुभवी और विनम्र थे। पर समूह के दो लोग उस ऊँचाई पर बीमार पड़ गए और उन्हें वापस जाना पड़ा। समूह ने अभी तुरन्त यह सूचना पायी है कि वह वापसी में काठमांडू में मर गया।'

"जीवन में अपनी यात्रा हल्के होकर करो। तुम्हारी कामना और अपेक्षायें भारी सामान की तरह हैं, जो आपकी गति को धीमा करता है और आपकी प्रगति रोकता है। उन्हें जाने दो।"

स्वामीजी ने उनको प्रेम से सांत्वना दी और उन सभी को

ऋषिकेश आने का आमंत्रण दिया कि अंतिम संस्कार वहीं करें। वे उनके चरणों पर झुके और अपनी मंज़िल की ओर बढ़ गए। वे अचंभित थे कि गुरु को ईश्वर ने ठीक तभी भेजा, जब और जहाँ उन्हें उनकी ज़रूरत थी।

उनके हृदय तो हल्के हो चुके थे, पर पूज्य स्वामीजी के मन पर एक बोझ आन पड़ा। एक मौत जिसे टाला जा सकता था, यदि केवल आधारभूत सुविधाएँ ही उपलब्ध होतीं। अनावश्यक, वृथा की यातना...जिस कम किया जा सकता था, टाला जा सकता था... एक युवा विधवा और पिता के बगैर अनाथ बच्चे... क्या इस तरह की शोकांतिका को रोकने के लिए कुछ किया जा सकता है?

तीन दिन बाद, जब जीपें मानसरोवर झील पर रुकीं, सभी यात्री वहाँ की विशालता और दिव्य सौंदर्य देखकर स्तंभित थे, उस पवित्र ज़मीन पर परम श्रद्धा से अभिभूत होकर सभी ने सिर रखा......जब कुछ क्षण के बाद सिर उठाकर देखा...पूज्य स्वामीजी ने चारों तरफ देखा और पुन: अनुभव किया कि वहाँ सचमुच कुछ भी नहीं है। पूरे रास्ते में भी सचमुच कुछ नहीं था, यहाँ तक कि उमड़ती-गहराती नदियों पर ढंग के पुल भी नहीं थे और जहाँ जीपों को रस्सों के सहारे खींचना पड़ा था... फिर भी, यात्रियों का भरोसा था, श्रद्धा थी कि इस पवित्रतम तीर्थस्थल पर पहुँचकर, जहाँ हिंदू, जैन, तिब्बती और बौद्ध जाने को तरसते रहते हैं, ऐसा कुछ तो होगा...अलौकिक! अद्भुत!! यद्यपि, वहाँ ट्रेवल एंजेंसी द्वारा खाने और पूजा के लिए लगाए गए मजबूत कपड़ों के कनात को छोड़कर और कुछ भी नहीं था।

वहाँ एक अस्थायी बसेरा तक नहीं था, जहाँ कोई जाकर थोड़ी गर्मी महसूस कर सके या विश्राम कर सके। टैंट में आठ से दस लोग

रह सकते थे, जो जो गंदे से धातु की छड़ों से बांधे हुए थे और टैंट के निचले हिस्से और अत्यधिक ठंडी ज़मीन के बीच कम से कम आधे फीट का फासला था... यह छह इंच का फ़ासला तेज़ हवाओं के लिए मानो सुरंग का काम करता था। जब सूरज पहाड़ों के पीछे छिपता था तब टैंट के अंदर हों या बाहर, ठंड एक सी ही थी...

पूज्य स्वामीजी ने कहा, 'कुछ अवश्य करना चाहिए। हमें एक आश्रम या धर्मशाला यहाँ बनानी चाहिए ताकि लोगों के पास एक सुरक्षित, गर्म जगह हो जिसमें वे विश्राम कर सकें और हम दवाई और मेडिकल सुविधाएँ मुहैया करा सकें।' भक्तों ने कहा, 'महाराज-जी। यह असंभव है। यह चीन है, भारत नहीं। आप भला चीन में आश्रम कैसे बना सकते हैं?'

पूज्य स्वामीजी ने कहा, 'यह ज़रूर होना चाहिए। यह यात्रियों की जरूरत है, जो भक्तिभाव से भरे दर्शनार्थ आते हैं। यह स्थानीय लोगों के लिए भी बहुत फायदेमंद होगा। यह करना होगा।'

यात्रियों ने मानसरोवर झील में नहाकर पूजा की और फिर भक्तिमय भजन के लिए एकत्रित हुए, तब तक पूज्य स्वामीजी ने स्थानीय ड्राइवर और गाइड से दोस्ती कर ली। वे अंग्रेजी या हिंदी नहीं बोलते थे, पूज्य स्वामी जी तिब्बती नहीं बोल सकते थे। फिर भी, धीरे-धीरे जब उनका भरोसा उस लम्बे बाल वाले, गेरुआधारी 'लामा' में बढ़ा, वे उनकी प्यार की भाषा में बात करने लगे। पूज्य स्वामीजी को पता चला कि वह इलाका स्थानीय सरकार और सैन्य प्रशासन द्वारा नियंत्रित है, जो वहाँ से लगभग पाँच घंटे की दूरी पर तकलाकोट में स्थित हैं। वह दूरी अधिक नहीं थी, लेकिन सड़क के अभाव में आधा दिन लग जाता था। उन्होंने ड्राइवर और गाइड

को कहा कि वह अधिकारियों तक संदेश पहुँचाएँ कि पूज्य स्वामीजी मिलना चाहते हैं, वे अपनी सेवाएँ एक स्थायी निवास के लिए देना चाहते हैं, जो उनके समुदाय की आमदनी का स्रोत बन सकती है।

एक यात्री की यादें

यहाँ यात्रा में, जब आप चारों ओर फैले पहाड़ों को देखते हैं, जो जहाँ तक नज़र जाए, वहाँ तक फैली हैं- आपको, आपकी जीप को, आपके पूरे जीवन को बालू के एक दाने से अधिक कुछ भी नहीं रहता- यह मस्तिष्क, आँखें, नाक और सारी इंद्रियाँ बस पतली हवा में घुल जाती हैं, एक पल आग, दूसरे ही पल में बर्फ....

हम यात्रा पर हैं- यही मंत्र होता..., बाकी सारी चीजें बेकार रह जाती हैं। यहाँ तक कि मेरे भय और आँसू भी पहाड़ों की ऊंचाइयों को भी हमारी दृष्टि से ओझल करनेवाले बादलों में खो गए....

यह मौन - मेरी जिह्वा का, वाणी का, दिमाग का...। आसपास की आवाज़ें तो बस मेरे ऊपर से, अगल-बगल से तैर रही थीं, लेकिन वे मेरे अंदर तक घुस चुकी असीम शांति को भंग नहीं कर पा रही थीं....

हम यात्रा पर हैं....किसकी यात्रा...कैसी यात्रा? जीवन की व्यर्थ चिंताओं की वास्तविकता कहीं अधिक आँकी हुईं जरूरतों से .... दूसरों पर अत्यधिक निर्भरता से...बाह्य आकर्षण से.... यात्रा, एक पहाड़ की जो हमें अनुभव कराता है, उस निरंतर शून्य की और चिरंतन पूर्ण की, हमारे अस्तित्व की... शून्यता .... नियंत्रण और सत्ता हासिल करने के प्रयासों की तुच्छता, निरर्थकता- कोई भगवान

शिव के पर्वत की रेत पर अपने चिरंतन पद चिन्ह कौन छोड़ सकता है...? और अधिक की कभी पूरी न होने वाली हमारी आकांक्षाएँ... अपनी हवेली उठाकर भला कौन ला सकता है शिव जी के चरणों में? ...हम मुश्किल से अपना शरीर ढो पाते हैं... हमारे जीवन को ग्रस्त करनेवाली चिंताएँ अब बिलकुल विसंगत, अप्रासंगिक, बेमाने लगतीं हैं... अब तो जीवन बस खाना, पानी, पर्याप्त ऑक्सीजन और बारिश से बचाव की प्रार्थना तक पर सीमित होता है।

लेकिन, इस अहं को मिटाने वाली शून्यता के साथ ही, हमारा उस दिव्यता के साथ एकत्व का भी विभोर कर देनेवाला भाव सघन होता है, उस बालुका राशि से भी जिससे वह पहाड़ बना है, वह संबंध भी दिखता है, जो उस महान पर्वत की ऊंचाई से है... हमारा उन अनधुले चेहरों और खाली पेटों वाले लोगों से बंधुत्व का भी भाव प्रखर होता है जिनका जीवन इस महान शून्य और निरंतर पूर्णत्व के एक साथ चल रहे महासागर में ही खत्म हो जाता है।

एक सैन्य शिविर में ....यहाँ मत जाओ, वहाँ मत जाओ, इस रेखा के पार मत जाओ, कोई तस्वीर नहीं.... किसी पुस्तक में कहानी की विडंबना .....एक ज़मीन उतनी दूर तक बंजर जहाँ तक नज़रें जाएँ, दिन गुज़र जाएँ जब कोई स्टोर, कोई टेलीफोन, कोई भवन सिवाय टीन की चादरों और मिट्टी के घरौंदों के अलावा कुछ न दिखे। हजारों हजार मील तक बालू का पहाड़, नदियाँ जो गुमनाम झीलों में बदल जाती हैं, बच्चे जो धूल भरी सड़कों पर हाय और बाय कहने को खड़े हैं.... उन पर इतनी सारी सेना? सुरक्षा, किस चीज की? और, किससे? क्या ये सैनिक उस ज़मीन को देखते भी हैं, जिस पर बैरिकेड लगा रहे हैं? क्या वे ब्रह्मा के दिमाग को समझ पाएँगे? क्या वे शिव के चरणों में कभी झुके हैं? क्या वे

उन पारदर्शी, स्वच्छ झीलों में प्रेम और श्रद्धा से नहाए हैं? मुझे नहीं लगता है। तो, यह आक्रामक सुरक्षा किससे? क्यों ये व्यर्थ के नियम? मीलों तक फैली बालू में सीमारेखा का विभाजन कैसे होता है? कैसे कहा जाता है- यह मेरी ज़मीन, यह तेरी? और, इसे क्यों बचाना, जब इसकी पूजा नहीं करनी? इसे क्यों पकड़े रखना है?

--हम यात्रा पर हैं- एक सच्ची यात्रा जो एक संदर्भ से दूसरे संदर्भ तक है। जो एक दुनिया की धारणाओं से दूसरी दुनिया तक है, इस नयी दुनिया में साधु लकड़ी के तख्त पर सोते हैं, उन कमरों में जिनकी सदियों से सफाई नहीं हुई है, जिनको अस्थायी टॉयलेट इस्तेमाल करने पर मजबूर होना पड़ा है....इस दुनिया में जहाँ पहाड़ों के ऊपर बर्फ लदी है, इस दुनिया में जहाँ महान संत बर्फ से पुतले बना रहे हैं, पहाड़ों की यह दुनिया में, जो आपके विचारों को आपके सोचने से पहले ही चुरा लेते हैं....शायद इस नयी दुनिया में... यह अर्थपूर्ण है...

बालू और झाड़-झंखाड़ के बाद अचानक ही अद्‌भुत लंबाई-चौड़ाई की एक झील सामने आ जाती है–स्फटिक-सी साफ़, बैंगनी और नीले रंग की किरणों की छटा बिखेरती, जब शाम का सूरज पानी पर अपनी किरणें बिखेरता है.... झील एक मृगजल है–इस बंजर इलाके में वैभवशाली सौंदर्य का जीवंत नमूना, स्वर्ग से भेजा हुआ एक उपहार.... जैसे हम ईश्वरीय धाम के निकट होते हैं।

सारी जीपें रुक जातीं हैं, किसी को कुछ कहने-सुननेकी आवश्य-कता महसूस नहीं होती...। हम चुपचाप कार से उतरते हैं, एक ऐसी ताकत और शक्ति के अधीन हुए, जिसके आगे हम शक्तिहीन हैं। कुछ तुरन्त ही प्रणाम की मुद्रा में गिर जाते हैं, कुछ उस दिव्य दृश्य को देखते हैं, मैं आँसुओं से फूट पड़ता हूँ, जो जल्द ही सिसकियों

में बदल जाते हैं ..., हालाँकि मैं खुद भी नहीं जानता कि ये वहाँ पहले कभी मौजूद थे....

मुझे उम्मीद नहीं थी कि मुझ पर ऐसा प्रभाव पड़ेगा। एक ख़ूबसूरत झील, सुंदर पहाड़, स्वस्थ पहाड़ी यात्रा, माँ पृथ्वी की बाँहों में होने का आनंद, वही मेरी अपेक्षा थी। लेकिन, यहाँ मैं हूँ, मेरे घुटनों पर, जब मैं उस ईश्वर के सामने झुक रहा हूँ जिसकी पूजा करना मेरे लिए निषिद्ध है...।

मैं स्वामीजी के चरणों पर गिर जाता हूँ, आँसुओं की धार निरंतर है। यदि मैं बस यहाँ रह सकता, हमेशा के लिए, उस आदमी के चरणों पर, जिसने यह मेरी आत्मा के साथ किया है....

मैं आगे-पीछे देखता हूँ, उनका चेहरा डूबते सूरज की आभा में चमक रहा है, इस झील का पानी जो ब्रह्माजी के दिमाग से निकला है, दूर कहीं कैलाश पर्वत की चोटी, जो पवित्रतम है, जहाँ पर भगवान शिव रहते हैं। आगे-पीछे। वह, झील, पहाड़। यह ऐसा ही है जैसे ये सब एक अवर्णनीय, संपूर्ण एकता का अनुभव हो, शिव की 'स्व' को हरनेवाली सन्निधि हो। मैं उनकी आँखों में नहीं देख पाता हूँ। यह मेरे लिए बहुत ज़्यादा है। क्या होगा, यदि आप ईश्वर की आँखों में देखें......मैं पहलेही अत्यधिक तीव्र भावों से भरा हूँ, आदर से, विनय से... यह पता लगाने की आवश्यकता ही खत्म हो गयी...

धीरे-धीरे जीपें आती हैं और हम एक अर्द्धवृत्त में प्रार्थना के लिए इकट्ठा होते हैं- महाराजजी, स्वामीजी और भाईश्री केंद्र में, जो झील को देख रहे हैं, वास्तव में वे उसके परे भी बहुत कुछ खोज चुके हैं। जैसे हर कार आती है, लोग खुद ही प्रणाम की मुद्रा में झुक जाते हैं, झील और पहाड़ के प्रति और हमारे नेताओं के प्रति जो हमारे शरीर और आत्मा को प्रभु के इतने निकट लेकर आए!

अगले दिन, जब 200 से अधिक यात्री परम पूज्य स्वामी गुर-शरणानंदजी और पूज्य संत श्री रमेशभाई ओझा के चरणों में पवित्र और श्रद्धापूरित शिव-अभिषेक समारोह के लिए इकट्‌ठा हुए, पूज्य स्वामीजी कहीं दिख नहीं रहे थे। आखिरकार एक मिली-जुली खोज से पता चला कि वह मैदान के दूसरे एक कोने में टैंट में लकड़ी के स्टूल पर बैठे हैं, उनकी बगल में एक चीनी अधिकारी पूरे सैन्य लिबास में है। उनका बायाँ हाथ अधिकारी के कंधे पर था, जबकि दाहिने में काजू थे, जिसमें से ले-ले कर अधिकारी खा रहा था, धीरे-धीरे और हिचकिचाते-सकुचाते हुए... 'ठीक है, कोई बात नहीं। यह शरीर को बल देते हैं। और खाइए'–स्वामीजी कह रहे थे। जब खोजी दल टैंट में घुसा, इससे पहले कि वे कुछ कह पाते, उन्होंने तुरन्त ही निर्देश दिया- 'इनके लिए चाय लाओ'- ।

'पर महाराजजी, अभिषेक थोड़ी देर में शुरू हो रहा है। वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, ताकि शुरू तो हो'- उनमें से एक ने कहा।

पूज्य स्वामीजी ने चीनी अधिकारी के चेहरे की ओर देखा और फिर उन यात्रियों की तरफ, जो टैंट के दरवाजे पर बहुत उत्सुकता से खड़े थे, 'आप लोग अभिषेक कीजिए। कृपया पूज्य महाराजजी और पूज्य भाईश्री से समारोह की शुरुआत करने को कहिए। मैं बाद में आऊँगा। तब तक, इसको एक कप चाय पिलाइए.... मेरी पूजा यहीं है।'

स्थानीय नागरी परिषद के उस सैन्य प्रमुख ने पूज्य स्वामीजी को इस बात के विवरण दिए कि निर्माण के लिए कौन स्वीकृति दे सकता है, कौन लोग थे, जिनको संपर्क करना होगा और उचित रास्ता क्या होगा?

वर्ष 1998 में कैलाश पर्वत और मानसरोवर की वह यात्रा काफी

सफल रही। ख़ूबसूरत मौसम, कैलाश की पूरी परिक्रमा और पूज्य स्वामी गुरुशरणानंदजी और पूज्य भाईश्री के साथ ने पूज्य स्वामीजी की पहली यात्रा को आनंददायक और दिव्य अनुभव बना दिया। परंतु, वे कहते हैं, 'मेरी सच्ची यात्रा तो बस शुरु हुई थी। भगवान शिव के धाम की यात्रा, भले ख़त्म हो गयी हो, लेकिन उस क्षेत्र में दीर्घ-प्रतीक्षित सुविधाओं की व्यवस्था की यात्रा शुरू हो गयी थी।'

अगले दो वर्षों तक उन्होंने विभिन्न सरकारी अधिकारियों को एक के बाद एक पत्र लिखे। उनसे उन्होंने रहने और ठहरने की व्यवस्था में सहयोग के अलावा कुछ नहीं माँगा। सभी खर्चे उनके फ़ाउण्डेशन द्वारा वहन किए जाने थे। सभी आय सीधा स्थानीय लोगों तक जानी थी। वे बस, बनाने की अनुज्ञा चाहते थे। आखिरकार, जब जाड़े की बर्फ तिब्बत के नागरी इलाके में गिरी और वार्षिक धुंध व कुहरे ने पूरे इलाके को घेर लिया, यात्री नज़र नहीं आ रहे थे, तो उनको ल्हासा से काटमांडू में एक आधिकारिक अनुबंध-हस्ताक्षर समारोह के लिए निमंत्रण आय़ा.... चीनी सरकारी अधिकारी ल्हासा से आएँगे, और उनको भारत से जाना था।

फिर, 2001 के अंतिम महीने से कुछ हफ्ते पहले इंडिया हेरिटेज रिसर्च फाउंडेशन और नागरी प्रीफेक्चर, तिब्बत स्वायत्त परिषद और चीन सरकार के बीच अनुबंध पर हस्ताक्षर हुआ, जिमसें मानसरोवर झील पर एक रेस्ट हाउस के निर्माण की बात थी। एक ख़ूबसूरत प्रमाणपत्र पूज्य स्वामीजी को दिया गया, जिसमें उनका उपहार भी शामिल था।

जुलाई 2003 में पूज्य स्वामीजी ने परमार्थ मानसरोवर आश्रम का उद्घाटन लगभग 251 यात्रियों के साथ किया।

बाद में वहाँ ध्यान और सत्संग हॉल और मेडिकल रूम जैसी

अतिरिक्त सुविधाएँ भी जोड़ी गयीं, जहाँ असंख्य आध्यात्मिक गुरुओं ने सैकड़ो यात्रियों को प्रार्थना, कीर्तन और ध्यान में जोड़ा है, कथावाचन किया है। मानसरोवर के तट पर कथावाचन किसी भी हिंदू का अकल्पनीय स्वप्न होगा। पूज्य स्वामीजी के लिए यह और इस के जैसी तमाम बातें बस प्रभुकृपा हैं।

पूज्य स्वामीजी ने 2006 में इस पवित्र क्षेत्र में अपना दूसरा आश्रम खोला, मानसरोवर झील के बाद उनहों ने परयांग गाँव में एक आश्रम बनाया, जहाँ सभी यात्री मानसरोवर आने से पहले एक दिन ठहरते हैं। वर्ष 1998 की यात्रा में जब वे एक अस्थायी गेस्ट हाउस में ठहरे थे, जहाँ न दरवाजा था न ही फर्श, जहाँ पानी तक नहीं था। पर्यांग कैलाश-मानसरोवर आश्रम में न केवल 25 से 30 कमरे हैं - प्रत्येक कमरा तीन या चार लोगों के रहने लायक है बल्कि बाथरूम और पेयजल की भी पर्याप्त व्यवस्था वहाँ है। जे-नरेटर से कमरों को गरम करने की व्यवस्था है, तो वहाँ उस क्षेत्र में बोरिंग वेल लगवाया है जहाँ वे पानी की संभावना को सोच तक नहीं पाये थे। परदों और बाकी सुविधाओं से सुसज्जित इस आश्रम में पहले आवारा और जंगली कुत्ते ही घूमा करते थे...यह परयांग आश्रम का उपहार अब स्थानीय लोगों के लिए स्थायी आमदनी का स्रोत बन गया है।

सितंबर 2009 में स्वामीजी ने इस पवित्र इलाके में अपना तीसरा आश्रम खोला।

'तुम मुझे प्यार करते हो, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, हम एक हैं, एक परिवार'- पूज्य स्वामीजी एक छोटे से माइक्रोफोन में गाते हैं, बच्चे खुशी और आश्चर्य से देखते हैं, उनके धूप में सिके हुये और हवा से फटे चेहरे आश्चर्य से खुले हैं। वे आगे बढ़ते हैं, ताकि देख

सकें उस संत को जो एख धातु की स्कूली कुर्सी पर बैठा है, जिसने उनको कुछ ही मिनट पहले नए सनग्लासेस दिए हैं... वे गाते हैं और फिर माइक्रोफोन बच्चों की तरफ बढ़ा देते हैं, उनको गाने का इशारा करते हुए...

फिर क्या था..., खुशी से किलकारी मारते बच्चे दोहराते हैं- हम तुम्हें प्यार करते हैं। वह माइक्रोफोन पकड़कर फिर उनका उत्साह बढ़ाते हैं- तुम मुझे प्यार करते हो। बच्चे भी प्रसन्नता पूर्वक जवाब देते हैं। कुछ ही देर बाद वे साथ-साथ गाने लगते हैं- हम तुम्हें प्यार करते हैं। पूज्य स्वामी जी धुन में गाते हैं, बहुत ही मीठा... वे ज़ोर ज़ोर से गाते हैं, एक-दूसरे पर गिरते हैं, हँसते हुए–हम एक परिवार हैं। पूज्य सवामीजी, यात्री और बच्चे साथ गाते हैं। परयांग स्कूल का सीमेंट का बरामदा एक अंतर-धार्मिक, अंतर-सांस्कृतिक, अंतर-भाषिक प्रेम का अद्भूत दृश्य प्रस्तुत करता है। एक कार्यक्रम जो बच्चों के साथ शुरू हुआ था- उनको कलम, पैंसिल, कंबल, नोटबुक, बिस्किट और धूप के चश्मे देने के लिए, उसका निष्कर्ष यह निकला कि वे यात्रियों के साथ बाँहों में बाँहें डालकर झूम रहे हैं, गा रहे हैं और ऋषिकुमार खाली पीपों पर तबला बजा रहे हैं।

तीसरा आश्रम डेरापुक मे बना जो 17000 फीट की ऊंचाई पर है, कैलाश के ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी की तरफ। जब तीर्थयात्री कैलाश के तीन दिनों की परिक्रमा शुरू करते हैं,, तो वे पहली रात, इस जगह बिताते हैं। यह सबसे कठिन और दुष्कर रात होती है, जब आपको अगले दिन बर्फीली घाटी को पार करना होता है। जो याक सोने जाते हैं, वे उठते हैं तो उनकी पूँछ से बर्फ के टुकड़े लटकते होते हैं।

आश्रम के बनने से पहले, तीर्थयात्री शिविरों में सोते थे जिनपर चट्टान रखी जाती थी, ताकि हवा उन्हें उड़ा न दे। देर रात में

बाथरूम जाने का मतलब था कि आप बर्फीली, चाबुक मारती हवा का सामना करें। बारिश या बर्फ भी गिर सकती थी...

एक जगह, जहाँ चार-पहिया वाहन जा नहीं सकते थे, पैदल या याक पर सारा भवन निर्माण का सामान ले जाना भी किसी बहादुरी से कम न था, वहाँ अब दो मंज़िला आश्रम है... परमार्थ कैलाश-मानसरोवर आश्रम, डेरापुक! इसमें संलग्न बाथरूम, चलता पानी, आरामदेह कंबल और गर्म कमरे मौज़ूद हैं। एक बड़ा डाइनिंग हॉल जो संलग्न किचेन के साथ ही है, वह सभी को अंदर ही रहने और वहीं चाय या सूप पीने की सुविधा देता है।

पूज्य स्वामीजी का मंत्र है-काम करो और आगे बढ़ो। इसीलिए, कई वर्ष गुजर जाते हैं और उस पवित्र भूमि की तरफ अब नहीं जा पाते, जिनका प्रबंधन अब स्थानीय लोग देखते हैं।

मानसरोवर झील के तट पर आश्रम बनने से लेकर अब तक के दशक में पूज्य स्वामीजी ने दूसरे पवित्र नगरों में सौंदर्यीकरण और पुनर्निर्माण करवाया है, जिसमें गंगोत्री भी शामिल है। गंगोत्री के सौंदर्यीकरण योजना में माँ गंगा को प्रदूषण से मुक्त करने की बात है, इसके प्राकृतिक सौन्दर्य को अबाधित तौर पर पुन: स्थापित करने की चुनौती हैं, अतिक्रमण को हटाना है और इसे एक साफ़, पवित्र और अबाधित जगह के तौर पर स्थापित करना है।

आम तौर पर जब लोग यात्रा के लिए सामान बाँधते हैं, तो उनके कपड़ों में गरम कपड़े, शायद सनस्क्रीन या मच्छर की दवा, कैमरा और दूसरी जरूरी चीजें होती हैं। जब पूज्य स्वामीजी के लिए पैकिंग की जाती है, तो उसमें रबर के दस्ताने और कूड़ेदान के तौर पर इस्तेमाल की जानेवाली पॉलीथीन थैले भी होते हैं, क्यों कि शायद कुछ ही देर में वे रास्ते का कूड़ा उठाते नज़र आएँ।

उनके सामान में पेन, पेंसिल, बिस्किट या काजू-किशमिश भी होना चाहिए, जो वे गाँवों में बांटते चलेंगे। यदि वे भूल भी गए तो कोई बात नहीं, क्यों कि पूज्य स्वामीजी हमेशा तैयार रहते हैं। उनके सामान में कपड़ों के लिए एक छोटे हैंडबैग के अलावा कई बड़े सूटकेस में यही सब सामान होता है, ताकि वे रास्ते में मिलनेवाले गरीब गाँववालों को ये बाँट सकें।

कई यात्राओं की सफल समाप्ति के बावजूद पूज्य स्वामीजी के लिए हर यात्रा का लक्ष्य एक ही है- अंदर की दिव्यता से जुड़ना। 'यह कैलाश या केदारनाथ में भगवान शिव के बारे में नहीं है, न ही बद्रीनाथ में भगवान विष्णु के बारे में... बल्कि इस यात्रा के साथ साथ इन पवित्र और दिव्य ऊर्जा से भरे हैं, इन यात्राओं के शिव और नारायण को अपने भीतर खोजना है। वही दिव्यता जो पवित्र स्थानों में रहती है, वही हमारे हृदय में भी रहती है। यात्रा बाहर की ही नहीं होती है, वे तो भीतर की यात्राएँ हैं। इन यात्राओं के माध्यम से हम अपने भीतर उतरें, खुद को तलाशें, खुद को तराशें...यही है तीरथा यात्रा और जीवनयात्रा का सार!!'

प्रेरणादायी शिक्षा

ईश्वर की परिपूर्ण व्यवस्था में संपूर्ण आस्था

एक बार एक पेड़ के नीचे तीन लोग बैठे थे। बैठे बैठे उनमें ईश्वर के बारे में चर्चा शुरू हो गयी। एक ने कहा, "मैं नहीं मानता कि ईश्वर की पूरी व्यवस्था निर्दोष होती है... वास्तव में ऐसी बहुत सारी चीज़ें हैं जो एक सामान्य से सामान्य मनुष्य भी ईश्वर कि रचना से बेहतर कर सकता है... जैसे उधर देखो..." उस आदमी ने सबका ध्यान सामने ही सैंकड़ों की तादाद में लगे हुये कद्दुओं की तरफ खींच लिया। "देखो उधर...ईश्वर ने इन बड़े बड़े कद्दुओं का भार कितनी नाज़ुक-सी लताओं पर डाला है... बिचारी बेलें हमेशा इनकी बोझ तले दबी-दबी सी रहती हैं"।

दूसरे ने कहा, "तुम ठीक कह रहे हो... वह आम के पेड़ देखो... कितने विशाल, पुष्ट और बलवान... और उनके फल? छोटे छोटे और हल्के से! कितनी विषमता!... मोटा भारी कद्दू नाज़ुक बेलों

पर, और छोटा हलका सा आम इतने बड़े पेड़ पर! मैं तुमसे सहमत हूँ मित्र, कि ईश्वर की व्यवस्था उतनी कुशल और परिपूर्ण नहीं है"।

फिर भी जो तीसरा था वह इन दोनों से सहमत नहीं था। 'जो तुम लोग कह रहे हो, वह निश्चित तौर पर सोचने को मजबूर करता है। यह सच है कि मज़बूत पेड़ पर मज़बूत फल और पतली लता पर छोटे फल होने चाहिए, लेकिन मैं मानता हूँ इसमें कोई बेहतर, हमारी सोच से भी परे इसके पीछे कोई एक बड़ी और दिव्य योजना है। हम नहीं जानते पर ईश्वर जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं और उनकी व्यवस्था भी बिल्कुल परिपूर्ण है, भले ही हम उसे समझ न पाएँ।' दोनों दोस्तों ने तीसरे दोस्त की अंधश्रद्धा और भरोसे का खूब मज़ाक उड़ाया, 'क्या तुम देख नहीं सकते कि कितना मूर्खता-पूर्ण है यह नियोजन? एक मूर्ख भी इससे बेहतर जानता है।'

दूसरों की आलोचना से आहत, लेकिन अपनी श्रद्धा में दृढ़ विश्वास रखनेवाला वह तीसरा आदमी अपने दोनों दोस्तों से दूर थोड़ा अलग दूसरे पेड़ के नीचे चला गया। तीनों मित्र देखते देखते आम के पेड़ों की शीतल छाया के नीचे गहरी नींद में सो गए।

अचानक एक ज़ोरों की आँधी आयी और पेड़ों की शाखाएँ टूटने लगीं, चारों ओर पके आम गिरने लगे। सोते हुए नास्तिक जाग गए जो ऊपर से आम गिरने से चौंक गए थे। उनमें से एक ने कहा, 'हमारा भक्त दोस्त सही था। यह सचमुच भगवद्कृपा है कि केवल आम ही इन शाखों पर लगे हैं। एक गिरते आम का वजन ही हमें चौंकाने लिए काफी था, जख्म देने के काबिल था, लेकिन अगर बड़े बड़े कद्दू उन शाखाओं पर लगे होते और, अगर कद्दू ऊपर से गिरे होते, तो हम लोग आज कद्दू के बीज बन चुके होते! यह बिलकुल सही है कि कद्दू ज़मीन के इतने पास उगते हैं और

छोटे छोटे आम ऊपर पेड़ों पर...। प्रभु की लीला, उनकी यह सृष्टि सचमुच अद्भुत है!'

जीवन में कई बार हमें ईश्वर के संकेतों पर शंका होती है। हम सोचते हैं, 'क्या सचमुच यही मार्ग है?' हम उस दिव्य योजना पर शंका करते हैं, दिल टूट जाता है, हमारा विश्वास डगमगाता है। प्राय: ईश्वर की योजना सचमुच रहस्यमयी होती है। पूरी तस्वीर जबतक हमारे सामने उसके द्वारा लायी नहीं जाती तबतक हम सच्चाई नहीं जान पाते।

आज कल इन दिनों हर कार में एक जीपीएस लगा होता है, जो आप के गंतव्य तक पहुँचने का रास्ता बताता है। आप जैसे ही कार में बैठते हैं, आप अपना पता लिखते हैं और पूरे रास्ते एक मीठी आवाज आपको निर्देश देती रहती है। हालाँकि, पता लिखने पर भी निर्देश से पहले आपको 'स्वीकृति या एक्सेप्ट' का बटन दबाना होता है। अगर बटन नहीं दबा है, तो निर्देश शुरू नहीं होंगे और आपको खुद ही अपने गंतव्य तक जाना होगा।

जीपीएस का मतलब होता है, 'ग्लोबल पोज़िशनिंग सिस्टम'। लेकिन यह ईश्वर के 'गॉड्स परफेक्ट सिस्टम' का एक सूक्ष्म रूप है। वह हमारे जीवन की मंज़िलों के रास्ते जानता है, ताकि हम अपने अनूठे, विशेष और दिव्य लक्ष्य को पूरा कर सकें। उसने मानचित्र बनाया है, रास्ते बनाए हैं, पहाड़, नदियाँ, राजमार्ग और ट्रेन की क्रॉसिंग भी बनायी है। वह हरेक मोड़, हरेक कोने, हर एकतरफा रास्ते से भी परिचित है। वह कभी भी अपना रास्ता नहीं भूलता।

यदि हम कार के जीपीएस सिस्टम में एक्सेप्ट का बटन नहीं दबाएँ, तो हमारी यात्रा तनाव और चिंता से भरी होगी। हर मोड़ पर हमें सोचना होगा कि सीधा जाना है या दाएँ-बाएँ... हमें रुककर

दिशाओं के बारे में उन लोगों से पूछने की नौबत आएगी जो शायद हमसे भी अधिक अनजान हों। हम ऐसे वैसे जैसे भी, अंत में अपनी मंजिल तक पहुंच ही जाएँगे, यदि हम धैर्यवान और भाग्यशाली हों, ...पर ऐसे में शायद हमें बहुत देर लग जाएगी और हमारी यात्रा भी तनावभरी हो जाएगी।

उस की जगह पर यदि हम एक्सेप्ट का बटन दबा दें, तो हमें मधुर और मृदु निर्देश मिलते रहेंगे, हर कदम पर... हम जानते होंगे कि कहाँ हमें मुड़ना है, कहाँ सीधे जाना है और कहाँ रुकना है। हमारे दिमाग ईश्वर की सृष्टि के बारे में सोचने के लिए मुक्त होंगे, अच्छे और पवित्र विचार मन में आएँगे। हम कार में बैठे बैठे दूसरों के साथ बातचीत भी कर पाएँगे। हमारी यात्रा शांतिपूर्ण, सरल और सुखद होगी।

हमें ईश्वर के नियमों का “ऐक्सेप्ट या स्वीकार” का बटन सदैव दबाना ही होगा, फिर जिस मार्ग से वह हमें ले जा रहा है उस से हम परिचित हों या नहीं उसका विचार भी करने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी... वह सर्जनहार है, संनियोजक है, संचालक है और पथ-प्रदर्शक भी!!

शिक्षा

अनंत इच्छाएँ

यह उन दिनों कि बात है जब जम्मू-कश्मीर इतना हिंसाग्रस्त नहीं था और मैं अपनी युवावस्था में था...हम लोग कश्मीर गए थे, यह सोचकर कि कुछ दिन कश्मीर जाकर प्रशांत और निर्मल, स्वर्ग से सुंदर उस डल झील में ध्यान करने का आनंद लें...। कुछ दिन तो ऐसे उड़ गए कि पता ही नहीं चला... सभी भक्त वहाँ इतने प्रसन्न थे कि हमने अपना लौटना एक और सप्ताह के किए टाल दिया और अंत में कुछ दिनों के बदले पूरे एक महीने तक वहाँ रह गए।

हर सप्ताह हम उस स्वर्ग से सुंदर, शांत और सुरम्य वातावरण से लौटना टालते रहे। भक्त लगभग चिल्लाकर कहते, 'बस एक सप्ताह और...' और हम रुक जाते।

अंत में, एक महीने बाद हमें लगा कि अब तो लौटना ही चाहिए। यही सोचकर, जो नाविक हमें अब तक घुमाता था उस

सज्जन नाविक से भेंट करने और विदा लेने गए। जब एक भक्त ने उसे कुछ पैसे देने चाहे, तो उसने मना कर दिया। उसने कहा, 'आपके पैसे के लिए धन्यवाद। वस्तुत: मैं पूज्य स्वामीजी से एक खास आशीर्वाद लेना चाहता हूँ। क्या उनसे मिलना और ऐसा आशीर्वाद लेना संभव है?'

जब वह नाविक वहाँ मुझसे मिलने आया, तो ज़मीन पर दंडवत प्रणाम की मुद्रा में गिर गया, काफी देर बाद उसने सिर उठाया तो उसकी आँखों में आँसू थे...फिर हाथ जोड़कर वह जो बोला, उसे मैं कभी नहीं भूला...,

'हे स्वामीजी। मुझे नहीं पता कि मैंने पिछले जनम में कौन से ऐसे भयंकर कर्म किए हैं कि इस झील के किनारे वर्षों से पड़ा हुआ हूँ... आप मुझे आशीर्वाद दें कि एक रोज़ मैं मुंबई को देख सकूँ'...।'

मैं दंग रह गया। पूरे भारत वर्ष से हम लोग काश्मीर आए थे (और, कुछ भक्त तो मुंबई, कोलकाता, दिल्ली जैसे महानगरों के भी थे) और हम कश्मीर के शांत, सुरम्य वातावरण के आकर्षणसे पूरे प्रभावित थे, मुंबई के भक्त तो हमेशा के लिए इस झील में रहने के लिए कुछ भी कर सकते थे! पूरी दुनिया के यात्री कश्मीर घूमने आते हैं। जब यहाँ हिंसा नहीं होती है, तो यह जगह धरतीपार स्वर्ग समान है। फिर भी, यह आदमी... जिसने यहाँ जन्म लिया, जो हमेशा से इस खूबसूरत झील के बीच में रहता है, वह और कुछ नहीं, मुंबई के सपने देखता है!... जो मुंबई में हैं, वे कश्मीर में छुट्टी बिताने के लिए तरसते हैं और जो कश्मीर में हैं वो मुंबई जाने के लिए तरस रहे हैं!

वासनाएँ मानव मन की सबसे बड़ी शोकांतिका है... हम कभी

भी संतुष्ट नहीं होते। हमेशा यह दिल माँगे मोर...यह सत्य है.... हम कभी भी महसूस नहीं करते कि 'बस, अब हो गया, यह बहुत है'। हमें सदैव 'एक और' चाहिये होता है...यह लगभग हमारे जीवन के प्रत्येक विषय में लागू होता है। मोटापा, मधुमेह और हृदय रोग आसमानी बुलंदी पर हैं क्योंकि हम हमेशा ही चाहते हैं, 'बस, एक और'- लड्डू... 'एक और' गुलाब जामुन या फिर 'एक और' चॉकलेट केक!' हमारे बैंक खाते तो भर रहे हैं, पर ज़िंदगी खाली हो रही है, क्योंकि हम 'बस एक और' से समझौता कर रहे होते हैं, या बस 'एक और' परियोजना पूरी कर रहे होते हैं... इसी वजह से वह मूल्यवान समय जो हम परिवार के साथ, आध्यात्मिक विकास में या फिर दूसरों की सेवा में बिताते, खाली चला जा रहा है, व्यर्थ में बरबाद हो रहा है।

प्रभु की शरण में जाने से ही वासनाओं का त्याग संभव हो सकता है। वासनाहीन होकर हम शांति और आनंद को पाते हैं। हम अज्ञान वश सोचते हैं कि इच्छाओं कि पूर्ति से हमें आनंद मिलेगा, बनता इसके ठीक उल्टा है। वासना पूर्ति एक पल की खुशी देती है, इसलिए नहीं कि वह पूरी हो गयी है, बल्कि इसलिए कि इच्छा थोड़ी देर के लिए ओझल हो गयी है... यदि मैं एक कार के लिए तड़प रहा हूँ और मुझे नयी कार मिल गयी है, तो उसकी इच्छा चली जाती है। ऐसा इसलिए नहीं कि नयी कार ने मुझे आनंद दिया है, बल्कि इसलिए कि मैं नयी कार की इच्छा से मुक्त हो गया हूँ! वासनाओं की कमी आनंद देती है। फिर भी, इच्छाओं को कम करने का मतलब भाग भाग कर इच्छाओं पूरा करते जाना नहीं है। यह नियम है कि एक इच्छा पूर्ण होने से पूर्व ही दूसरी अनंत इच्छाएँ

पैदा होती जाती हैं... वे हमारे मन के उद्यान में घासफूस की तरह हैं। चाहे जितनी बार उन को उखाड़ फेंकें, वे फिर से उग ही आएँगे। एक पल के लिए हम संतुष्ट हो सकते हैं और फिर वासना की आग फिर से धधकने लगती है... और भी तेज़ी से...

शिक्षा

जीवन पथ पर कैसे चलें...

परमार्थ में मेरे शुरुआती दिनों में एक अतीव सम्मानित महान संत ऋषिकेश आते थे, हमारे आश्रम में प्रतिवर्ष उनका सत्संग होता। लेकिन हमारे आश्रम में रहने के बजाय वह पवित्र गंगा के तट पर, एक कुटिया में रहना अधिक पसंद करते थे।

मुझे उनको प्रतिदिन सत्संग में लाने की विशेष सेवा मिली थी। अत: सत्संग कथा के लिए जब वे उस व्यस्त बाज़ार से चलते, तो मैं उनके रास्ते में आनेवाले हर व्यक्ति और वस्तु को हटाते हुए साथ चलता, ताकि वह सम्मानित महापुरुष आराम से बिना भीड़ का अनुभव किये शांतिपूर्वक मार्गपर चल सकें। रास्ते में जो भी आता, मैं सबसे रास्ते भर कहता, 'कृपया किनारे हटिए, कृपया रास्ते से हटें।' मैं घूमती गायों और गधों को भी हल्के से आगे

बढ़ाता तथा मैं साइकिल सवारों और सब्जी-फलवाली ठेलियों को भी हटाता, ताकि वह शांतिपूर्वक पहुँच सकें।

आखिर, हम आश्रम के दरवाजे तक पहुँचते, जहाँ मैं बहुत गर्व महसूस करता कि मैं उनको आराम से और सुरक्षित आश्रम तक ले आया, मैं उन के रास्ते कि बाधाओं को दूर करता चला आया!

उन संत ने यद्यपि, बड़े प्रेम से कई बार मुझे देख कर कहा, 'बेटा, किस-किस को हटाते रहोगे? और कब तक हटाते रहोगे? धीरे से अपना रास्ता बनाते जाओ और अपना रास्ता बनाकर निकलते जाओ।' बात तो छोटी-सी है पर कितनी बड़ी शिक्षा है इस में!

हम अक्सर ही कुंठित हो जाते हैं- टूट जाते हैं... सोचते हैं कि दूसरे हमारा रास्ता रोक रहे हैं... हमारा रास्ता काट रहे हैं... हमारी अपनी नाकामयाबी का दोष हम कई बार दूसरों पर लगाते हैं। हम खुद को समझाते हैं कि यदि उन्होंने हमें छोड़ दिया होता, या वे हमारे रास्ते से हट जाते तो हम सफल हो सकते थे...। हम लोगों को धक्का देने और एक तरफ हटाने की कोशिश करते हैं।

लेकिन, बाधाएँ आनी रुकती नहीं। जो लोग ईर्ष्यालु हैं, वे हमारा रास्ता रोकने से चूकेंगे नहीं... कितने समय के लिए हम उन्हें हटाने की कोशिश कर सकते हैं? कितनी बाधाएँ, कितने दुश्मनों को हम हटा सकते हैं? जवाब सरल है। हमें अपना रास्ता उनके चारों ओर से या बीच से ही निकालना होगा। अगर वे दाहिने से रास्ता रोक रहे हैं, तो हम बाएँ चलेंगे, अगर वो बाएँ का रास्ता रोकेंगे, तो हम दाहिने चलेंगे। लेकिन न उनका बुरा सोचेंगे न बुरा करेंगे।

जो लोग दिमाग, विचार और कर्म में पवित्र हैं, उनके लिए हमेशा एक रास्ता होगा। वह रास्ता कई बार संकरा हो सकता है

और यह भी दिख सकता है कि बाधाएँ और दुश्मन दोनों ही तरफ हैं, लेकिन हमें विनम्रता और ईमानदारी से अपना रास्ता बनाना होगा। हमें अपने धर्म के रास्ते पर चलते रहना है, ईमानदारी, पवित्रता और दयालुता के रास्ते को अपनाना है, बिना इसकी चिंता किए कि कौन हमारा रास्ता रोक रहा है? या कौन हमारा विरोध कर रहा है?...हमें तो उनके लिए भी प्रभु से प्रार्थना करनी है कि प्रभु उन्हें सद्बुद्धि प्रदान करें...अन्यथा हमारे अमूल्य समय, ऊर्जा और केंद्र का बड़ा हिस्सा बाधाओं को हटाने में निकल जाता है। सदैव बाधाओं के इर्द-गिर्द ही अपना रास्ता चुनो। दुश्मनों के इर्द-गिर्द अपना रास्ता बनाओ। उनको धक्का मत दो, गिराओ मत, न ही उनसे झगड़ा करो। इसके बजाय स्थिति का निरीक्षण करो और देखो कि रास्ता कहाँ साफ है? फिर उस रास्ते से अपनी यात्रा जारी रखो...

जितना भाव हम दूसरों को देते हैं, जो हमें धोखा देने या गिराने में लगे हैं, उतना ही कम समय और ऊर्जा में हम सही रास्ते पर चलने के लिए मिल पाता है। उस तरह, हमारे दुश्मन जीत जाते हैं क्योंकि उन्होंने हमारी शांति, स्थिरता, आनंद और समय छीन लिया है। उनको रास्ते से हटाने के बजाय अगर हम अपना लक्ष्य सही तरीके से देख सकें, तो हमें सही रास्ता भी मिल जाएगा जिस पर हमें चलना है।

शिक्षा

आध्यात्मिक जीवन का समय है– अब! आज!!...अभी!!!...

एक बार एक शिष्य अपने गुरु के आश्रम में साधना और सेवा का दिव्य जीवन बिता रहा था। एक दिन, वह अपने गुरु के पास गया और बोला, "गुरुजी, मैं आध्यात्मिक जीवन तो जीना चाहता हूँ। मैं प्रभु की सेवा में भी रहना चाहता हूँ। मैं इस लौकिक, सांसारिक दुनिया से निकलना चाहता हूँ। लेकिन मुझे लगता है, कि मैं अभी पूरी तरह से तैयार नहीं हूँ... एक परिवार, भौतिक सुविधाएँ और सुख की इच्छाएँ अभी भी बहुत प्रबल हैं। मुझे उन इच्छाओं को पूरा करने के लिए कुछ समय दें और फिर मैं आपके पावन चरणों में लौट आऊँगा"।

गुरु ने कहा, 'कोई बात नहीं, मेरे बच्चे। जाओ, शादी करो, परिवार बनाओ और संपत्ति इकट्ठा करो। दस वर्षों बाद मैं तुम्हारे पास मिलने आऊँगा। मेरा आशीष तुम्हारे साथ है।'

अपने गुरु के आशीर्वाद के साथ, वह व्यक्ति वापिस घर परिवार

में आ गया और जल्द ही एक खूबसूरत लड़की से शादी भी कर ली। उनको तीन खूबसूरत संतानें हुईं और वह व्यक्ति अर्थार्जन में भी यशस्वी हो गया।

दस वर्षों के बाद अचानक उनके घर का दरवाजा किसी ने खटखटाया। उस व्यक्ति की पत्नी ने दरवाज़ा खोला तो एक दुबला पतला सा भिखारी खड़ा हुआ था...। उस भिक्षुक ने उसके पति को बुलाया। पहले तो उसने भिखारी को झिड़क दिया, यह सोचकर कि वह पैसा या और कुछ माँगने आया है, लेकिन पति ने उसकी आवाज़ से पहचान लिया कि वह उस के गुरु हैं, तो उसने प्रेमपूर्वक उन्हें अंदर बुला लिया।

'मैं तुम्हें इस मायावी संसार से दूर ले जाने के लिए आय़ा हूँ, क्योंकि अब तुमने अपनी इच्छाएँ पूरी कर ली हैं। पत्नी, बच्चे और धन पा लिया है। चलो मेरे बेटे, मेरे साथ। अब चलकर तुम अपनी साधना करने की इच्छा पूरी करो।"- गुरु ने कहा।

लेकिन, व्यक्ति ने अपने गुरु की ओर देखकर कहा, 'प्यारे गुरुजी। आप सही हैं। आपने मुझे दस वर्ष का समय दिया था और आपके आशीर्वाद से मैं फला-फूला हूँ। परन्तु, मेरे बच्चे छोटे हैं और मेरी पत्नी उनको अकेले संभाल नहीं पाएगी। मुझे और दस साल दें ताकि मेरे बच्चे बड़े हो जाएँ तो अपना खयाल रख सकें।'

एक सच्चा गुरु आपको रास्ता दिखाएगा लेकिन वह कभी आपको जबरदस्ती से आप की इच्छा के विपरीत कोई काम नहीं करवाएगा... इसीलिए, गुरु ने फिर से प्रेमपूर्वक कहा, 'ऐसा ही हो, बेटे...तथास्तु! तुम्हारे जीवन का ध्येय पूरा होने तक 10 साल और रहो।"

दस साल बाद गुरु फिर लौटे और शिष्य को आवाज़ दी। 'मेरे

बेटे। मैं फिर यहाँ हूँ- तुम्हें मायावी संसार से दूर ले जाने के लिए मैं पुन: आया हूँ। तुम्हारे बच्चे अब बड़े हो गए हैं। तुमने गृहस्थी को 20 वर्ष दिए हैं। अब चलो और आध्यात्मिक पथ को अपनाओ।"

शिष्य गुरु के चरणों में गिर पड़ा और बहुत रोया। बोला- गुरुजी, आप सही कहते हैं। दस वर्ष और निकल गए, लेकिन आप देखिए कि मेरे बच्चों ने बस पढ़ाई ही पूरी की है, वे बस अभी शादी के लिए तैयार हो रहे हैं। मैं इस घर को तब तक नहीं छोड़ सकता, जब तक वे शादी न कर लें, अपने जीवन में स्थिर न हो जाएँ। मेरा सबसे छोटा वाला 15 साल का है, तो मुझे बस 10 और वर्ष दे दें, तब तक मेरी सारी जिम्मेदारियाँ खत्म हो जाएँगी।

गुरु ने कहा, 'तथास्तु! बेटे। फिर भी ध्यान रहे कि तुम्हारा सच्चा रास्ता अध्यात्म का ही है। अपना लक्ष्य ईश्वर ही रखो। अपने कर्तव्य पूरे करो, लेकिन मोहग्रस्त मत बनो।'

दस वर्षों बाद, गुरु फिर दरवाजे पर आए। इस बार एक बड़ा बुलडॉग रखवाली कर रहा था। उन्होंने अनायास ही बुलडॉग में अपने शिष्य को पहचान लिया और -अपनी दिव्य दृष्टि से देखा- कि वह शिष्य तो कई वर्ष पहले दुर्घटना में मारा जा चुका था, लेकिन अपने परिवार के प्रति अतिशय लगाव और मोह की वजह से उसे एक कुत्ते का पुनर्जन्म मिला। गुरु ने कहा, 'मेरे बेटे। अब जबकि तुम मनुष्य से कुत्ते की योनि में चले आए, तो क्या अब भी तुम मेरे साथ आने को तैयार हो? '

कुत्ते ने प्रेमपूर्वक गुरु का हाथ चाटा और बोला, 'मेरे प्यारे गुरुजी। आप सही हैं कि मेरे अपने मोह की वजह से ही मुझे कुत्ते का जन्म मिला है, लेकिन आप देखिए कि मेरे बच्चों के कई शत्रु

हैं, ये बहुत ख़तरनाक हैं, जो उनसे और उनकी संपत्ति से जलते हैं। मुझे यहाँ उनकी रक्षा के लिए रहना होगा। मुझे लगता है कि कुछ वर्षों में सब कुछ सुलझ जाएगा और मैं तब आपका हो जाऊँगा।'

गुरु चले गए और सात साल बाद आए...

इस बार बाहर कोई कुत्ता नहीं था और घर पोते-पोतियों से भरा था। गुरु ने ध्यान लगाया तो पता चला कि उसके शिष्य ने अब एक नाग के शरीर में जन्म ले लिया है और वह एक दीवार में बैठा है- पारिवारिक संपत्ति की रक्षा करने के लिए। गुरुजी ने पोतों को घर से बाहर आने को कहा और बोले, 'मेरे बच्चों! तिजोरी की दाहिनी दीवार में एक छोटी जगह एक नाग बैठा हुआ है। वहाँ जाकर उसे पकड़ कर ले आओ। मेरा वादा है, वो तुम्हें नुकसान नहीं पहुँचाएगा। लेकिन उसे मारना मत। बस एक छड़ी से उसकी रीढ़ की हड्डी तोड़कर उसे मेरे पास ले आओ।'

बच्चों को यक़ीन तो नहीं हुआ, फिर भी वे दीवार के पास गए। उन्होंने देखा, जैसा कि गुरु ने कहा था वास्तव में वहाँ एक नाग लिपटा पड़ा है। उन्होंने गुरु के कहे मुताबिक धीरे से प्रहार कर उसकी पीठ तोड़ दी और उसे बाहर ले आए। गुरु ने बच्चों को आशीर्वाद दिया और नाग को गले में लटका लिया, और चल दिये।

उस नाग को अपने गले में लटका कर जा रहे गुरु ने घायल और दर्द सहते नाग से कहा, 'मेरे बेटे। मुझे तुम्हें चोट पहुँचाने का दुख है, लेकिन और कोई रास्ता नहीं है। 37 वर्ष पहले और तीन जन्म पहले तुम सांसारिक सुखों का स्वाद चखने आए थे। पर, माया इतनी लुभावनी और तेज़ है कि वह हमें फाँस ही लेती है। तुमने तीन जन्म गँवा दिए- इस व्यर्थ के जंजाल में। मेरे बेटे- यह

सब माया है। यह लौकिक मायाजाल है...। यह उन भटके हुये लोगों को अपने जाल में फँसाता है, यक़ीन दिलाता है कि यह वास्तविक, स्थायी, चिरंतन और प्रभावी है। लेकिन, यदि कोई वास्तव में सच है तो वही दिव्यात्मा है और जीवन का वास्तविक लक्ष्य तो उस के नज़दीक जाना ही है। सांसारिक मोह हमारे जीवन के सही उद्‌देश्य से हमें भटकाते हैं। मेरे पास और कोई रास्ता नहीं था कि मैं आकर तुम्हें बचाऊँ क्योंकि तुम माया के बंधन में गहरे और अधिक गहरे उतरते और फँसते ही जा रहे थे।"

जीवन में हम कई बार सोचते हैं- "बस, एक साल और"। फिर, अपना जीवन मैं सरल और सामान्य बनाऊँगा...मैं ऑफिस का समय कम कर दूँगा, अपने जीवन को पटरी पर ले आऊँगा और अधिक समय आध्यात्मिक चिंतन में लगाऊँगा। "बस कुछ साल और", फिर मैं इंद्रिय सुखों को त्याग दूँगा। लेकिन, वह साल कभी नहीं आता... हमारा मकसद सदैव अच्छा होता है। हम अधिक आध्यात्मिक होना चाहते हैं, हम कम खर्च करना चाहते हैं, अपने लिए भी कम चाहते हैं, अधिक देना चाहते हैं। हम अपने लोभ, मोह और क्रोध को जीतना चाहते हैं। फिर भी हम ठगे, छले जाते हैं, माया के द्‌वारा अंधे बनाए जाते हैं। इस तरह, हम फिर से बहाना खोज लेते हैं कि हम क्यों पचास या साठ घंटे हफ्ते में काम करें, ध्यान के लिए समय न निकालें, पवित्र स्थलों पर न जाएँ और हमारे इंद्रिय सुखों की अनबुझी प्यास को बुझाएँ।

आत्मशक्ति की कमी को कई बार बल की कमी समझा जाता है। यह ऐसा नहीं है। यह कमज़ोरी नहीं है...यह माया का परदा है, जो हमें और अधिक, और अधिक- अधिक धन, अधिक संपत्ति,

अधिक इंद्रिय सुख- के जाल में फँसाता है। वह हमारे ऊपर जादू करती है और हम अंधों की तरह उसके पीछे चलते हैं। जिस तरह, सर्कस का जानवर जाल में कूदने पर पुरस्कार पाता है...

जब हम आध्यात्मिक साहित्य पढ़ते हैं, जब हम पवित्र मंत्र सुनते हैं...जब हम ध्यान और प्रार्थना में थोड़ा समय देते हैं, वह परदा कुछ पल के लिए उठता है और हम देख सकते हैं कि हमें कहाँ जाना है... जैसे कि वह शिष्य... जब भी उसके गुरु निकट होते थे वह समझ सकता था कि उसे यह दुनिया छोड़नी है और गुरु का अनुसरण करना है। लेकिन जब भी उसके गुरु पास नहीं होते थे, माया का परदा फिर उसकी अक्ल पर पड़ जाता था जैसे उसके जीवन में कोई मध्यांतर नहीं होता था।

हम भी ऐसे ही हैं। हम देखते हैं कि हमें कहाँ जाना है। हमें क्या करना है... फिर भी जीवन में वे बदलाव नहीं आते, हम माया की लहरों पर बहते चले जाते हैं, अशांत, क्षुब्ध संसार के समुद्र में ....उलटते, पलटते, डूबते, उतरते...चलतेही जाते हैं...।

हम मुक्त हो सकते हैं। हम सत्य में जी सकते हैं। हमारे अस्तित्व का सत्य, हमारे जीवन का उद्देश्य, वास्तव में दिव्यता से एकाकार होना और माया की शृंखला को तोड़ना है।

लेकिन, कैसे?

माया के परदे को हटाने-गिराने का रास्ता दोतरफा है। पहला, तो हम ईश्वर के प्रति खुद को समर्पित कर दें और लगातार प्रार्थना करें ताकि वह अपने हाथों में हमारा जीवन ले सकें, हमें निर्देश दें और बल दें। दूसरा, एक व्रत जिससे हम बेहतर व्यक्ति बन सकें... ऐसा व्रत धारण कर हमें अपने निर्णय पर दृढ़ रहना चाहिए। यह कहने की बजाए–'मैं ध्यान के लिए समय निकालूँगा'–हम कहें,

'बिना ध्यान किए मैं काम के लिए नहीं निकलूँगा... या फिर मैं रात्रि ध्यान-चिंतन के बिना नहीं सोऊँगा।' यह कहने की जगह कि- 'मैं जब भी मौका मिला, तो पवित्र स्थलों पर जाऊँगा', हमें यह चिंतन करना चाहिए कि 'मैं अपने खर्चे कम करूँगा ताकि मेरी आर्थिक ज़रूरतें कम हों।" हमें कहना चाहिए, 'मैं एक और जैकेट या जूते तब तक नहीं खरीदूँगा जबतक ये फट नहीं जाते या बेकार नहीं हो जाते।' हमें ईश्वर के साथ प्रतिदिन भेंट के प्रति गंभीर होना चाहिए, जिसमें हम कई बार इस पर विचार करें जिन क्षणों में लोभ, क्रोध और मोह हम पर हावी हुआ है। हमें बल के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। प्रतिदिन, हमें शांत, स्थिर और संतुलित रहने के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

यदि हम सही समय के लिए इन्तज़ार करेंगे, तो वह कभी नहीं आएगा। आध्यात्मिक जीवन के लिए समय शुरू होता है---अब, अभी...और इसी समय!

शिक्षा

क्षमा- एकमात्र प्रतिवचन...

आध्यात्मिक पथ पर मानवों को दी गयी महानतम और सबसे महत्वपूर्ण क्षमता है क्षमा... क्षमा का मतलब किसी दूसरे के दुख पहुँचानेवाले व्यवहार को नज़रअंदाज़ करना या यह कहना कि कुछ गलती हुई ही नहीं है... क्षमा का मतलब यह नहीं कि गलती या अपराध करनेवाले को भी दंड न मिले।

आध्यात्मिकता के पथ पर चलनेवाले साधकों के लिए क्षमा का अर्थ होता है कि हम, अपने दर्द, दुख और तकलीफ़ को निकाल फेंके, जो हृदय को अवगुण की तरह दुखी करते हैं, हमें कमज़ोर करते हैं और हमारी मुख्य ऊर्जा और जीवन को कष्टमय बनाते हैं। क्षमादान हमारे हृदय से अवगुणों को दूर करता है और हमें मुक्त जीने, साँस लेने और प्रेम से रहने देता है।

जब कोई हमें दुख पहुँचाता है- जानकर या अनजाने में, उद्दे-श्यपूर्वक या दुर्घटनावश- हमारी तीन प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होतीं हैं...

1. अभिव्यक्ति

पहला प्रकार अभिव्यक्ति है। हम अपने गुस्से, दुख और दर्द को अभिव्यक्त कर सकते हैं। कई बार यह काम देता है, यदि हम अपनी भावनाओं को आराम से, शांति से और रचनात्मक तरीके से व्यक्त करें। हालाँ कि, आमतौर पर गुस्से की अभिव्यक्ति चिल्लाने, चीखने और बदले की भावना में परिवर्तित हो जाती है। हमारी दृष्टि अन्धी हो जाती है और हम केवल हानिप्रद पक्ष ही देख पाते हैं। जैसे हमारे क्रोध का स्टीम इंजन आगे बढ़ता है...वर्षों या दशकों का प्रेम- उसके साथ ही हमारी आंतरिक शांति, संतुलन और हमारी चेतना का साथ भी छूट जाता है...

फिर, गुस्से की अभिव्यक्ति एक आदत बन जाती है। हम तुरन्त ही अपने गुस्से और खीझ को अभिव्यक्त करने के आदी हो जाते हैं। धीरे-धीरे, हम अपने गुस्से के गुलाम हो जाते हैं। हम इसे रोकने, बाँधने या इस पर शासन करने के लायक नहीं रहते हैं और यह हमारे आध्यात्मिक जीवन में सबसे बड़ा अवरोध बनता है...। जब जब भी हम इसे अभिव्यक्त करते हैं, तो हम अपनी मनोवृत्ति में इस गुस्से को जगह देते हैं, और बहुत जल्दी ही हम अपना आपा खो देते हैं...जैसे नदी का पानी वर्षों तक भूस्खलन द्वारा खुदे हुये रास्तों में बहता है, तो उसी तरह हमारी भावनाएँ और व्यवहार भी हमारी जिंदगी में उनके द्वारा, विशेषत: हमारे क्रोधादि भावों से बने हुए नक्शे में बहने लगती है।

2. अंकुश

गुस्से से निवृत्ति का दूसरा रास्ता है उसपर अंकुश लगाना। हम दर्द और गुस्से को महसूस करते हैं, लेकिन- सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक कारणों की वजह से- हम इसे व्यक्त नहीं करते। दर्द वास्तविक होता है। यह हमारे साथ रहता है, जो बदले की भावना पर पलता है, बार-बार उस ग़लती को दोहराता है, चिदाकाश के परदे पर यह दृढ़ हो जाता है। हम अपने होंठ जोर से दबाते हैं, विष भरे शब्दों को बाहर निकलने से रोकते हैं, लेकिन हम अंदर से सुलगते होते हैं और हमारा गुस्सा हमारे अंदर सड़ता रहता है।

यह दबा हुआ गुस्सा अवसाद, बेचैनी और तनाव के साथ ही शारीरिक बीमारी को भी जन्म देता है। साथ ही यह हमें अपने आप से ही और दूर करता है।

3. क्षमा

एकमात्र अन्य विकल्प क्षमादान का है। कई लोग क्षमादान का मतलब किए गए कृत्य को भूल जाना या दिमाग से निकाल देना समझते हैं। यह ऐसा नहीं है।

क्षमादान जो वह काम कर चुका है उसके लिए कम, और स्वयं के लिए अधिक होता है... हर ग़लत कार्य और हर बुरे कर्म तो कर्मों के नियमों के अनुसार सजापात्र हैं... न्यूटन ने यह देखा कि हर क्रिया की उतनीही मात्रा में एवं विरुद्ध दिशामें प्रतिक्रिया होगी। यह

एक अभूतपूर्व वैज्ञानिक खोज मानी गयी और आज तक न्यूटन को सार्वकालिक और महानतम वैज्ञानिक माना जाता है।

न्यूटन एक प्रतिभाशाली वैज्ञानिक थे। उनकी कार्यपद्धति, दृष्टि, खोज और तथ्यात्मकता अनोखी थी। लेकिन, हमारे ग्रंथों में पहले से ही वह नियम है, जिसे आज गति का तीसरा नियम कहते हैं! हम इसे सरल शब्दों में कर्मों की गति कहते हैं... हर कृत्य वापस आनेवाले बाण की तरह आपके पास पलट कर आता है। इस जन्म में यदि नहीं, तो दूसरे जन्म में। प्रत्यक्ष नहीं, तो अप्रत्यक्ष रूप से। जो भी दर्द हम दूसरों को देते हैं, वह हमें भी भुगतना होगा। कोई भी इस कर्म के नियम से अछूता नहीं है।

यह समझना बेहद अहम है कि क्षमाशीलता का मतलब किसी को हम उसके कर्म से मुक्त नहीं कर सकते हैं.... यह तो ईश्वरीय विधान है और चाहकर भी इसे बदलने की क्षमता हमारे पास नहीं होती...

क्षमाशीलता का मतलब है कि हम क्रिया से कर्ता को अलग कर सकते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि वह काम भले ही कितना भी खेदजनक हो... लेकिन जिस व्यक्ति ने वह किया है, वह अब भी मानव है और उसके पास कमज़ोरी के साथ बल भी है, अच्छाई के साथ बुराई भी है। क्षमाशीलता का मतलब है कि हम अपने हृदय की सहानुभूति के स्रोत को टटोल सकते हैं... और जिसने ग़लत किया है, कुछ उस को भी दे सकते हैं।

क्षमाशीलता का मतलब है कि हम आगे बढ़ने को तैयार हैं,

दर्द देने वाले उसी क्षण में हम रुकना और सड़ना नहीं चाहते हैं! जब हम अपने क्रोध को पकड़के रखते हैं, तो क्रोध हमें खिलने से, खुलने से, लोगों से मिलने से और वह सब कुछ कर पाने से, जो हम चाहते हैं... रोकता है।

आप कब वह रेखा खींचेंगे?

इतने लोग मेरे पास आते हैं। अतीत में घटित हुये किसी अन्याय या भूल से उनकी पहचान निर्धारित होती है, जिंदगी ग्रस्त होती है। संलग्नता के पाप (गाली-गलौच करनेवाले माँ -बाप), विलगता के पाप (अनुपस्थित या उदासीन अभिभावक)- जिन पापों को वे याद कर सकते हैं, जिनको वे नहीं याद कर पाते, जो पाप उनके द्वारा किए गए, जो अब भी जीवित हैं, जो भूल करनेवाले बहुत पहले मर गए, जो भूल जानकार लोगों ने की, जो पाप या भूल अजनबी लोगों ने हमारे साथ की, जो ज़ुल्म उन पर व्यक्तिगत तौर पर हुए, जो पाप एक सामूहिक चेतना के तौर पर हुए, जिनका वे हिस्सा थे...

उनकी जिंदगियाँ, उनके रास्ते और उनके निर्णय इन भूतकाल की ग़लतियों को झेलते हुए तय हुए हैं। उनको शायद याद भी नहीं होता कि वास्तव में कौन सा अपराध हुआ था... पर उनको स्पष्ट रूप से यह अवश्य याद होता कि कैसे उस ग़लती ने जीवन का हर दिन बर्बाद किया है...वे कुंठित हैं...आगे नहीं बढ़ सकते, भूतमें किए हुए कर्मों ने उन्हें बंधक बनाया है....बरसों पहले हुई गालियों की बौछार को याद करते हुये...आज भी रोते रहते हैं...हालाँ कि

अब वह शरीर भी नहीं रहा...देनेवाले भी कई बार नहीं रहे पर... वो गालियाँ, ग़लतियाँ और धोखे सब वास्तविक हैं। वे कहानियाँ दिल को दहलानेवाली हैं और मेरी आँखें हर उस आदमी की दर्दभरी दास्तान सुनते सुनते आँसुओं से भर आती हैं। लेकिन मैं विश्वास रखता हूँ कि पाप को अंजाम देनेवाले हर कर्म और कर्मी को उनके पापों का कड़वा फल अवश्य मिलता है।

हालाँ कि, जितना दुखद ये धोखे और दुख की कहानियाँ हैं, चुराए हुए बचपन की, बिखरे हुए सपनों की, उन लोगों की कहानियाँ भी उतनी ही दुखद हैं, जो वे आज हैं- जो आज टूटे हैं, जो अतीत से बाँधनेवाली शृंखला को तोड़ न सकें, भूतकाल की बेड़ियों को तोड़कर आगे न बढ़ सके।

मैं सब से एक ही सवाल पूछता हूँ, 'क्या तुम इस दुख को अपनी चिता तक ले जाओगे?' वे सभी ज़ोर से कहते हैं, 'नहीं।' या 'शायद नहीं।'

मैं तब उनसे पूछता हूँ - 'क्या तुम इस दर्द को मृत्युशैया तक ले जाओगे? या फिर एक सप्ताह पहले...तुम्हारी मृत्यु से दो सप्ताह पहले त्याग कर दोगे...क्या लगता है?' तब लोग अपनी वृद्धावस्था से दशकों दूर होते हैं और वे सभी अनिवार्यतः इस भीतर में पलटे दर्द से जल्द से जल्द मुक्त होना चाहते हैं...उनके जीवन के ख़त्म होने से पहले।

तब मैं महत्वपूर्ण सवाल पूछता हूँ, 'पर कब? कब तुम इस दर्द को निकालोगे? आप किस का इन्तज़ार कर रहे हैं, जो आकर आप के लिए लाइन खींचे, आए और कहे- अब आप मुक्त हैं। बल्कि आपको ये ख़ुद ही करना होगा। आज मैं आप से कहता हूँ- आप

मुक्त हो सकते हैं। बस, वह रेखा खींच दीजिए कि दर्द और अपने बीच में कि नहीं जीना इस तरह दुखी जीवन! मैं अब प्रसन्नतापूर्वक जियूँगा...आपका निश्चय आपको दर्द से, पीड़ा से मुक्त कर देगा... '

परंतु, हम अपने दर्द को पकड़े रहते हैं, क्योंकि यह हमें याद दिलाता है कि हम कौन हैं, यह हमें हमारे व्यवहार का एक बहाना देता है, यह ऐसा एक सामान्य नज़रिया बन जाता है -इसके आत्म-विनाशक या आत्मघातक स्वभाव के बावजूद- जानते हुये भी हम इसे जाने नहीं देते। फिर भी, हम अगर आगे बढ़ना चाहते हैं, तो इसे ज़रूर भूलना होगा।

इस दर्द को निकालने का सबसे अच्छा उपाय ईमानदारी और दिल की गहराई से उस व्यक्ति को माफ करना है, जिसने आपके साथ ग़लत व्यवहार किया है। हमें दोषियों को मानवों की तरह देखना होगा और अपने हृदय के प्रेम को उनकी ओर बहने देना होगा। जब हम परिस्थितियों के लिए सहानुभूति महसूस करने लायक होते हैं (चाहे शारीरिक या मानसिक) तो वे शृंखलाएँ टूटने लगती हैं, जिन्होंने हमें बाँध रखा है और हम आज और आनेवाले क्षण में एक कदम रखने को तैयार होते हैं। यह आसान काम नहीं है, लेकिन यह जरूरी और अनिवार्य है, यदि हम जीवन को आनंद-पूर्वक, शांतिपूर्वक और पूर्णता के साथ जीना चाहते हैं।

अनगिनत उदाहरण हैं कि संतों और ऋषियों ने किस तरह अत्याचारियों-दुराचारियों को कष्ट देनेवालों को माफ किया है! हमारे शास्त्रों और इतिहासा में प्रेरणादायी और ख़ूबसूरत कहानियाँ हैं क्षमाशीलता की! हमें भी अनुकंपा और क्षमाशीलता का अपना प्याला भरे रखना चाहिए, ताकि हम मुक्त होकर शांतिपूर्ण तरीके

से, आनंदपूर्वक भविष्य में जी सकें, भूत की ज़ंजीरों को तोड़ सकें। हमारे अनूठे उद्देश्य, हमारे दिव्य लक्ष्य को हम प्राप्त करें, हमारी वास्तविक क्षमताओं को छुएँ- शैक्षणिक तौर पर, व्यावसायिक तौर पर, भावनात्मक और आध्यात्मिक तौर पर।

शिक्षा

सेवा और साधना- दिव्यता के पथ पर

पारंपरिक भारतीय दर्शन के मुताबिक, दिव्यता या योग के मुख्य तीन पथ हैं- जो भगवान श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में बताए हैं- ज्ञान योग, कर्म योग और भक्ति योग।

चलिए, पहले कर्म योग और भक्ति योग पर बात करते हैं। क्या हम स्थिर बैठकर ध्यान करते हुए, प्रभु का नाम जप करते हुए, उसके साथ एकत्व का मज़ा लेते हुए बेहतर हैं या फिर उठकर निःस्वार्थ भाव से उसके सृजन की सेवा करते हुए अधिक प्रसन्न हैं? यह सवाल कई बार आध्यात्मिक पथ पर उठता है, महत्वपूर्ण क्या है?- सेवा या साधना..। क्या मुझे मोक्ष मिलेगा, मुक्ति मिलेगी.... या, वह दिव्यता आँखें बंद कर, पद्मासन में बैठकर मिलेगी या आँखें खोलकर काम करते हुए मिलेगी?

या, फिर दोनों के बीच सचमुच कोई फर्क है? क्या कर्म योग और भक्ति योग दो अलग राहें हैं?

एक भक्त की बहुत खूबसूरत कहानी है, जो अपना बहुत सारा समय ध्यान और प्रार्थना में लगाता था। एक दिन अपने ध्यान में उसने ईश्वर की आवाज़ सुनी- 'तुम्हारे घर के ठीक सामने खेत में एक शिलाखंड है। मैं चाहता हूँ कि तुम पूरी ताकत से उस पत्थर को हटाओ।' वह आदमी तुरन्त उठा और खेत में गया। उसने धक्का दिया, खूब ज़ोर लगाया, पसीने से नहा गया, पर शिलाखंड नहीं हिला। आखिरकार, वह थका-हारा घर लौट गया। दूसरे दिन, वही काम पूरा करने वह सुबह-सुबह गया। फिर से खूब ज़ोर लगाया, लेकिन वह विशालकाय पत्थर एक इंच भी नहीं हिला। यह कई दिनों तक चला और फिर दिन हफ्तों में बदल गये। हफ्ते महीनों में बदल गए, लेकिन वह शिलाखंड नहीं हिला, तो नहीं हिला।

आखिरकार, एक दिन वह आदमी हताशा में चक्कर खाकर गिर गया। उसने ज़ोर से ईश्वर को पुकारा, आँसू गिर रहे थे, उसकी आवाज़ भी रुद्ध थी- मेरे प्रभु। मैंने आपको निराश किया। आपने इतना छोटा-सा काम दिया था, वह भी मैं नहीं कर सका। कृपया मुझे क्षमा करें, हे प्रभों!

प्रभु ने प्रेम से जवाब दिया- मेरे बच्चे। मैंने तुमको पत्थर खिसकाने को कभी नहीं कहा। मैंने उसको वहाँ रखा और इसीलिए मैं जानता हूँ कि वह मानवीय ताकत से नहीं हिल सकता है। मैंने तुम्हें बस उसको एक धक्का लगाने को ही कहा था। पिछले कुछ हफ्तों से उसको धक्का देते हुए देखो कि तुम्हारी बाँहें और पाँव कैसे मज़बूत हो गए हैं? देखो, तुम्हारी लटकी और ढीली चमड़ी किस तरह मज़बूत हो गयी है, तुम्हारी त्वचा चमकने लगी है, तुम्हारे शरीर की कांति बदल गयी है। यह काम पत्थर हटाने का नहीं था, तुम्हारे रूपांतर का था। यदि मैं पत्थर हटाना चाहता, तो खुद ही

हटा देता। मैं तो शारीरिक श्रम का अनुभव तुम्हें देना चाहता था। मैं तुम्हारी त्वचा को सूर्य से झुलसाना चाहता था ताकि तुम एक श्रमिक के दिन का मूल्य जान सको, अपने शरीर की क्षमताएँ तलाश सको।

सेवा हमें स्वस्था और संतुलित कर देती है, न केवल शरीर को बल्कि मन, बुद्धि और अहंकार को। यह एक तरीका है कि हम ध्यान में बैठें और अहंकाररहित महसूस करें, और दूसरी विधि है कि हम दुनिया की सेवा निरहंकार होकर करें। यह एक बात है कि हम दिमागी शांति और स्थिरता को जंगल या मंदिर में स्थिरचित्त होकर खोजें... या यह भी है कि हम किसी बृहत् सेवाकार्य में वही शांति और स्थिरता खोजें। यह शांति अपना लक्ष्य है। आनंद, शांति, ऐक्य और दिव्यता से संबद्धता जो हम ध्यान और प्रार्थना में पाते हैं, वही तो हम सेवा में ले जाते हैं। जो दिव्यता हम मंदिर की मूर्तियों में पाते हैं, क्या वही दिव्यता हम उनमें खोज सकते हैं, जिनसे हम मिलते हैं- सब से, हर बात से जिनके लिए और जिनके साथ हम सेवा करे रहे हैं?

कई बार हम सेवा का सच्चा अर्थ न समझकर उसका अनर्थ कर देते हैं। हम सोचते हैं कि यह अंत के बारे में है, लक्ष्य के बारे में हे, सफलता के बारे में हैं। हम इसे एक ऐसे काम के तौर पर लेते हैं, जैसे यह हमारी भक्ति या उदारता का परिचायक है। लेकिन, सेवा तो विशुद्ध साधना है। हमारे द्वारा चलाये जानेवाले स्कूल, अस्पताल या अनाथालय आदि से गरीबों को मिलनेवाली सुविधा के अलावा सेवा खासतौर पर दो लक्ष्य पूरे करती है, ...। सेवा हमें सिखाती है, प्रशिक्षित करती है कि हम हर जगह, सदैव और सभी में दिव्यता देखें। सेवा न हमारे द्वारा कुछ देना है और न यह हमारे

बारे में है, कि जो हम उनको कुछ दे सकते हैं। सेवा तो उनको अपने जैसा देखने का अभ्यास है। दुनिया का हर धर्म सिखाता है कि हम एक हैं। हिंदुत्व कहता है, 'वसुधैव कुटंबकम्' यानी दुनिया एक परिवार है। ईसाई मत सिखाता है, अपने पड़ोसी को खुद की तरह प्यार करो। इसका मतलब यह नहीं कि चूँ कि मुझे बिस्किट पसंद है, तो मैं अपने पड़ोसी को बिस्किट खिला दूँ... दूसरे को गहराई से, सचमुच और पूरी तरह अपने जैसा प्यार करने के लिए जरूरी है कि हम उसको खुद की तरह और खुद को उसकी तरह देखें।

योग शब्द का शाब्दिक अर्थ है जोड़ना। यह स्वयं का दिव्यता से जुड़ना है। कोई चाहे कर्म योग, भक्ति योग, या ज्ञान योग की राह जाए, या मंत्र योग और सिद्धि योग या राजयोग का अभ्यास करे, यह उतना महत्वपूर्ण नहीं है। मंजिल तो एक ही है। ये सभी योग हैं, जोड़ने-जुड़ने का अभ्यास। इनमें से हर अभ्यास है, जुड़ाव का। इनमें से हर अभ्यास में, हम अपना जुड़ाव दिव्यता से करने का प्रयास करते हैं। जिस समय हम स्व से दिव्य के जुड़ाव की एक झलक पाते हैं, हम तुरन्त ही सभी तरह के सृजन से एकत्व पाते हैं। ईश्वर पक्षपाती नहीं है। वह कभी नहीं कहेंगे - 'मैं तुम्हारे और तुम्हारे साथ एक हो जाऊँगा, लेकिन तुम्हारे साथ नहीं'। ग्रंथ हमें बताते हैं कि हम ईश्वर के साथ एक हैं। वे कभी नहीं कहेंगे- "लेकिन, तुम्हारे नाम का उल्लेख इस किताब के अंत में होना चाहिए"। नहीं... हम सभी उस दिव्यता के साथ एकरूप हैं और यदि हम एक हैं तो परिभाषा के हिसाब से हम सब एक-दूसरे के साथ भी वही ऐक्य रखते हैं। यदि अ बराबर ब है और ब बराबर क है, तो परिभाषा के हिसाब से तो अ भी क के बराबर है। इसलिए, यदि मैं ईश्वर से एक हूँ, तो तुम और मैं भी एक दूसरे से एकरूप हैं।

दिव्यता के साथ ऐक्य और दिव्यता के जरिए उसकी रचना के साथ एकत्व ही साधना का फल है। इसलिए, जब हम दूसरों की सेवा करते हैं, जब हम दुनिया के भले के लिए काम करते हैं, किसी भी स्तर पर, किसी भी साधन से, तब लक्ष्य किसी खास परियोज-ना की पूर्ति नहीं है... लक्ष्य तो उन सब में दिव्यता को देखना है जिनकी हम सेवा कर रहे हैं- चाहे एक बच्चा हो, महिला हो, रोगी हो, गाय हो या नदी हो... जब हम उनमें दिव्यता देखते हैं, तो ही हम गंभीरता, ध्यान, प्रतिबद्धता और सत्यनिष्ठता से काम करते हैं। आखिरकार, हम ईश्वर की सेवा करते हैं। हम आत्मा की सच्ची सेवा करते हैं।

इसीलिए, सेवा और साधना, कर्मयोग और भक्तियोग साथ साथ चलते हैं- और, चेतना के उच्चतम स्तर पर - और एक ही में मिल जाते हैं। भला किसी को प्रेम करना क्या उसे चाय लाकर देने या बुखार में उसका सिर पोंछने से अलग है क्या? यह तय करने का कोई साधन नहीं है कि सेवा कहाँ खत्म होती है और प्रेम कहाँ शुरू होता है...। जब प्यार सच्चा और पवित्र है, सेवा इसकी सबसे प्राकृतिक अभिव्यक्ति होती है। सेवा के जरिए हम प्रेम की अवस्था पाते हैं और एकत्व की भी... जो हमारी साधना को और गहरा करता है। धीरे-धीरे हम महसूस करते हैं कि वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, दो धाराएँ हैं जो अठखेलियाँ करती हुईं समंदर में जा मिलती हैं।

शिक्षाएँ

हिंदुत्व के दस आज्ञापत्र... मूलभूत शिक्षाएँ

कई लोग पूछते हैं, 'हिंदुत्व की मूलभूत शिक्षाएँ कौन सी हैं? क्या नियम हैं? क्या निर्देश हैं?' हिंदुत्व जैसा कि हमारे ऋषियों-मुनियों ने सदैव उद्घोष किया है कि यह एक जीवन-पद्धति है, कोई रूढ़ि नहीं है, बल्कि सही, वास्तविक शब्द तो सनातन धर्म है, जीने का नित्य, शाश्वत और चैतन्यमाय मार्ग!

यह कोई रूढ़िबद्ध, कठिन नियमों और कानूनों का ढाँचा नहीं है, जो किसी विशेष समय और जगह पर ही लागू होते हैं, बल्कि यह तो वह सार-तत्व है, जो एक सच्चे, सरल, आध्यात्मिक जीवन का होता है।

फिर भी, हिंदुत्व की अगाध-अबाध पहुँच और इसकी लगभग असीम सम्मिलन-शक्ति के बावजूद यह सहायभूत होगा, यदि हमारे पास कुछ स्पष्ट दिशा-निर्देश हों, कुछ मूलभूत जानकारी हो,

जिससे हमारी परंपरा के अनुसार जीवन जिया जा सके। ये मार्गदर्शन पतंजलि के योग-सूत्र के यम और नियम में मिल सकता है। दुर्भाग्यवश जब भी हम योग के बारे में सोचते हैं, तो हम कुछ शारीरिक अभ्यासों और प्राणायाम तक ही सोचते हैं. इसीलिए, कोई आश्चर्य और अविश्वास भी कर सकता है कि आखिर योग-सूत्र से सनातन धर्म के दिशा-निर्देशों का क्या मतलब है?....। यद्यपि, योग में आसन और प्राणायाम सम्मिलित हैं, पर मूल योग शब्द का मतलब है- जुड़ना। क्या जुड़ना, किससे जुड़ना? आत्मा का दिव्यता से मिलन। ....जिसके लिए हम जीवन भर तड़पते हैं। पतंजलि के अष्टांग योग के वृक्ष की उच्चतम शाखा है, समाधि। लेकिन हमें बिल्कुल मूल से बुनियादी स्तर से काम करना होगा ...तब ही हम ऊपर बढ़ेंगे।

ईश्वर के साथ एकत्व, अखंडित शांति, परमानंद और जीवन का आत्यंतिक संतोष- हमारे बाह्य, भौतिक इच्छाओं के साथ हमारी आंतरिक, आध्यात्मिक कामना का भी- तभी आ सकता है, जब हम धर्म के प्राकृतिक नियमों को मानें। ये नियम ही यौगिक शिक्षा के शुरुआती दो अंगों- यम और नियम में दिए गए हैं।

वे क्या हैं? सनातन धर्म के दस आज्ञा पत्र क्या हैं? हम पाँच यमों से शुरू करते हैं–उन नैतिक नियंत्रण और नियमों का यदि प्रतिबद्धता से पालन किया जाए तो हम अपने शरीर, मन और जीवन का स्वामित्व पा सकते हैं।

1.अहिंसा

यह आधारभूत, सबसे जरूरी और एक बेहतर मानव जीवन के लिए महत्वपूर्ण प्रतिष्ठान है। अहिंसा के मायने क्या हैं? इसका सीधा और सरल मतलब है- किसी भी दूसरे को दर्द या तकलीफ न देना। हालाँ कि, अहिंसा केवल हमारी शारीरिक क्रियाओं तक सीमित नहीं है। इसका सीधा मतलब केवल यह नहीं है कि आप हत्या नहीं करेंगे, या आप चोट नहीं पहुँचाएँगे। बल्कि, यह हिंसा के सभी स्वरूपों से संबंधित है- विचारों में हिसा, बोलने में हिंसा और कर्म में हिंसा। हमें शुद्ध और सात्विक प्रेमभाव के विचारों को ही मन में रखना चाहिए और हमें वैसे ही कर्म करने चाहिए...शुद्ध और पवित्र।

साथ ही, अहिंसा हमें केवल दूसरे मनुष्यों के साथ शांतिपूर्वक रहने को नहीं कहती बल्कि अहिंसा का मतलब तो सभी जीवों, पृथ्वी के सभी प्राणियों से संबंधित है। इसमें जानवरों के साथ ही माँ प्रकृति को भी शामिल किया गया है। इसका मतलब प्रत्यक्ष रूप से यह है कि हमें शाकाहारी होना चाहिए और उन उत्पादों का उपभोग नहीं करना चाहिए, जो जानवरों पर हिंसा से तैयार हुए हैं। इसका मतलब यह भी है कि हमें हमारी प्रकृति का ध्यान रखना चाहिए, हमारे प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और सुरक्षा करनी चाहिए।

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण... अहिंसा का नियम और भी गहरे उतरता है, जब यह केवल दूसरों के साथ हमारे व्यवहार की बात नहीं होती...यह हमारे खुद के साथ किए व्यवहार पर भी लागू होती है। जब हम सिगरेट पीते हैं, ड्रग्स लेतें हैं, अखाद्य या कुखाद्य खाते हैं जिनसे हम जानते हैं कि हम जानलेवा बीमारियों से आक्रा-

मित हो सकते हैं...,उन संबंधों में संलग्न होते हैं, जो अवैध हैं, जिस में हम किसी को अपमानित करते या होते हैं, या फिर हम ग़लत गतिविधियों में अपना समय बर्बाद करते हैं...तो भी हम खुद को ही हानि पहुँचाते हैं।

2.सत्य

यह यम भी इसके शाब्दिक अर्थ से कहीं गहरा है। हाँ, हमें सच बोलना चाहिए, लेकिन हमें सत्य को जीना भी चाहिए। हमारे विचार, हमारे मूल्य, हमारे शब्द और हमारी क्रिया सब कुछ श्रेणी बद्ध होना चाहिए। कई बार हम दूसरों के सामने, मंदिर में, समाज में या फिर दूसरों को प्रभावित करने के लिए बोलते कुछ हैं, सोचते कुछ हैं और करते कुछ और ही हैं। मैंने अभिभावकों को भी यह कहते सुना है- मैं जो बोलूँ वह करो, न कि वह जो मैं करता हूँ। यह सत्य नहीं है। सत्य का मतलब हमारे वादों और इरादों पर अटल रहना है। खुद को, दूसरों को और ईश्वर को दिये हुये अपने शब्दों को और वचनों को पूरा करना है।

3. अस्तेय - किसी प्रकार की चोरी न करना

अस्तेय का सीधा मतलब किसी दूसरे के सामान या संपत्ति को नहीं चुराना....इतना सरल नहीं है। हम दूसरों से बहुत कुछ बिना जाने चुरा लेते हैं। हम लोगों का समय बेकार की बहस या निंदा के जरिए चुरा लेते हैं। हम लोगों की साख चुराते हैं, यह दावा कर कि जो काम वास्तव में किसी और ने किया हो...उसका भी श्रेय लेने की

कोशिश करते हैं... हम माँ धरती से अपनी ज़रूरत से अधिक चुराते हैं- हमारी ज़रूरत से बड़ी कार चलाकर जो बहुत अधिक ईंधन खाती है, बहुत बड़ा घर बनाकर, जो हमारी आवश्यकता से अधिक हो और फिर अधिक से अधिक गैर-जरूरी सामान खरीदकर, जो अप्राकृतिक संसाधनों से बना हो और प्रदूषण फैलाता हो। इसके साथ ही, यदि ईश्वर ने हमें समृद्धि दी है और हमारे पास संसाधन हैं और हम उसे फिर भी बाँट नहीं रहे, दूसरों की मदद नहीं कर रहे, तो यह भी चोरी ही है। हमें यह वास्तविकता में बदलना होगा कि आनंद बांटने से ही मिलता है। जीवन सबके साथ बाँटना और समय आनेपर सब की देखभाल करना है। जीवन है...सदा देते रहना।

4. ब्रह्मचर्य : इंद्रिय नियंत्रण

ब्रह्मचर्य का अनुवाद अक्सर हम यौन-निग्रह या संयम में कर देते हैं, जब कि इसका अर्थ कहीं अधिक गहन है। इसका मतलब है कि जो ब्रह्मचारी है, जिसके जीवन के समस्त कार्य ईश्वर को समर्पित हैं, जिसक सारे कर्म पवित्र और शुद्ध हैं। इसका मतलब है कि जिसका ध्यान, ऊर्जा और जीवन ईश्वर पर केंद्रित हैं। ये दस आदर्श केवल संन्यासी या मुनि के लिए ही नहीं है। ये त्रिकालदर्शी महान ऋषियों के बनाए नियम हैं, जो पूरी मानवता के लिए हैं। इसीलिए, ब्रह्मचर्य का नियम तो गृहस्थ के लिए भी है। इसका क्या अर्थ हुआ? इसका मतलब संयम है। इसका मतलब मध्यमार्ग है। इसका मतलब यह जानना है कि जीवन का उद्देश्य केवल लैंगिक सुख से कहीं अधिक है। इंद्रिय सुख में हर समय डूबे रहने से हमारा दिमाग और उसका ध्यान खो जाता है, हमारी ऊर्जा ही समाप्त हो जाती

है। इसीलिए, यदि आप विवाहित भी हैं, तो भी आपको शरीर के घेरे से निकल कर आत्मा की ओर बढ़ना चाहिए।

5. अपरिग्रह: संग्रहखोरी से बचना...

अपरिग्रह का सीधा मतलब है, संचय नहीं करना। इसका मतलब है कि अपनी आवश्यकता से अधिक मत लो, जीवन के किसी भी क्षेत्र में। महात्मा गाँधीजी ने इसे बहूटी खूबसूरती से कहा है- "हम सभी की आवश्यकताओं से कहीं अधिक धरती पर है, लेकिन किसी एक के भी लोभ से अधिक नहीं"। इसका मतलब है- 'जीवन सादगीभ-रा हो...जीवन में हर बार केवल उतनाही इस्तेमाल करो, जो और जितना ज़रूरी है, उससे अधिक की लालसा न रखें'। इसका मतलब यह भी नहीं है कि हर आदमी किसी भ्रमणशील संन्यासी की तरह जिए। हाँ, इसका मतलब यह है कि हमें मध्यमार्ग और सादगी का अभ्यास करना चाहिए, बिना आवश्यकता के हमें खर्चीला जीवन नहीं जीना चाहिए, न ही हमें अनावश्यक वस्तुओं को अनावश्यक बटोरते रहना चाहिए।

अपरिग्रह का एक और अर्थ यह भी है कि ममत्व की भावना का त्याग...सबकुछ प्रभु का है, उस का दिया हुआ है, कुछ समय के लिए हमें मिला है...यज्ञों में कुछ मंत्र "इदं न मम" से पूर्ण होते है... उनका अर्थ होता है "यह न मेरा है न मेरे लिए है...प्रभु यह सब तेरा है"...यह अपरिग्रह है...मेरा कुछ भी नहीं है...सब कुछ उसके लिए...प्रभु के लिए है...

नियम भी पाँच हैं- आध्यात्मिक और नैतिक उत्थान के, जब

हम अपने शरीर और मस्तिष्क को यम के साथ साध लेते हैं, तो ये नियम ही हमें आध्यात्मिक पथ पर और अग्रसर करते हैं।

1. शुचिता

शौच का मतलब है- शुद्धता, स्वच्छता और पवित्रता। लेकिन इसका मतलब केवल इतने तक ही सीमित नहीं है कि किसी को रोज नहाना चाहिए या उसके नाखून साफ रखने चाहिए। यह एक उच्चतर आंतरिक शुद्धता की बात है- शुद्धता जो आंतरिक हो, जो विचारों और कर्म में भी शुद्धता का जहाँ ध्यान हो। हमें जप, ध्यान और सकारात्मक चिंतन के अभ्यास से अपने विचारों को शुद्ध करना चाहिए। हमें अपने जीवन को शुद्ध बनाना चाहिए यह सुनिश्चित कर कि हमारे कर्म धर्म, एकात्मता और नैतिकता की कसौटी पर खरे हों। शौच तो, हम अपने शरीर और मस्तिष्क में, क्या जाने देते हैं- हम क्या खाते हैं, अपनी आँखों और कान के जरिए क्या उपभोग करते हैं, शौच तो इस से भी जुड़ा हुआ है। सही शौच का अर्थ तो किसी भी अशुद्धि को हमारे अंदर डालने से बचना है- इसमें ड्रग्स और सिगरेट से लेकर निंदा-आलोचना से उत्तेजक रॉक संगीत से पोर्नोग्राफी तक शामिल हैं। शौच का अभ्यास उस तरह का ध्यान है, जैसे आप अपनी नयी और महँगी कार का ध्यान रखेंगे। यदि आपके पास एक लाख डॉलर वाली नयी मर्सीडीज़ है तो आप बिल्कुल शुद्ध पेट्रोल उसमें डालेंगे, आप सस्ता, कम गुणवत्तावाला पेट्रोल उसमें कभी नहीं डालेंगे और आप गंदगी तो बिल्कुल नहीं डालेंगे। हमारा दिव्य स्वरूप इन सबसे मूल्यवान है, लेकिन हम उसे लगातार घटिया गुणवत्ता की अशुद्धि से भरते रहते हैं।

2. संतोष

जीवन में शोकांतिका यही है कि, हमारे पास क्या है यह मायने नहीं रखता, हम हमेशा अधिक चाहते हैं। यह मानव-मन की बीमारी है। हम शायद ही कभी संतुष्ट होते हैं। दुर्भाग्य से विडंबना यह है कि हम भले ही अधिक से अधिक कमा लें, लेकिन संपत्ति और यश की हमारी भूख बढ़ती ही जाती है। यह एक तबाही मचानेवाला विरोधाभास है। हमारे ग्रंथ कहते हैं कि हमारे पास जो कुछ भी है, उसे हम भगवान का प्रसाद समझकर ग्रहण करें। सबसे महत्वपूर्ण व्यक्तिगत रवैया तो कृतज्ञता का है, जिसका हमें सदा प्रयास करना चाहिए। हम अपनी प्रार्थनाओं में जो हर सुबह करते हैं, उसमें एक खूबसूरत पंक्ति है- 'सीताराम सीताराम सीताराम कहिए, जाही विधि राखे राम, ताहि विधि रहिए..' इसका मतलब है कि हमें संतुष्ट होकर भगवान के नाम का जप करना चाहिए, चाहे वह हमें जिस भी हाल में रखे। हमें प्रसादबुद्धि से उसे स्वीकारना चाहिए, अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। अपेक्षा ही खीझ की जन्मदात्री है और स्वीकृति है शांति और आनंद की जननी....

3. तपस : तप या साधना

नियमित तप के अभ्यास से हम अपने शरीर और मस्तिष्क पर अधिकार कर सकते हैं। जीवनभर माया के संबंध की वजह से हम इस विश्वास में उलझे नज़र आते हैं कि हम अपने मस्तिष्क, भावनाओं और इंद्रियों के गुलाम हैं। हम अनादि अज्ञान से प्रेरित

होकर सांसारिक सुख-दुखों से घनिष्ठ हो जाते हैं... और फिर अपना मन, भावनाएँ, और इंद्रियों के गुलाम बन जाते हैं...उनके बुने हुये जाल में फँस जाते हैं...अनजाने में और बड़ी आसानी से हम अपने जीवन की लगाम अस्थिर मन और इंद्रियों के हाथ में सौंप देते है। तप फिर से नियंत्रण हमारे हाथ में देता है। तपस का मतलब केवल जप या उपवास या यज्ञ करना ही नहीं है। तपस हमारे जीवन के हर क्षण को छूता है। हमारी सास के प्रति बेहतर व्यवहार करना तप है, जब पत्नी या पति हम पर गुस्सा हों तब न चिल्लाना भी तप है! तप तो सहिष्णुता और धैर्य का अभ्यास है।

हमारी जिंदगी में, हम जानवरों की तरह केवल सहजबोध से ही कर्म करते हैं- । जब क्रोध हमें अपनी लहरों में डुबोता है, हम दूसरों पर चिल्लाते और चीखते हैं। जब भूख लगती है, हम खाते हैं। जब हम वासना से भरते हैं, इंद्रियों के अधीन होकर रह जाते हैं...किसी वन्य पशु की भाँति। तप के जरिए हम सीखते हैं कि खुद पर नियंत्रण कैसे करें, ताकि हम चुन सकें कि अभी प्रतिक्रिया करें या नहीं। तप के अभ्यास के माध्यम से हम लाइट बल्ब मात्र नहीं रहते, जो बस स्विच ऑन या ऑफ करने से जलता-बुझता रहता है।

4. स्वाध्याय : पवित्र अध्ययन

स्वाध्याय का अर्थ है- ग्रंथों का पारायण। यह बहुत महत्वूपूर्ण है कि हम प्रतिदिन कुछ आध्यात्मिक, कुछ प्रेरणास्पद पढ़ें। यह हमें लय और संतुलन में रहने और हमारे दिमाग को शुद्ध रखने में मदद करता है। इसके बिना हम अपने दिमागी संभ्रम में ही खो जा सकते हैं। यद्यपि, यह महत्वपूर्ण है कि आध्यात्मिक अध्ययन

महत्वपूर्ण है, लेकिन यही काफ़ी नहीं हैं। यह दस यम और नियमों में से एक है। केवल ग्रंथों का सीधा पारायण आपको समाधि में नहीं ले जाता। पहले तो पढ़ने को अभ्यास में डालें। न क केवल कुछ ही अध्याय सुबह या शाम पढ़ लेना बल्कि हमें ग्रंथों को जीवन में उतारना होगा।

साथ ही, स्वाध्याय का मतलब स्वयं से पढ़ना, स्वयं को पढ़ना है। अंतर्दर्शन किसी आध्यात्मिक पथ का सबसे जरूरी साधन है। हमारे अहंकार, हमारा भय, हमारी इच्छाएँ, हमारे दुराग्रह और हमारे जीवन की झूठी व्यस्तता हमें अपने जीवन की परीक्षा से रोकती है। हर रात हमें खुद से अवश्य पूछना चाहिए- मैं कहाँ हूँ, कहाँ खड़ा हूँ? क्या मैं आगे बढ़ रहा हूँ? एक अच्छा व्यापारी हमेशा अपने बैलेंस शीट को देखता है कि वह फायदे में है या घाटे में ...। इसी तरह हमें अपनी जिंदगी का बैलेंस शीट देखना चाहिए।

5. ईश्वर प्राणिधान- भगवान के प्रति समर्पण

यह अंतिम, सर्वोच्च निर्देश है-धार्मिक जीवन का। यह मायने नहीं रखता कि आप किस नाम या स्वरूप में उस ईश्वर को पूजते हो। मायने यह रखता है कि आप पूरी तरह उसको समर्पित हैं। इसका मतलब है कि हमारा लक्ष्य हमारी इच्छा को उस दिव्यता में मिला देने की है, ताकि हम जो भी आए, उसका स्वागत कर सकें, न कि सार्वभौमिक योजना में दखल देकर अपनी इच्छा लादें। सही ईश्वर प्राणिधान तो इस प्रार्थना में है- 'तेरी इच्छा पूरी हो'। हमारे सभी कर्मों को उसको सौंपकर ही हम शांति, आनंद और जीवन का अर्थ पा सकते हैं....

यदि हम इन दस निर्देशों का पालन करें, भले ही हमारा धर्म कुछ भी हो और उन्हें अपने जीवन में उतारे, तो हम देखेंगे कि हमारा जीवन आनंद, शांति और पूर्णता से भर गया है। ये हिंदुत्व के दस निर्देश हो सकते हैं, लेकिन ये सार्वभौम हैं। वे सभी धर्म और दुनिया की सभी संस्कृति के लोगों पर लागू हैं। ये निर्देश एक शांतिपूर्ण, फलदायक और पूर्ण जीवन के निर्देश हैं।

शिक्षा

मल्टीविटामिन; आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए

आजकल हम अपने शरीर के लिए, उनको स्वस्थ रखने के लिए कई तरह के विटामिन की बात करते हैं। हमारे दिमाग और हृदय के लिए भी एक मल्टी-विटामिन है। यदि आप सभी तीन रोजाना लें और आपके अस्तित्व में घुलने दें, तो आप शरीर और दिमाग का सच्चा संतुलन व शांति पाएँगे, स्वयं की आत्मा से एकरूप हो जाएँगे...।

1. ध्यान

मैं हमेशा कहता हूँ कि ध्यान सभी तरह की उलझनों की एकमात्र औषधि है। आज अनेकों स्वास्थ्य संबन्धित समस्याओं को लेकर लोग दुखी रहते हैं... जो लगभग सभी मुख्यतः हमारे जीवन में तनाव से संबंधित हैं। इस बेचैनी, निद्रानाश और असंतोष से निवृत्त

होने के लिए वे दवाएँ लेते हैं या फिर अत्यधिक विलासिता को अपने जीवन का अविभाज्य हिस्सा बना लेते हैं। जैसे, लोग तनाव में होते हैं, तो वे उसे भुलाने के लिए बार-बार कोशिश करते हैं और उसके लिए के लिए सिनेमा जाते हैं, खरीदारी करते हैं, शराब पीते हैं या ऐंद्रिक सुखों में संलग्न होते हैं। वास्तव में ये समाधान नहीं है। ये न तो अंतर्निहित मसलों को संबोधित करते हैं, न ही उसका हल निकालते हैं.... ये चीज़ें तो बस घाव पर लगे हुए बैंडेज हैं, जो घाव सुखाते नहीं...

लेकिन, ध्यान पूरी तरह दिमाग को शांत करता है, हृदय को आनंद से भरता है और हमारे मन को स्थिर करता है। साथ ही, वह शांति और आनंद पूरे दिन भर हमारे साथ रहता है। ध्यान केवल एक भटकाने वाली चीज नहीं है जो केवल तब तक काम करे, जब तक आप उसमें गंभीरता से संलग्न हों। वह कोई दवा नहीं है, जो तुरन्त ही प्रभाव खत्म हो जाए और अनचाहे 'साइड इफेक्टस्' भी दे। ध्यान तो आपको ईश्वर के साथ साक्षात्कार कराता है। यह आपके अस्तित्व की प्रकृति को बदलता है। यह आपको उस दुनिया में वापस ले जाता है, जहाँ से आप आए हैं—दिव्यात्मा के चक्र में।

जब आप ध्यान में बैठते हैं तो आप अनुभव करते हैं कि जो चीज़ तनाव पैदा कर रही है, वह कितनी अकारण और छोटी-सी है, आप अपनी सभी समस्याओं की क्षणिकता को अनुभव करते हैं; आप अनंत आनंद और असीम शांति को महसूस करते हैं, जो आपके अपने दिव्य स्वभाव से ईश्वर की दिव्यता की एकरूपता की वजह से होता है।

इसके बाद, आप अभ्यास से धीरे-धीरे अपने जीवन को ही ध्यान में बदल देंगे। यह केवल एक समय और एक स्थान तक सीमित

नहीं होगी। हाँ, हमें अभ्यास के लिए एक अलग समय बिल्कुल रख देना चाहिए और एक शांत, पवित्र माहौल होना चाहिए। हालाँकि, जब ध्यान का समय नहीं होता है, या फिर आप घर से दूर भी हैं, अपने ध्यान की जगह से दूर हैं, तो यह न सोचें कि आप ध्यान नहीं कर सकते। काम के समय भी पाँच मिनट का समय निकालें, आँखें बंद करें, अपनी साँस को देखें, सभी सृष्टि की एकरूपता पर ध्यान केंद्रित करें और दिव्यता के साथ जुड़ें। अंत में, आपका समग्र जीवन ही ध्यान बन जाएगा। ध्यान तो एक ऐसा परफ्यूम है जो आपका दिनभर और फिर जीवनभर सुगंधित करता है।

उसके बाद आप जहाँ जाएंगे वहाँ शांति की इस दिव्य मशाल से शांति, प्रेम और भाईचारे का प्रकाश फैलाते रहेंगे।

2. प्रतिक्रिया नहीं...

ध्यान के विटामिन के बाद आता है प्रतिक्रियाहीनता का विटामिन, जिसे हम अभ्यास में दिन भर लाएँ। हम अपने जीवन में शांत होना सीखें। हमें अपने आसपास की घटनाओं से अविचलित रहने का अभ्यास करना है... हमें समंदर की तरह होना चाहिए। लहरें आती हैं, जाती हैं, पर समंदर स्थिर रहता है। यहाँ तक कि एक बड़ा पत्थर भी दूरी से हम फेंकें, तो वह कुछ देर की अस्थायी तरंग ही पैदा करता है। अधिकांश समुद्र और खासकर उसकी गहराई, प्रभावित नहीं होती।

साधारणत: हमारे जीवन में हम सतह के जल की तरह व्यव-हार करते हैं। हम हर आती-जाती लहर या हवा के साथ खुद को उछलने देते हैं। हमें सीखना चाहिए कि हम स्थिर कैसे रहें, सागर

की गहराई में मौजूद पानी की तरह, जो इन छोटे, आकस्मिक तरंगों से प्रभावित नहीं होता।

मैं सागर की लहरों का उदाहरण दे रहा हूँ, लेकिन जिन लहरों की मैं सोच रहा हूँ, वे क्रोध, बेचैनी, ईर्ष्या, लोभ और वासना की हैं, सागर की लहरों-सी बड़ी, उतनी ही मजबूत और उतनी ही बेचैन हैं...। हमें चाहिए कि इन लहरों को आते-जाते रहने दें, जबकि खुद शांत और अप्रभावित रहें।

कई बार, हम इस तरह काम करते हैं, जैसे हम लाइट-बल्ब हों और जो भी चाहे, हमें महज़ एक बटन दबाकर खोल या बंद कर सकता है। छोटी सी छोटी बात, प्रतिक्रिया या किसी का देखना या काम भी हमारी मनोदशा को 180 डिग्री तक बदल देता है। कई बार, हम बहुत सुकून महसूस कर रहे होते हैं और कोई हमारे साथ किसी किराने की दुकान पर रूखा शब्द बोले या रास्ते में कोई हमारी कार के आगे गलती से चला आए... या एक पुराना मित्र अजनबी-सा और ठंडा बर्ताव करे.... इनमें से कुछ भी बात हमारा मनोभाव तुरन्त ही खराब कर सकती है। मानों, हम एक लाइट-बल्ब हों।

वास्तव में, हमें जो कुछ भी मिल जाये, उसे प्रसाद समझकर ग्रहण करना चाहिए। ईश्वर की तरफ से उपहार समझ लेना चाहिए। हमें शांत और स्थिर रहना चाहिए- दुख-सुख, समृद्धि-विपत्ति, सभी परिस्थितियों में। हमें अपनी जीवनाधार और बहुमूल्य ऊर्जा इन कामों में व्यर्थ नहीं करनी चाहिए।

विचार और क्रिया के बीच की महत्वपूर्ण जगह—चिदाकाश

जब भी मैं प्रतिक्रियाहीनता की बात करता हूँ, लोग कहते हैं कि यह असंभव है। 'यह कैसे संभव है कि आप प्रतिक्रिया न दें, जब कोई आपको गुस्सा दिला रहा है या दुखी कर रहा है?'- वे पूछते हैं। यहाँ भावनाओं और क्रिया में अंतर समझना बहुत जरूरी है। हम मानव हैं, और हमारी मानवीयता का एक बड़ा हिस्सा हमारी संवेदशनीलता, हमारे हृदय की कोमलता और आनंद, दर्द, गुस्सा, खुशी आदि के वश में होते हैं।

प्रतिक्रियाहीनता का मतलब यह नहीं कि हमें फर्क न पड़े, या हम पत्थर हो जाएँ। इसका मतलब यह भी नहीं है कि हम अपनी भावनाओं को न पहचानें। इसका मतलब दरअसल दोधारी है... पहला, इसका मतलब यह है कि हम इन भावनाओं को खुद पर हावी नहीं होने देंगे, हम सागर की गहराई में होनेवाली शांति को धारण करें... स्थिर बनें... उसकी उत्तुंग तरंगे नहीं...। दूसरे, इसका अभिप्राय है कि हम इन भावनाओं को समझें, तो हम अपने हृदय में तुरन्त ही प्रतिक्रिया महसूस करेंगे, दिमाग में एक भावना, एक विचार आएगा, लेकिन, हमें उसके अनुसार प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं होने देनी है।

विचार आएँगे...। यह प्राकृतिक और मानवीय है। महान साधना के बाद ही किसी को अपने विचारों पर विजय मिलती है। इसलिए, हमें इन विचारों को मानवीय और अपरिहार्य समझकर स्वीकार कर लेना चाहिए। लेकिन, हम उन विचारों पर क्या प्रतिक्रिया करते हैं, यह हमारा निर्णय होना चाहिए, हम स्वतंत्र होते हैं निर्णय लेने में...।

यहीं पर हमारा ध्यान केन्द्रित होना चाहिए। विचारों से मुक्त होने की प्रक्रिया बड़ी साधना है, जो हमें दिव्य ऊर्जा तक ले जाती है। परंतु, उसकी मैं यहाँ चर्चा नहीं कर रहा हूँ, क्यों कि वह एक ऐसा अभ्यास है जो केवल उनके लिए है जिनका जीवन साधना के लिए ही प्रतिबद्ध और समर्पित है।

सच मानें तो दुनिया में सभी लोग जो व्यवसाय, परिवार और गृहस्थी के साथ रह रहे हैं, उनसे यह उम्मीद रखनी बेमानी है कि वे सीमित समय में निर्विचार समापत्ति को प्राप्त कर लेंगे। फिर भी उसका मतलब यह नहीं कि आप न्यूटन के उस गति-नियमों की अनदेखी कर दें कि हर क्रिया की बराबर और विरोधात्मक प्रतिक्रिया होती है। इसका अस्तित्व आपको जीवन के दर्द और कठिनाइयों पर नकारात्मक प्रतिक्रिया देने के लिए बाध्य नहीं करता।

यदि आप स्थिर और शांत हो जाते हैं, तो आप ध्यान देंगे कि हर विचार और क्रिया के बीच एक जगह है, एक छोटा सा अंतराल है, एक विराम है। पहले यह विचार आता है कि हम प्रतिक्रिया करना चाहते हैं... (जैसे, मैं इतना क्रोधित हूँ कि उसको थप्पड़ मारना चाहता हूँ)। उसके बाद एक विराम आता है। उसके बाद क्रिया होती है (सचमुच अपना हाथ सामनेवाले पर उठा देना)। यदि आप सावधान नहीं हैं तो यह क्रिया सहज और तत्क्षण लग सकती है, यह दिख सकता है कि आपके पास कोई विकल्प नहीं था, बल्कि प्रतिक्रिया तुरन्त स्वतः हो गयी। लेकिन यदि आप जाग्रत होने का अभ्यास करें तो आप देखेंगे कि वहाँ हमेशा ही एक अंतराल होता है- विचार या भावना के जन्म और क्रिया के पहले। यह क्षणार्द्ध हो सकता है, लेकिन यह होता है।

उस अंतराल को पकड़ें। उस अंतराल ही में प्रतिक्रिया को रोकने

की संभावना के बीज हैं। वह भावना या विचार आने दें, यदि आने ही हैं तो। कोई समस्या नहीं है। इसे स्वीकारें। इसे अपने दिमाग से निकालने कोशिश की करें...उसके लिए प्रार्थना, सत्कर्म और जप का सहारा लें। यदि वे विचार फिर भी नहीं निकल रहे, आपको यह ध्यान देना चाहिए कि आपके पास उन पर काम करने की शक्ति नहीं है। आप यह खुद से कहें, 'ठीक है। मुझे गुस्से या दर्द या ईर्ष्या का भाव आ रहा है। मैं इसे समझता हूँ। अस्थायी तौर पर मैं उनको स्वीकारता हूँ, क्योंकि यह लगता है कि अभी कोई उपाय दूसरा है भी नहीं। पर, मैं उन पर काम करूँगा।'

जितना अधिक आप उस अंतराल पर काम करेंगे, उतना ही अधिक आप उससे लाभ उठा सकते हैं। पहले, तो यह छलावा लगेगा, लेकिन समय के साथ आप उस अंतराल को लंबा और अधिक जागरूकता के साथ पकड़ सकते हैं। आप देखेंगे कि आपके पास सचमुच एक चुनाव है कि आप स्वयं बिखर जाएँ या शांति को बिखेरें।

नकारात्मक तौर पर प्रतिक्रिया देना आसान है। क्रोध की आग को, और अधिक क्रोध से हवा देना भी बहुत सहज है। आलोचना का जवाब आलोचना से देना आसान है। बिखरना आसान है। पर यह चंचल मन की प्रबलता है...इस को अपने वश में करना है...

चुनौती तब आती है, जब हम शांति प्रसारित करना चाहते हैं। यह हम उस अंतराल को पकड़कर ही ला सकते हैं। उस क्षण में हमारे पास वह दिव्य मौका होता है कि हम अपने बिखराव को शांति तक पहुँचा सकें। गुस्से की आग को अनुकंपा के जल से बुझा सकें।

भगवान बुद्ध कहते थे कि वे एक नदी की तरह हैं। सबसे तेज़, मजबूत आग भी एक पल भी नहीं टिक सकती यदि उसे नदी के

शीतल जल में रहना हो। इसी तरह कोई यदि उनके पास गुस्से से जलता हुआ भी आता था, तो उनके प्यार की नदी की निर्मल शांत धारा से वह आग तुरन्त ही बुझ जाती थी।

यदि हम शांति के ध्वजवाहक होना चाहते हैं, तो हमें पहले प्रेम की नदी बनना होगा, हमारी करुणा और प्रशांति के जल में सभी विवादों की चिंगारियों को बुझाना होगा।

1. अंतर-अवलोकन और 'समर्पण' का मंत्र

हर रात, हमें पूरे दिन की बैलेंस शीट देखना चाहिए। 'हमारी सफलता क्या रही?' हमारी कमियाँ कहाँ थीं? हमारे सफलतात्मक बिंदु क्या हैं? हमारी नकारात्मक बातें क्या रहीं? उसके बाद, ईश्वर को सफलताओं के लिए धन्यवाद दीजिए और बल के लिए प्रार्थना कीजिए ताकि कल को कम असफलताएँ मिलें। अंत में सब कुछ ईश्वर के हाथों में सौंप दें और एक साफ़ फ़लक के साथ सो जाएँ।

एक बहुत खूबसूरत मंत्र है जो हम सभी को रात में पढ़ना चाहिए, ताकि शांति आ सकेः-

कायेन वाचा मनसेनद्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वा प्रकृते: स्वभावात्।

करोमि यद्यत सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयामि॥

इसका मतलब है, 'हे ईश्वर, जो भी हमने किया है, जो भी कर्म बोली, विचार, इंद्रियों या मस्तिष्क, हाथ या फिर मेरे अस्तित्व से भी हों.... इनके द्वारा किए हैं-, - वह सब मैं तुम्हारे पवित्र चरणों में अर्पित करता हूँ। मेरे जीवन के सभी कर्म और विचार तुमको समर्पित हैं।' इस मंत्र को समर्पित करते हुए गंभीरता से, गहराई से और भक्तिपूर्वक हर रात, हम अहंकार के अवशेषों को साफ करें और गहन शांति में प्रवेश करें।

"प्रार्थना का मतलब है घर वापसी...। यही हमें दिव्यता से जोड़ती है।"

आभार

इस तरह की किताब किसी एक व्यक्ति से नहीं लिखी जाती। यह तो प्रभुकृपा का अनुभव है, जो विभिन्न लोगों तक विभिन्न तरह से आता है। एक रोटी भले ही रसोई में एक रसोइया बना ले, लेकिन इसके लिए किसी को गेहूँ बोना होता है, कोई उसे पानी देता है और किसी क्षति से मुक्त रखता है। कोई उसे काटता है, ख़लिहान तक लाता है, पीसकर आटा बनाता है, कोई ताजा दूध को मक्खन बनाता है, कोई और... समुद्री पानी से नमक इकट्ठा करता है। फिर भी, इन सभी तत्वों के बावजूद एक उपयुक्त स्थान के बिना, रोटी नहीं बन सकती है। जितने लोग इसे अपना समय, ऊर्जा, अनुभव और विशेषज्ञता देते हैं, वह अद्भुत है। जिस समय यह पता चला कि मैं पूज्य स्वामीजी की जीवनी लिख रही हूँ, समर्थन का प्रवाह माँ गंगा की संतत धारा की तरह मिला है- अबाध और अगाध। कई लोग हैं, जिनके बिना यह परियोजना मूर्त रूप नहीं ले सकती थी।

मैं डॉ. किम चेरियन का धन्यवाद उनके शानदार संपादन और लगातार इसकी गुणवत्ता को बढ़ाने में उनके योगदान के लिए दूँगी,

बात चाहे शैली की हो या विषय-वस्तु की। साथ ही, विशेष धन्य-वाद एरियल फोर्ड को जिन्होंने पांडुलिपि पढ़ी और आश्वस्त किया कि यह किताब प्रेरणास्पद और अर्थवान भी होगी। भक्तों के लिए भी, आम गृहस्थ के लिए भी। डॉन बैली ने डिज़ाइन और लेआउट में सहयोग दिया। माइकल ओ नील ने बड़ी सहृदयता से पूज्य स्वामीजी और ऋषिकुमारों के फोटो इस्तेमाल करने की इजाजत दी (जिसमें मुखपृष्ठ भी शामिल है)। आयन शिव तो राउल गोल्फ के साथ खास तौर पर ऋषिकेश आए, ताकि पूज्य स्वामीजी, गंगा और हिमालय की तस्वीरें खींच सकें। उनकी छवियों ने कई पृष्ठों पर जगह पायी है। डॉ. नवल कांत ने अमरीका में पूज्य स्वामीजी की कई तस्वीरें खुले दिल से हमें उपलब्ध करायीं, जो वर्ष 1980 से 1995 के बीच खींची गयी थी।

यह किताब संभव नहीं थी, यदि हमारे वित्तीय प्रायोजक लिली बफांडी, सत्या और किशन कालरा और हर्षा व हसु शाह ने खुलकर अनुदान न दिया होता, जिससे यह किताब संभव हो पायी। सभी ने बेहिचक और निःस्वार्थ भाव से अपनी आहुति इस दिव्य यज्ञ में दी।

मण्डला पब्लिकेशन की शानदार टीम ने राउल गॉफ के नेतृत्व में इस किताब को तैयार किया है। उन्होंने एक शानदार किताब तैयार की है, जो पूज्य स्वामीजी की कृपा को मूर्त रूप दे रही है। राउल की पूरी टीम के साथ... जैन ह्यू जिन्होंने उत्पादन देखा, दाशा ट्रॉनेक जिन्होंने पृष्ठों को डिजाइन किया... काम करना शानदार रहा। हाँ, वे हर कदम पर राउल के दर्शन और भक्ति से प्रेरित हुए, जिन्होंने पुस्तक की अंतिम संस्कारण को विशेष रूप दिया। जोशुआ एम ग्रीन ने न केवल मंडला में मेरे संपर्क के तौर पर काम किया,

बल्कि एक व्यक्तिगत मित्र और गुरु की तरह भी मेरे साथ रहे। उनका पूज्य स्वामीजी के प्रति अनुराग और भक्ति, इस परियोजना के प्रति उनका प्यार और उनका सकारात्मक उत्साह व समर्थन का मजबूत स्तम्भ था।

सबसे बढ़कर, मैं पूज्य स्वामीजी के चरणों में अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ। वे ऐसे सूर्य हैं, जिन्होंने इस परियोजना को अपने किरणों से प्रकाशित किया है और जो मेरे जीवन के साथ दुनिया में असंख्य लोगों के जीवन को प्रकाशित कर रहे हैं।

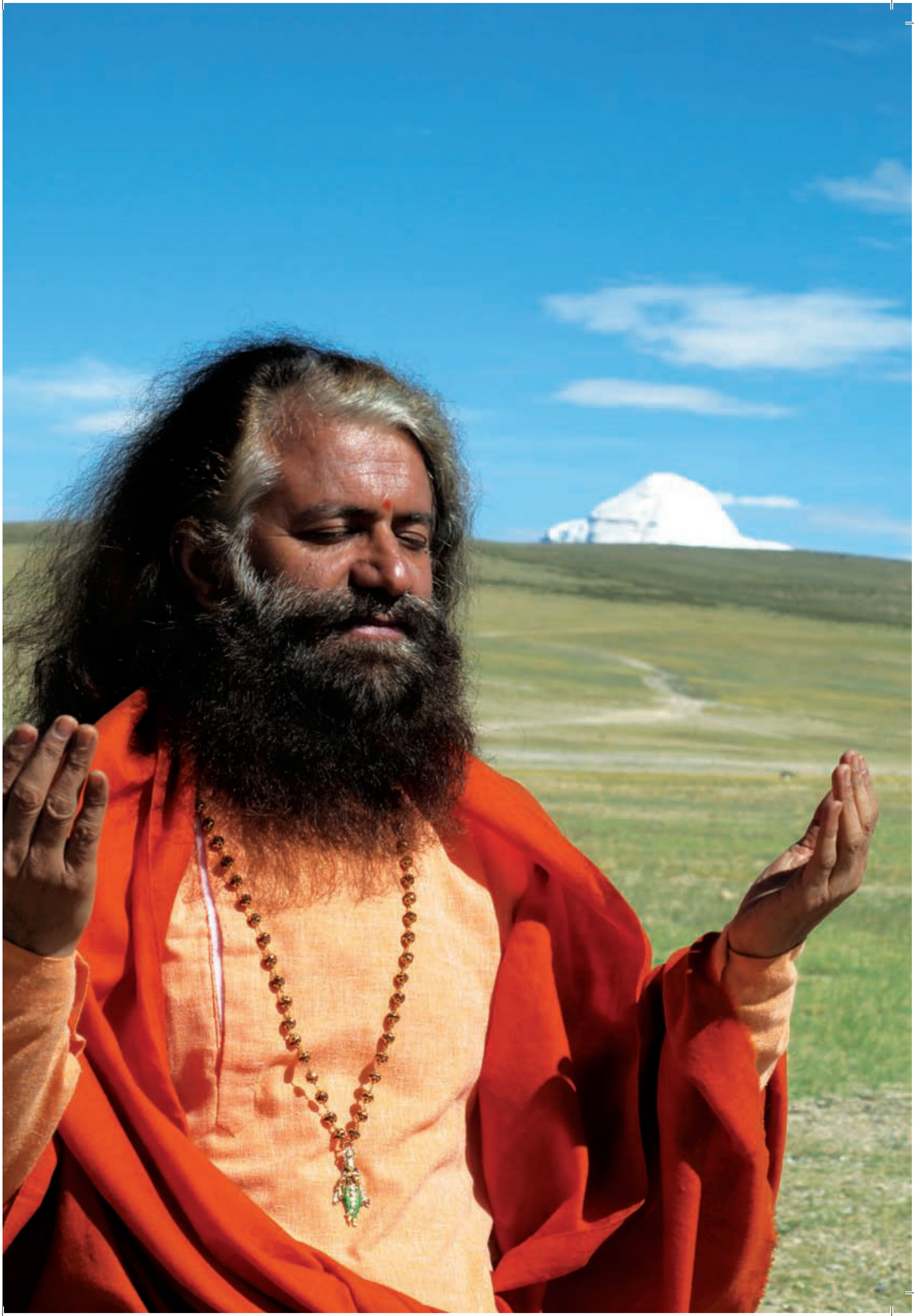

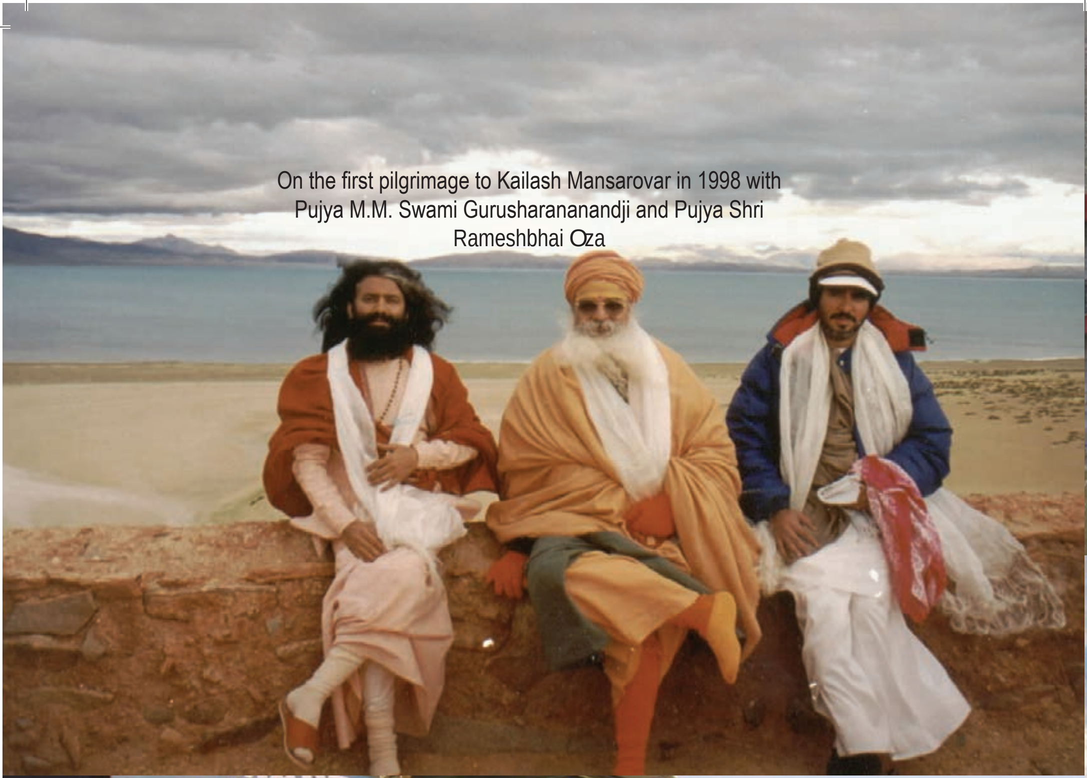

On the first pilgrimage to Kailash Mansarovar in 1998 with Pujya M.M. Swami Gurusharananandji and Pujya Shri Rameshbhai Oza

With local children at the inauguration of the Parmarth ashram in Paryang

Parmarth ashram at Dirapuk, 17,000 feet, on the Mt. Kailash parikrama route

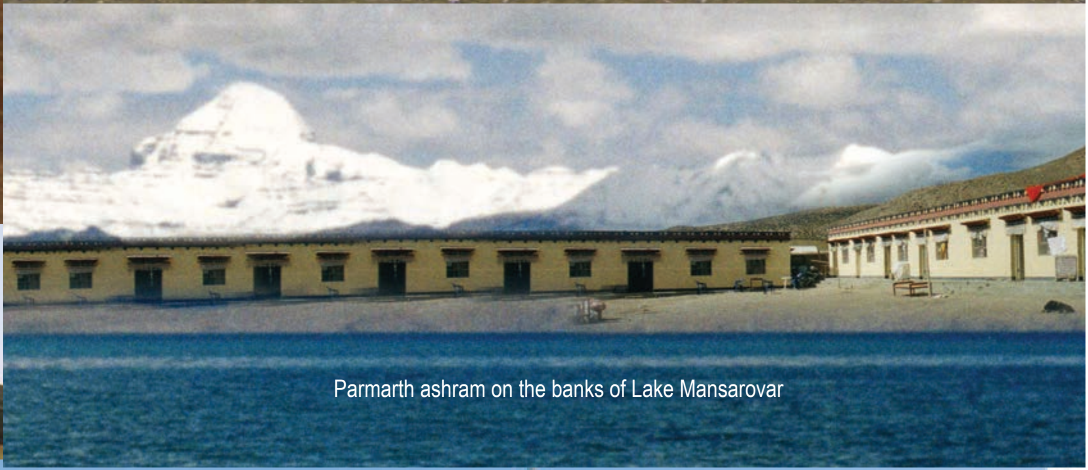

Parmarth ashram on the banks of Lake Mansarovar

Parmarth ashram in Paryang

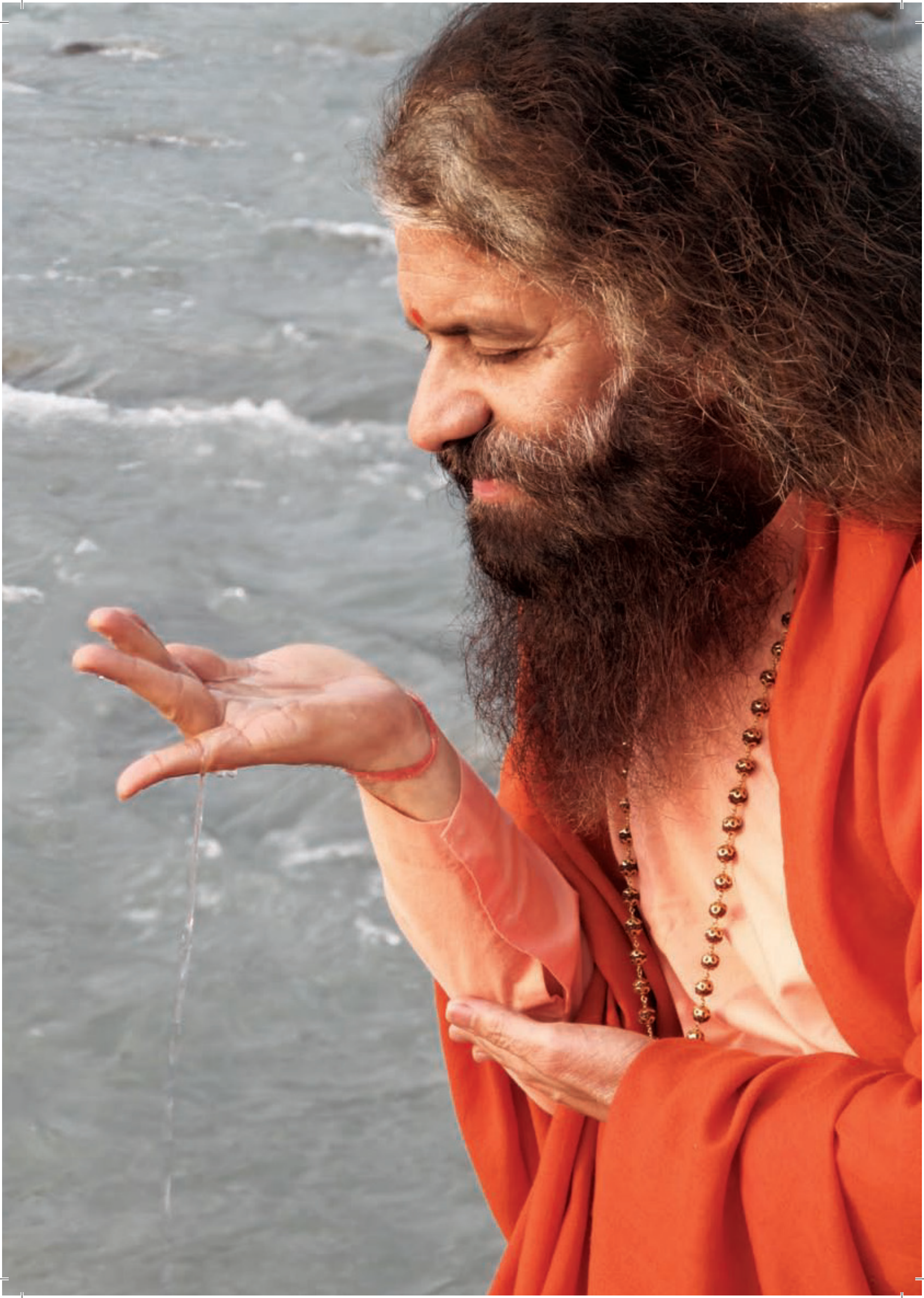

ADVANCE PRAISE FOR GANGA PUTRA

पूज्य स्वामी चिदानन्द सरस्वती जी महाराज एक विरक्त और तथापि कर्मठ संत के रूप में जाने जाते हैं। सनातन धर्म, भारतीय सभ्यता एवम् वैश्विक मानवता के प्रति समर्पित पूज्य स्वामी जी का जीवन एक यज्ञ है। समाज और राष्ट्र के से सम्बंधित प्रश्नों के समाधान के लिये वे केवल सतत चिंता ही नहीं करते बल्कि उनके हल के लिये चिंतन और सतत प्रयत्न भी करते हैं। हिन्दु धर्म का विश्वकोश संसार को देने में आपका योगदान एक गौरवपूर्ण घटना है। आज आपके सेवामय 70 वें वर्ष के अवसर पर हम वंदन करते हैं और गंगा पुत्र की अविरल सेवा यात्रा की स्तुति करते हैं।
प्रणाम!

- पूज्य संत श्री रमेशभाई ओझा (भाईश्री)

आपकी आत्मा मां गंगा के लिए निश्चल प्रेम से ऐसे गूंजती है जैसे शायद ही किसी की। देवी गंगा का असली सार आपके शुद्ध हृदय के मंदिर में सदैव विराजमान है। आपका उनके प्रति समर्पण ऐसा है कि आपकी हर सांस में वे विद्यमान हैं। आपके स्वच्छता अभियान के द्वारा वर्षों से इस पावन नदी से कई टन कचरा साफ किया गया है। आप हमेशा से मां गंगा को स्वच्छ करने के लिए किसी भी मंच या योजना को समर्थन देने के लिए तैयार रहे हैं- चाहे सरकारी हो या निजी, राष्ट्रीय या वैश्विक। आज आपके कारण इस प्रदूषण समस्या पर वैश्विक ध्यान जाता है। आप सही मायाने में गंगापुत्र हैं।

- श्रीचंद पी, गोपीचंद पी, प्रकाश पी एवं अशोक पी हिंदुजा

समरसता, सरलता, सौम्यता और उदात्तता की प्रतिमूर्ति स्वामी चिदानन्द सरस्वती जी का यह जीवन विश्व को नई दिशा प्रदान करेगा। ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

- श्री अनुपम खेर

आज जब हर मनुष्य तीव्रता /शीघ्रता के पथ पर दौड़ रहा है, जब मनुष्य तथा मशीन में अधिक अंतर नहीं रहा, तब एक समुदाय है जो अनवरत शान्ति व ठहराव बाँट रहे, वो भी निशुल्क. वो हैं हमारे परमात्म स्वरूप सन्त समुदाय॥ उनमें भी कुछ तो साक्षात नारायण का आधुनिक स्वरूप बनकर अवतरित हुये, उदाहरणार्थ :

जब से सृष्टि का निर्माण हुआ है, परमेश्वर अपने अंश अवधूत पृथ्वी पर हर युग में अपना संवाहक बनाकर भेजते हैं. हिमालय की तलहटी में गंगा तट पर स्थित परमार्थ निकेतन आश्रम, ऋषिकेश में एक तपस्वी को इस युग में उतारा है. भौतिक जगत में उस सन्यासी/तपस्वी / अवधूत का नाम परम पूज्य स्वामी चिदानन्द सरस्वती जी (मुनि जी) जाना जाता है॥ बाल सन्यासी वय से ही आध्यात्मिक व सामाजिक चेतना की अलख जगाने का उद्वेलन लिये, ये तपस्वी गंगा पुत्र जीवन तो क्या बस लक्ष्य जी रहे. हम परम भाग्यवान कि ऐसे योगी /तपस्वी की चरण छाया में हम पले हैं॥ उनका अंश है, मैल हैं, पसीना है, और उनके आदर्श, उनके प्रकाश को विश्व में बाँट, संगीत, अध्यात्म की अलख जगा रहे हैं॥ स्वामी जी महाराज का अवलोकित तेज /ओज ब्रह्माण्ड को ज्योतिर्मय करता रहे, परमेश्वर चराचर जगत को हमारे स्वामी जी की दृष्टि का सदैव सुपात्र बनाये- प्रार्थना ॥

- पद्मश्री कैलाश खेर

GANGA PRESS